३०	श्रीमान लाल संचालिका दि० जैन महिला मण्डल नमककी मण्डी		आगरा
३१	"	मन्त्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी	आगरा
३२	"	नेमिचन्द जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	"	झब्बनलाल शिवप्रशाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	"	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	"	मोल्हडमल श्रीपाल जी जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	"	शीतलप्रशाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	"	बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला
३८	"	मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
३९	"	महेन्द कुमार जी जैन	चिलकाना
४०	"	आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जी जैन	चिलकाना
४१	"	हुकमचन्द मोतीचन्द जी जैन	सुलतानपुर
४२	"	कैलाशवती धर्म पत्नी जय प्रसाद जी जैन	सुलतानपुर
४३	"	❀ जीतमल इद्रकुमार जी जैन छावडा	झूमरीतिलैया
४४	"	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूप नगर	कानपुर
४५	"	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४६	"	❀ दयाराम जी जैन आर. ए. डी. ओ.	सदर मेरठ
४७	"	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सदर मेरठ
४८	"	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला

नोट — जिन नामोके पहिले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया सभी बाकी है।

आमुख

प्रिय धर्म बन्धुओ ! आज आपके हस्तमे ऐसे ग्रन्थका प्रवचन आ रहा है जिसमे आत्माके अस्तित्व व परिणतिके सम्बन्धमे दार्शनिक सैद्धान्तिक व आध्यात्मिक पद्धतिसे आत्मतत्त्वका साधारणसे लेकर असाधारण तक विश्लेषण पूर्वक वर्णन है। यह ग्रन्थ पाँच अध्यायोमे सम्पन्न होना था, किन्तु रचयिता सात केवल दो अध्यायोको लिख पाये, बादमे आयु पूर्ण हो गई होगी ऐसा अनुमान है। यदि यह ग्रन्थ पाँच अध्यायोमे सम्पन्न हो जाता तो मानवसमाजके लिये और भी अधिक निधि प्राप्त हो जाती। उपलब्ध दो अध्यायोमे जो तत्त्व सामग्री है वह तत्त्वजिज्ञासु एवं शान्त्यर्थी जनोके लिये अत्यधिक उपयोगी है।

प्रथम अध्यायमे द्रव्य सामान्यका स्वरूप प्रबल युक्तियोसे सिद्ध कर करके प्रकट किया है। फिर तत्त्वज्ञानमे सहायक व्यवहारनयके विषयसे ऊपर उठाकर अनुभवमे ले

जानेके उद्देश्यसे निर्बाध परमशुद्ध निश्चयनयका अवलम्बन करा । गया है । इससे व्यवहारनय प्रतिषेध्य व निश्चयनय प्रतिषेधक है यह भली भांति प्रकट किया गया है।

द्वितीय अध्यायमें पूर्व अध्यायसे प्रसिद्ध द्रव्य सामान्यमेंसे आत्मतत्त्वकी युक्तियों से सिद्धि की गई है । अभूतार्थनयसे गुण पर्यायके भेदोंके परिचयके माध्यमसे आत्माका विविध परिज्ञान कराकर अनुभूतिकी ओर ले जानेके लिये अखण्ड आत्म तत्त्वका भूतार्थनयसे परिज्ञान कराया गया है । इस तथ्यका विस्तार सहित विवेचन यों करना आवश्यक हुआ कि श्रेयस्कर सम्यग्दर्शनका लाभ भूतार्थनयके आश्रयसे होता है। इस तथ्यके विवेचनके अनन्तर इन्द्रियज सुख और इन्द्रियज ज्ञानकी हेयताका वर्णन तो अपूर्व ही है। इसके अनन्तर सम्यग्दर्शनके अङ्गोंका विशद वर्णन तो मुमुक्षु जनोंको अद्भुत प्रसाद उत्पन्न करने वाला है।

बड़े हर्षका विषय है कि इस ग्रन्थराजपर अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्यश्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराजने सरल व रोचक प्रवचन करके इस ग्रन्थकी अतीव गूढ गाथाओंकी रहस्यमयी तात्विकताको स्पष्ट करके दर्शाया है। जिससे प्रत्येक मुमुक्षु जन इस अथाह ग्रन्थ-सागरके अमूल्य रत्नोंकी प्राप्ति करके महामोहान्धमयी मानव जीवनकी कल्मषताको धोकर आत्मा के निर्मल सहज स्वरूप का द्रष्टा बननेमें अग्रसर हो सके । अस्तु !

तत्त्वज्ञान-प्रभावित :
काशीराम 'प्रफुल्लित'
व्याकरणरत्न

साहित्य प्रेस, सहारनपुर]
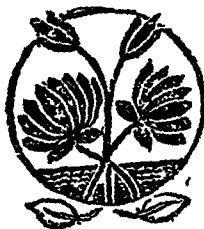
पञ्चाध्यायी प्रवचन

[तृतीय भाग]

प्रवक्ता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

उक्तं गुणपर्ययवद्द्रव्यं यत्तद् व्ययादियुक्तं सत्।
अथ वस्तुस्थितिरिह किल वाच्याऽनेकान्तबोधशुद्ध्यर्थम् ।२६१।

अनेकान्तपद्धतिसे वस्तुस्वरूपके विशेष विवरण करनेका संकल्प— अबसे पहिले उक्त कथनमे यह बात सिद्ध की गई कि जो गुण पर्याय वाला द्रव्य है वही उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् है। गुणपर्ययवद् द्रव्य और उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, ये दोनो लक्षण एक दूसरेके अभिव्यंजक हैं, प्रकट करने वाले हैं। ये दो भिन्न भिन्न लक्ष्यके लक्षण नही है। एक सत्से पदार्थको ही दो प्रकारसे लक्षित किया गया है। इस बातकी पुष्टि भली प्रकार की और यह संक्षेपरूपसे वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन हुआ था। अब वस्तुस्वरूपका विशेष विचार करेगे जिससे अनेकान्त ज्ञानकी भी सिद्धि हो और वस्तुस्वरूप भी बहुत विस्तारपूर्वक विदित हो। वस्तुका स्वरूप यथार्थतया अनेकान्तके अवलम्बनसे ही समझमे आ सकता है क्योंकि वस्तु स्वयं तो जिस रूप है सो ही है, अवाच्य है। उसे जब हम वाच्य बनाना चाहते हैं तो हमे अनेक प्रतिपक्ष धर्मों सहित भी उसपर विचार करना होगा। यो अनेकान्तकी सिद्धिके लिए वस्तुस्वरूपका विशेष विचार करनेका यहाँ संकल्प किया है।

स्यादस्ति च नास्तीति च नित्यमनित्यं त्वनेकमेकं च।
तदतच्चेति चतुष्टययुग्मैरिव गुम्फितं वस्तु ॥ २६२ ॥

वस्तुकी सप्रतिपक्ष चार युगलोसे गुम्फितता— वस्तु चार युगलोसे गुम्फित है। पहिला युगल है—कथंचित् है कथंचित् नही है। दूसरा युगल है—कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। तीसरा युगल है—कथंचित् अनेक है कथंचित्

एक है। चौथा युगल है कथंचित् वह है और कथंचित् वह नहीं है। ऐसे चार युगलोंसे गुम्फित प्रत्येक वस्तु होती है अर्थात् वस्तुका प्रतिपादन जब किया जायगा और उसका विशेष विचार करके ही निर्णय दिया जायगा तो इन चारों युगलोंके माध्यमसे बताया जायगा। चाहे कोई पदार्थ अमूर्त हो, सूक्ष्म हो, वह भी चार युगलों से गुम्फित है। यह तो वस्तुके स्वरूपमें ही महिमा पड़ी हुई है। कोई भी पदार्थ लीजिये। जैसे एक आत्मपदार्थको उदाहरणमे लें तो आत्मा कथंचित् है और कथंचित् नही है, कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है कथंचित् एक है कथंचित् अनेक है, कथंचित् वही है कथंचित् वही नही है। इन चार युगलोंसे गुम्फित आत्मतत्त्व विदित होगा। पुद्गल धर्म आदिक किसी भी द्रव्यका वर्णन करेंगे तो वह प्रतिपादन चारों युगलोंके माध्यमसे होना पडेगा।

विवक्षावश सप्रतिपक्ष अनेक धर्मोंसे युक्त वस्तुको बतानेमे अनेकान्त बोधकी शुद्धि—यहाँ एक बात ध्यानमे रखना है कि अनेकान्तका अर्थ है एक नही किन्तु एकसे अधिक अन्त याने धर्मोंमे युक्त होना, तो ऐसे वे सप्रतिपक्ष अनेक धर्म लिए गए जिनसे अनेकान्त बोधकी शुद्धि होती है। यों तो इस तरहका प्रतिपादन किया जा सकता था कि आत्मामें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है आदिक अनेक धर्म हैं और यों अनेक धर्मोंसे युक्त होनेके कारण आत्मा अनेकान्तात्मक है। किन्तु विचार करनेपर समझमे आयगा कि इस तरह एक पदार्थमे अनेक धर्म बतानेकी बात साधारण है और प्रत्येक दर्शनकारने एक वस्तुमे अनेक धर्मोंको बताया है। जैसे प्रकृतिमे सत्त्व, रज, तमोगुण विशेष है अन्य भी अनेक वर्णन हैं। यों अनेक धर्म बतानेसे अनेकान्तपने का मर्म विदित नही होता। यद्यपि इस प्रकार भी अनेकान्तात्मक वस्तु है, पदार्थमें अनेक धर्म इस प्रकार रहते हैं। जैसे आत्मामे ज्ञान, दर्शन, आनन्द, श्रद्धा, चारित्र आदिक गुण माने गए हैं। पुद्गलमे रूप, रस गंध स्पर्श आदिक गुण माने गए हैं। यों भी अनेक धर्मात्मक हैं, किंतु इन पद्धतियोंसे अनेकान्तवाद सिद्ध नही होता। अनेकान्तवादकी सिद्धि है प्रतिपक्ष धर्मोंको बतानेसे। वस्तु 'है' तो वही 'नहीं' भी है। इसमे विवक्षायें लगाकर फिर सिद्ध किया जाय तो यह अनेकान्तवादकी प्रक्रिया है। वस्तुमें नित्यपना माना तो उसका प्रतिपक्ष अनित्यपना है। यो सप्रतिपक्ष धर्मोंसे युक्त माननेपर अनेकान्तकी सिद्धि करना अनेकान्तवादका मर्म है। इसी पद्धतिमे यहाँ वस्तुको इन युगलोंसे गुम्फित बताया। प्रत्येक युगल परस्पर सप्रतिपक्ष है। यो सप्रतिपक्ष धर्मसे युक्त वस्तुको सिद्ध करना अनेकान्तवादकी पद्धति है। वस्तु इन चार युगलोंसे गुम्फित है सो उसकी और विशेषता बताते हैं।

अथ तद्यथा यदस्ति हि तदेव नास्तीति तच्चतुष्कं च।
द्रव्येण क्षेत्रेण च कालेन तथाथवापि भावेन ॥ २६३ ॥

स्यादस्ति स्यान्नास्तिरूप प्रथम युगलको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध करनेका निर्देश वस्तु चार युगलोमे गुम्फित है यह बात उपरकी गाथामे बताया ही है। यहाँ यह बतला रहे हैं कि उन चार युगलोका होना द्रव्य, क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे सिद्ध किया जाता है। अब द्रव्यसे अस्ति द्रव्यसे नास्ति, क्षेत्रसे अस्ति क्षेत्रसे नास्ति कालमे अस्ति कालसे नास्ति भावसे अस्ति भावसे नास्ति यो ८ तरीकोसे अस्ति नास्तिके युगलको बताया जायगा यो ही इन ८पद्धतियोमे नित्य अनित्य युगलको सिद्ध किया जायगा। इन्ही ८ प्रकारोमे एक अनेक और सत् अतत् को बताया जायगा। इन द्रव्यादि चतुष्टयको युगलोकी सिद्धिसे वस्तुमे जो निज स्वरूप है उसपर प्रकाश अच्छा आता है और वस्तुका वस्तुत्व सही समझमे आ जाता है। तो उन ३२ प्रसगोमे प्रथम द्रव्य अपेक्षा पदार्थ है और नहीं है इस बात की सिद्धि करते है।

एका हि महासत्ता वा स्यादवान्तराख्या च।
न पृथक्प्रदेशवत्त्वं स्वरूपभेदोऽपि नानयोरेव ॥ २६४ ॥

द्रव्यमे स्यादस्ति स्यान्नास्ति सिद्ध करनेके लिये महासत्ता व आवन्तर-सत्ताका कथन-- सत्ता दो प्रकारकी बताई गई है— महासत्ता और आवान्तर सत्ता, यथा सर्थ है इन दोनोका विवरण आगेकी गाथाओमें किया ही जायगा पर संक्षेपतया यहाँ यह समझना कि पदार्थमे सत्त्व सामान्य है अर्थात् सत्त्वके साथ अन्य कोई विशेपता न निरखकर देखा जाता है कि वह पदार्थ महासत्ताकी पद्धतिसे विदित कराया गया समझिये। और, जब वही पदार्थ पदार्थने पाये जाने वाले असाधारण गुणोके अस्तित्व द्वारा बताया जायगा तो वह आवान्तर सत्ता द्वारा बताया जायगा अथवा एक ही वस्तुमे भेद न डालकर केवल सत्रूपसे समझ लेनेपर यह सत्ता विदित होगी और एक ही उसी वस्तुमे भेद करके द्रव्य, गुण, पर्याय आदिक अनेक ढंगोमे ज्ञान करेंगे तो जो एक-एक ढङ्ग है वह एक एक आवान्तर सत्तारूप होगा। यो दो प्रकार की सत्ताको जानकर उनकी अपेक्षा द्रव्यसे अस्तित्व नास्तित्वकी सिद्धि होगी। तो सत्ता यहाँ दो प्रकारसे कही गई है—महासत्ता और आवान्तर सत्ता। लेकिन ये दोनो सत्ताये कोई भिन्न-भिन्न प्रदेश वाली नही हैं अथवा ये कोई अपना स्वतंत्र स्वतत्र रूप नही रखती, इस कारण इनमे स्वरूपभेद भी नही है। वस्तु वही है, केवल एक निरखने निरखनेकी दृष्टि है। सामान्य दृष्टिमे निरखनेमें महासत्ता और विशेष दृष्टिसे निरखनेमे आवान्तर सत्ताकी प्रतीति होती है। तो द्रव्यकी अपेक्षासे सत् असत् सिद्ध करनेमे माध्यम लिया जायगा महासत्ताका, आवान्तर सत्ताका अन० उसीका कथन इस गाथामे किया है और साथ ही यह भी बता दिया गया है कि इनकी कोई पृथक सत्ता नही है कि ये दोनो एक साथ एक समान रूपसे रह सकते हो। केवल दृष्टिभेदसे निरखा गया यह भेद है। अब उन दोनो प्रकारको सत्ताओंमेसे महासत्ताका स्वरूप

कहते हैं।

किंतु सदित्यभिधानं यत्स्यात्सर्वार्थसार्थसंस्पर्शि।
सामान्यग्राहकत्वात् प्रोक्ता सन्मात्रतो महासत्ता॥ २६५॥

महासत्ताका स्वरूप—सत्ता इतना ही मात्र जो कथन है वह समस्त अर्थ समूहका स्पर्श करने वाला है, क्योंकि वह सामान्यका ग्राहक है, इसलिए सन्मात्र इतने कथनमें महासत्ताका बोध होता है। यह महासत्ता इस प्रकार भी देखी जा सकती है कि समस्त द्रव्य समूह अनन्तानन्त जीव द्रव्य अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य एक आकाश और एक असंख्यात काल द्रव्य इन समस्त द्रव्योंमें जो हैपने की बात है, केवल हैपनेकी दृष्टिसे देखें क्या अन्तर आता है? तो केवल है को देखने से यह भान होगा, ऐसा है सब ही है। यह महासत्व केवल सत्तामात्रता सर्व पदार्थोंमें पाया जाता है, किन्तु यह न समझना चाहिये कि वास्तवमें कोई महासत्ता नामका पदार्थ है। चाहे गुणरूपमें हो या अन्य रूपमें हो और वह सब पदार्थोंमें व्याप कर रहता है, ऐसा नहीं है, किन्तु पदार्थ ही जब केवल सन्मात्र रूपमें निहारा जाता है तो वहां महासत्व विदित होता है। तब इस दृष्टिसे भी न निहारें कि समस्त पदार्थों मे जो एक सत्व सामान्य विदित होता है वह महासत्ता है उसे यों भी निहार सकें कि एक ही पदार्थमें कोई भेद न करके कि द्रव्य है, गुण है, पर्याय है आदिक कुछ भी भेद न करके एक उस वस्तुको सामान्यरूपमें निहारें तो वहाँ वह सन्मात्र वस्तु विदित होगी यों सन्मात्र तत्वका जो बोध होता है वह है महासत्ता। यह महासत्ता भेद नहीं डालती अतएव इसे व्यापक कह सकते हैं और इसी कारण उसे एक कह सकते हैं पर इस विवक्षाको छोड़कर एकान्ततः एक सर्वव्यापक सत्व पदार्थ मानना वस्तु स्वरूपसे विरुद्ध है। तो महासत्ताका यह स्वरूप कहा अब आवान्तर सत्ताका स्वरूप कहेंगे।

अपि चावान्तर सत्ता सद् द्रव्यं सन् गुणश्च पर्यायः।
सच्चोत्पादध्वंसौ सदिति ध्रौव्यं किलेति विस्तारः॥ २६६॥

आवान्तर सत्ताका स्वरूप—आवान्तर सत्ता अनेक प्रकारसे विदित की जाती है। द्रव्य सत् है, गुण सत्, उत्पाद सत्, व्यय सत् ध्रौव्य सत् आदिक भी सद्-भूत वस्तुके सम्बन्धमें जिन जिन अंशोरूपमें उस वस्तुको देखा जा रहा है उस समय वह वस्तु उस आवान्तर सत्तारूपसे है वस्तु तो जो कुछ है सो ही है, उस वस्तुको द्रव्य रूपमें देखा कभी गुणरूपमें देखा। वस्तुकी शक्तिपर दृष्टि रखकर शक्तिरूपमें देखा तो कभी परिणतिरूपमें देखा। जब परिणतिरूपमें देखा तब वस्तुमें परिणति मात्र विदित

हुआ। जब गुणरूपमे देखा तो वस्तुमे शक्तिमात्र प्रतीत होता है और द्रव्यके ढगसे देखनेपर वह वस्तु द्रव्यरूप प्रतीत होती है। वही वस्तु चू कि उत्पादव्यय ध्रौव्य स्वरूप है, उसमे जब हम उत्पादके रूपमे देखते है तो वस्तु उत्पाद मात्र है, जब विवक्षित पर्यायके व्ययरूपमे देखते हैं तो वस्तु व्यय मात्र है और जब उत्पाद व्यय समस्त धर्मो मे अनुगत एक ध्रौव्यकी दृष्टिसे देखते है तो वस्तु ध्रौव्यमात्र है। तो जब जिसरूपसे देखनेपर वस्तु तन्मात्र प्रतीत होती है तो आवान्तर सत्ता उतनेरूप हो गई जितने रूप पदार्थको देखा है। यहाँ महासत्ता और आवान्तर सत्तासे यह अभिप्राय नही रखा गया कि जो समग्र पदार्थोमे सत्व सत्वरूपसे रह रहा है वह महासत्ता हुआ और एक एक पदार्थकी जो सत्ता है वह आवान्तर सत्ता हुई, इस रूपमे न देखकर यो परखा जा रहा है कि वही वस्तु जब भेद विवक्षामे न रहकर सामान्य मात्र ही दिखती है तो वह वस्तु महासत्तारूप है। जब वही वस्तु किसी विशेष गुण, विशेष पर्याय विशेष धर्मके रूपमे निरखा गया तो उस कालमे वस्तुमे विशेषधर्म मात्र है। तब कितने ही रूपसे देखा जा रहा है। वह सब आवान्तर सत्ता हुई।

अयमर्थो वस्तु यदा सदिति महासत्तयाऽवधार्येत ।
स्यात्तदवान्तरसत्तारूपेणाभाव एव न तु मूलात् ॥ २६७ ॥

महासत्ता द्वारा वस्तुके सद्भावकी अवधारणामे आवान्तर सत्तारूपसे अभाव की सिद्धि—महासत्ता और आवान्तर सत्ताका स्वरूप जानकर वहाँ यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तु जब महासत्ताकी दृष्टिसे यह सत्तारूप है यो निर्धारित किया जा रहा हो तो उस समय वस्तु आवान्तर सत्ताके रूपसे नही है, अभाव है ऐसा समझना चाहिए। ऐसा समझनेपर भी यह न जानना कि यह अभाव मूलमे हुआ हो। वस्तु तो वही विध्यात्मक है। उसे जब द्रव्य गुण, पर्याय, उत्पादव्यय, ध्रौव्यादिक अशोकी अपेक्षा न करके जब सामान्यरूपमे निहारा जा रहा हो उस समय वस्तु उस सत्ताके रूप मात्र है और अन्य अन्य विशेष आवान्तर सत्ताओंके रूपसे नही है। तो दृष्टिमे चूं कि यहा सत्व आया है अतएव उस दृष्टिमे है और जो दृष्टिमे आया ही नही है अथवा जिसकी विवक्षा ही नही है उस रूपसे उसका अभाव है।

अपि चावान्तरसत्तारूपेण यदावधार्यते वस्तु ।
अपरेण महासत्तारूपेणाभाव एव भवति तदा ॥ २६८ ॥

आवान्तरसत्ताद्वारा वस्तुके सद्भावकी अवधारणामे महासत्तारूपसे अभावकी सिद्धि जिस प्रकार वस्तु महासत्ताकी अपेक्षासे सत् है और वही वस्तु आवान्तर सत्की अपेक्षासे असत् है तो अब यह दृष्टि पलट कर देखें कि वस्तु आवा-

न्तर सत्ताकी अपेक्षासे है तो वही महासत्ताके रूपसे नहीं है। उसका अभाव है, यह बात विदित होती है। जैसे कि महासत्ताके लक्ष्यमें वस्तुको सामान्य मात्र अभावरूप देखा गया था, उसमें किन्हीं भी भेद अंश धर्मोंकी दृष्टि न थी, तब वह वस्तु सामान्य सत् मात्र ही तो विदित हुआ, अन्यरूपमें तो वह है ही नहीं, इसी प्रकार अब जब कि आवान्तर सत्ताके लक्ष्यसे लखा जा रहा है, जैसे भी आवान्तर विशेषको लक्ष्यमें लेकर देखा जा रहा है, जैसे कि शक्ति गुणके रूपमें लखा जा रहा है -तो वस्तु उन गुणोंके रूपसे है और अन्य रूपसे नहीं है। द्रव्यरूपसे, पर्यायरूपसे, अथवा अभेदरूपसे जो बात जानी थी वह नहीं है। इस तरह एक ही पदार्थमें स्याद अस्ति और स्याद नास्ति की प्रतीति हो रही है अनेक साधनोंपर एक साधारण बात समझानेके लिए अस्ति नास्ति का प्रयोग स्व और परकी दृष्टिसे किया जाता है जैसे घट घटरूपमें है, पट रूपमें नहीं है, अपनेसे भिन्न अनन्त अनेक पदार्थोंकी अपेक्षासे नास्ति ऐसा भी स्याद्वादका निरूपण है, वह भी असत्य तो नहीं है क्योंकि है भी, ऐसा अगर कुछ न हो तो वहाँ कल्पनायें करके आगे विचार करें, स्वरूप न बनेगा, जगत ही न रहेगा, कुछ तत्त्व व्यवस्था न बन पायेगी। तब वहाँ यह कहना ही होगा कि घट अपने द्रव्यसे है और पट आदिक पर द्रव्यसे नहीं है, यह बात कही गई स्वपरकी दृष्टिसे। किन्तु यहाँ अनेकान्त देखा जा रहा है एक ही पदार्थमें। भिन्न पदार्थोंका मुकाबलेतन रख करके अस्ति नास्तिकी बात यहाँ नहीं कही जा रही है, किन्तु एक ही वस्तुमें स्याद अस्ति स्याद नास्तिका प्रयोग किया जा रहा है। वस्तु भेद दृष्टिसे निरखनेपर जो कुछ प्रतीत होता है वह नहीं है अन्य दृष्टिसे निरखनेपर। तो वस्तु आवान्तर सत्ता रूपसे है यह निश्चित है। तो वही वस्तु महासत्ता रूपसे नहीं है यह भी निश्चित होता है।

दृष्टान्तः स्पष्टोऽयं यथा पटो द्रव्यमस्ति नास्तीति ।
पटशुक्लत्वादीनामन्यतमस्याविवक्षितत्वाच्च ॥ २६६ ॥

द्रव्यसे स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिमें एक दृष्टान्त—एक ही वस्तुमें स्याद अस्ति और स्याद नास्तिका जो प्रयोग घटित किया जा रहा है उस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त बिल्कुल स्पष्ट दृष्टान्त है। जैसे कहा कि पट द्रव्य है, और पट नहीं भी है। तो जब पटमें वस्त्रमें ततु शुक्लादिककी दृष्टि नहीं रखी जाती, केवल वस्त्र मात्रकी दृष्टि रखी जा रही हो उस कालमें उस दृष्टिसे वह किस प्रकार विदित हो रहा, एक सामान्यरूपसे। अथवा जब उस ही वस्त्रको ततु शुक्लादिकरूपमें निरखा तो वहाँ वह ततु सफेदी आदिक दिख रही हैं, वहाँ पट नहीं प्रतीत हो रहा। जैसे पट अपने आपमें स्याद है स्याद नहीं है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने आपके उस सामान्य महा सत्त्वके रूपसे है तो गुण-धर्म आदिक अनेक भेदोंकी दृष्टिसे नहीं है। क्योंकि जब जिस दृष्टिसे निहारा जा रहा है वहाँ अन्य दृष्टि गौणकी अविवक्षा है। इस

प्रकार द्रव्यकी अपेक्षासे स्याद अस्ति और स्याद नास्तिका वर्णन किया। जिस तरह द्रव्य अपेक्षासे वस्तुमे स्याद अस्ति स्यादनास्ति घटित होता है उसी प्रकार वस्तुमे क्षेत्र की अपेक्षासे भी स्याद अस्ति और स्याद नास्ति घटित होता है।

क्षेत्रं द्विधावधानात् सामान्यमथ च विशेषमात्रं स्यात् ।
तत्र प्रदेशमात्रं प्रथमं प्रथमेतर तदंशमयम् ॥ २७० ॥

क्षेत्रापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिके लिये सामान्यक्षेत्र व विशेषक्षेत्रका कथन—क्षेत्र भी दो प्रकारसे कहा जाता है सामान्य और विशेष, क्षेत्र नाम है उसका जहाँ कि वस्तुका निवास होता हो। वस्तु जिसमें रहे उसे उसका क्षेत्र कहते हैं। वस्तु जिसमे रहे उसे उसका क्षेत्र कहते हैं। परमार्थत वस्तु अपने प्रदेशमे ही है वस्तुका अस्तित्त्व उस वस्तुमे स्वयम है उससे अन्य वस्तुमे नहीं है। यदि कोई पदार्थ अनन्त पदार्थोंकी जगहमे ही रह रहा है तो रहे किन्तु क्षेत्र जब सबका अत. न्यारा न्यारा है तो बडेसे बडे शान्तिके क्षेत्रमे रहकर भी जब अपने परमार्थकी दृष्टिसे देखा जाता है तो वह अपने आपमे ही है। तो सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षा तो वस्तु अभेद प्रदेश मात्र है और विशेष दृष्टिकी अपेक्षासे वस्तु अनेक प्रदेश क्षेत्र मात्र है। जैसे बताया गया है कि जीवमे असंख्याते प्रदेश होते है तो वे असख्याते प्रदेश जीवमे अविभागी एक एक प्रदेशकी दृष्टिसे ही तो है और है वे असख्यात प्रदेशमात्र तो आखिर एक एक प्रदेशका परिमाण तो हैं। एक प्रदेशका परिमाण बताया गया है कि अविभागी परमाणु एक जितने क्षेत्रमे रखा उतने क्षेत्रका नाम एक प्रदेश है। यह तो हुई बाह्य क्षेत्रकी बात। और, वहाँ भी परमाणु अपने एक क्षेत्रमे रहा वह है परमाणुके स्वक्षेत्रकी बात। जब वह वस्तु स्वक्षेत्रमे हटकर विशेष क्षेत्रमे देखी जाती है तो वह वस्तु तन्मात्र है। तो क्षेत्र यहाँ दो प्रकार कहा गया है सामान्य क्षेत्र और विशेष क्षेत्र। प्रदेशमात्र-अभेद दृष्टिमे प्रदेशमात्रका कथन तो है सामान्य क्षेत्रका कथन और वस्तु एक दो आदिक अनेक अशमय है, ऐसा भिन्न भिन्न अंशोमे, असख्यात रूप से भी निरखना यह सब है विशेष क्षेत्र।

अथ केवल प्रदेशात् प्रदेशमात्र यदेष्यते वस्तु ।
अस्ति स्वक्षेत्रतया तदंशमात्राविवक्षितत्वान्न । २७१ ।

सामान्यक्षेत्रसे वस्तुका सद्भाव परिज्ञान किये जानेकी दृष्टिमे विशेष-क्षेत्ररूपसे अभावकी सिद्धि—सो उन सामान्य और विशेष क्षेत्रोमेसे जब कोई वस्तु केवल प्रदेशसे देखी जा रही हो तो वह प्रदेशमात्र ही विदित होगा स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे वस्तु अपने प्रदेशमात्र है और जब प्रदेशभेदकी दृष्टिसे देखने चलते हैं तो

उस समय वस्तु असख्यात प्रदेश नजर आ रहे तो वहाँ इस तरह ही जीव देखा जा रहा है कि लो यह जीव इतना बडा है। इसमे असख्याते प्रदेश हैं जब उस दृष्टिमे असख्याते प्रदेशके रूपसे महादेखते इस दृष्टिस तो जीव हैं और सामान्यरूपसे ज-ा कि प्रदेशभेद विवक्षित न होते हो उस दृष्टिसे वे जीव नही हैं। तो सामान्य, क्षेत्र और विशेष क्षेत्रसे दो कल्पनामे दृष्टिसे जुदे-जुदे विषय बनते हैं। पदार्थ तो एक ही है नो उस कल्पनामे ही जब भेदमे देखा तो अभेद क्षेत्रमात्र वस्तु सत् हैं और भेद प्रदेशके रूपसे असत् है क्योकि प्रदेश भेदकी वहाँ विवक्षा ही नही की गई है।

अथ केवलं तदंशात्तावन्मात्राद्व्यपदिश्यते वस्तु ।
अस्त्यंशविवक्षितया नास्ति च देशाविवक्षितत्वाच्च ॥२७२॥

विशेषक्षेत्ररूपसे वस्तुके सद्भावकी सिद्धिमे सामान्यक्षेत्रसे अभावकी सिद्धि - क्षेत्रके सामान्य और विशेष दो भेद किए गए थे सामान्य क्षेत्रमे तो देश मात्र ग्रहण किया गया है उसमे प्रदेश विस्तार प्रदेश सख्याकी कोई दृष्टि नही है अखण्ड एव भावात्मक दृष्टि की गई है। विशेष क्षेत्रमे वे द्रव्य कितने प्रदेशमे है इस तरह उनके प्रदेशकी सख्या विस्तार आदिक की दृष्टि है। तो जैसे ऊपरकी गाथामें कहा गया था कि केवल प्रदेश दृष्टि से, केवल देश दृष्टिसे सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षासे देखने पर अविभाज्य अखण्ड वह समस्त स्वक्षेत्रात्मक वस्तु है और असख्यात प्रदेशात्मक रूपसे नही है तो इस गाथामे यह बता रहे हैं कि जब उनमेसे केवल देशाशकी अपेक्षा लेते हैं तो जितने वस्तुके अश हैं केवल उन अशोरूपसे वस्तु कहा जाता है तो उस समय वह अशोकी अपेक्षासे तो है, किन्तु देशकी अपेक्षासे नहीं है। यहाँ देशकी विवक्षा नही है अर्थात् एक अखुण्ड क्षेत्रकी विवक्षा नही है। किन्तु जितने प्रदेश हैं वस्तुमे उतने प्रदेशको निरख करके खोजा जारहा है तो ऐसी दृष्टिमे वस्तु असख्यात प्रदेशात्मकरूपसे है और एक देशात्मक रूपसे नही है, यो क्षेत्रकी अपेक्षासे एक ही वस्तुमे एक के ही क्षेत्रसे अस्ति नास्ति का कथन हुआ। अब इसी विषयको दृष्टान्त पूर्वक कहते है।

संदृष्टिः पटदेशः क्षेत्रस्थानीय एव नास्त्यस्ति ।
शुक्लादितन्तुमात्रादन्यतरस्याविवक्षितत्वाद्वा ॥ २७३ ॥

क्षेत्रापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिका दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण - क्षेत्रकी अपेक्षासे ही वही वस्तु है और नहीं है, इस प्रकरणको दृष्टान्त द्वारा बताते हैं कि जैसे पट याने कोई वस्त्र उसका विस्तार वह एक देश है अर्थात् पूर्ण वह अपने क्षेत्ररूपसे है। जब किसीको केवल वस्त्र का ही प्रयाजन है मोटा पतला आदिक

वस्त्रमे नही अथवा रेशम या कपास आदिकके वस्त्रमे नही। वस्त्र मात्रपर जिसकी दृष्टि है उसकी दृष्टिमे वह एक वस्त्र दीखेगा वहाँ अन्य भेदकी कल्पना नही होती। तो ऐसी दृष्टिमे जो पट देखा तो वह पूर्ण पट देशरूपसे वह है और उसमे जो ततु हैं सफेदी आदिक जो रग है मोटा पतला आदिक रूपसे वह नही है, क्योकि दृष्टिमे केवल एक पट मात्रको लिया गया है और वहाँ शुक्लादिक ततुवोकी कोई विवक्षा नही है। तो जैसे वहाँ पट देशकी विवक्षा होनेपर पटकी अपेक्षासे है, शुक्लादिक तंतुओकी अपेक्षासे नही है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने आपके अविभाज्य एक क्षेत्रकी अपेक्षामे वह है तो असख्यात प्रदेशकी अथवा विस्तारकी दृष्टिसे वह नही है। इस ही पटको जब ततुओकी दृष्टिसे देखा, किसी पुरुषको कोई पसद है पतला अथवा मोटा अथवा रग डिजाइन, तो उसकी दृष्टिमे उस समय वे ततु, रग, डिजाइन आदिक हैं। उस समय उन ततु आदिककी अपेक्षासे वह वस्त्र है और एक क्षेत्ररूप, एक देशमात्र पटकी अपेक्षासे नही है। इसी प्रकार जब किसीकी दृष्टि असख्यात प्रदेश पर होती है तो वहाँ असख्यात प्रदेशकी अपेक्षासे वह है और एक अखण्ड क्षेत्ररूपसे नही है। यो क्षेत्रकी अपेक्षासे वस्तुमे अस्ति और नास्तिका वर्णन है। अब कालकी अपेक्षासे एक ही पदार्थमे अस्तित्त्व और नास्तित्त्वका प्रतिपादन करते हैं।

कालो वर्तनमिति वा परिणमनं वस्तुनः स्वभावेन ।
सोऽपि पूर्ववद् द्वयमिह सामान्यविशेषरूपत्वात् ॥ २७४ ॥

कालापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिके लिये सामान्यकाल व विशेषकालका कथन वर्तनाको काल कहते हैं अथवा कहो कि वस्तुका अपने ही स्वभावसे प्रतिसमय जो परिणमन होता है उसका नाम काल है। सो वह काल भी द्रव्य, क्षेत्र भावकी भाँति दो प्रकारका है—सामान्य काल और विशेषकाल। यहाँ काल शब्दसे ग्रहण करते हैं वस्तुके उस हीका स्वयका परिणमन। और वह परिणमन सामान्यरूपसे निरखा जायगा और कभी विशेषरूपसे निरखा जायगा। तो सामान्यरूप से निरखा हुआ अर्थात् परिणमन मात्र, वह है सामान्य काल और जहाँ व्यतिरेक योजित होता है यह वह नही है, इस प्रकारका जो विशेष परिणमन है, विशिष्ट, खास परिणमन है वह कहलाता है विशेष परिणमन। तो उन्ही सामान्य परिणमन और विशेष परिणमनके माध्यमसे कालकी अपेक्षासे वस्तुमे अस्तित्त्व और नास्तित्त्वका वर्णन किया जायगा।

सामान्यं विधिरूपं प्रतिषेधात्मा भवति विशेषश्च ।
उभयोरन्यतरस्यावमग्नोन्मग्नत्वादस्ति नास्तीति ॥ २७५ ॥

सामान्य और विशेष कालका मर्म—सामान्यकालका नाम है विधि रूप काल और विशेष कालका नाम है प्रतिषेधात्मक काल। इस सामान्य और विशेषके पर्यायवाची शब्द जो दिए हैं उनमे मर्म है। सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे जब निरखते हैं तो सभी परिणमनोंमें यही है, परिणमन ही है, केवल विधिकी बात निरखते हैं और जो विशेष परिणमन है, समय समयमें जो जुदा जुदा परिणमन है उसपर दृष्टि देकर जब कुछ खोज की जाती है तो वहां प्रतिषेधका प्रयोग होता है। यह वह नही है, परस्पर एक पर्यायसे दूसरी पर्यायमें व्यतिरेक दिखता है, इस कारण विशेषकालका नाम प्रतिषेधात्मक काल कहा है और सामान्यकालका नाम विधिरूप काल कहा है। दोनो कालोंमेसे किसी एककी विवक्षा होनेपर दूसरेकी अविवक्षा हो ही जाती है और ऐसी स्थितिमे कि जब कोई एक विवक्षित है और दूसरा अविवक्षित है तो वहां अस्तित्व और नास्तित्व धर्मकी सिद्धि बनती है। जो काल विवक्षित है उसकी दृष्टि में वही काल अस्तिरूप है और जो अविवक्षित काल है उसका नास्तित्व है। यो समझिये कि जैसे जब कभी सामान्यपर दृष्टि दे रहे हैं तो उसके अंशभूत विशेष परिणमन डूब गया है। डूब गया है इसका भाव है गौण हो गया। डूबा हुआ पदार्थ वही मूलसे नही मिट जाता किन्तु वह दवा हुआ है अप्रकट है, इसी प्रकार जो निमग्न हो गया, हट नही गया, नष्ट नही हो गया किन्तु इस दृष्टिमे वह निमग्न है, दवा हुआ है। तो जब सामान्य कालकी दृष्टि होती है तब वहां विशेषकाल निमग्न है, डूब गया है और सामान्यकाल अनिमग्न है उसकी दृष्टि चल रही है और वहां सामान्य परिणमन दृष्ट हो रहा है। जब विशेषकालकी दृष्टि होती है तो सामान्य परिणमन निमग्न हो गया है अब वहां विशेष कालकी दृष्टि चल रही है। यहां कालका अर्थ है स्वका परिणमन।

कालापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी स्वकालमे घटितता—काल द्रव्य की बात नही कह रहे, यहां अनेकान्त एक ही द्रव्यमे उस एक ही द्रव्यके धर्मोके माध्यमसे बताया जा रहा है। यहां निमित्तभूत कालकी दृष्टि नही रखना है। तो जो वस्तुका परिणमन है उस ही परिणमनको दृष्टिमे लेकर अस्तित्व और नास्तित्वका यह वर्णन किया जा रहा है। अस्तित्व और नास्तित्वके वर्णनमे अपेक्षा दो होनी चाहिए सो यहां सामान्यकाल और विशेषकाल ये दो अपेक्षायें रखी गई हैं। तो इन अपेक्षाओमे जब सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे तका जा रहा तो बस परिणमन मात्र है। जिस दृष्टिमें कहते हैं कि वस्तुका उत्पाद व्यय स्वभाव है, विशिष्ट अवस्थाका उत्पाद व्यय वहां इष्ट नही है। अभिप्रायमे नही लिया गया किन्तु परिणमनकी जो प्रकृति है उत्पन्न होते रहना, व्यय होते रहना, इतना सामान्य मात्र लिया गया है। तो उत्पाद व्यय जैसी क्षणिक दशायें भी सामान्य बन जाया करती हैं। तो वस्तुके सभी परिणमन परिणमन सामान्यकी दृष्टिसे सामान्य बन जाय इसमें क्या आश्चर्य

है। सभी सामान्य परिणमनकी दृष्टिमे विधिरूपसे ही उत्तर आयगा। सब कुछ है ही है, न का वहाँ काम नही, इसी कारण सामान्य कालको विधिरूप कहा गया है, और जहाँ विशेष कालकी बात आयगी वहाँ एक परिणमनमे दूसरा परिणमन विभिन्न है। तो अपने आप ही एकका दूसरेमे अभाव है, प्रतिषेध है। तो जहाँ प्रतिषेध ही कलेवर बन गया ऐसी दृष्टिको प्रतिषेधात्मक दृष्टि कहते हैं। तो विधिरूप कालसे वस्तु है तो प्रतिषेधात्मक कालसे वस्तु नही है, जब प्रतिषेधात्मक कालमे वस्तु है तो विधिरूप दृष्टिसे वस्तु नही है।

तत्र निरंशो विधिरिति स यथा स्वयं सदेवेति ।
तदिह विभज्य विभागैः प्रतिषेधश्चांश कल्पनं तस्य ॥ २७६ ॥

विधिकाल व प्रतिषेधकालका दिग्दर्शन — ऊपरकी गाथामे विधि और प्रतिषेधका वर्णन आया है और बताया गया है कि विधि तो सामान्य रूप है और प्रतिषेध विशेषरूप है। इस ही बातको खुलासा करते हुए प्रकृत कालकी अपेक्षा भेद दृष्टिसे स्याद् अस्ति स्याद् नास्तिका सकेत कर रहे हैं। विधि निरश होती है सामान्य अशरहित जिसको निरखकर केवल हाँ हाँ ही उत्तर आये उस भावको विधि कहते हैं जैसे सभी पदार्थ स्वभावसे सत्स्वरूप हैं ऐसा समझना सो विधि है। सभी सत् हैं। सत् सामान्यकी दृष्टिसे देखा और वहाँ सत् सत् यह ही बोध हुआ। प्रतिषेधरूप अथवा कोई विशदताका बोध नही। जितनी भी विशेषतायें होती हैं वे दूसरेका प्रतिषेध करती हुई होती हैं। तो विशेषमे तो प्रतिषेधका अवसर है पर सामान्यमे प्रतिषेधका अवसर नही है। जैसे कहा नीला कमल तो प्रतिषेध उसके साथ लगा हुआ है नीला, न कि पीला आदिक। तो जो विशेष परिणमन होते हैं उनके साथ प्रतिषेध लगा ही रहता है इस कारण विशेष प्रतिषेध स्वरूप कहलाता है और सामान्य विधि स्वरूप कहलाता। सामान्यमें कही प्रतिषेधका अवसर नही, वह तो सर्वव्यापक दृष्टिसे सबको निहारता है। कुछ, छोटा कुछ ग्रहण किया यह बात सामान्यमें नही है। इस कारण सामान्य विधिरूप ही होती है। तो जैसे पदार्थ स्वभावत स्वयं सत् स्वरूप ही है यह तो कहलायी विधि और उस पदार्थका विभाव द्वारा विभाग करना कि द्रव्य गुण और पर्याय ऐसा नाना भेद द्वारा सत्ताका विभाग कर दिया उसमे अश कल्पना हुई ना तो उसका रूप है प्रतिषेध। जैसे पदार्थमे भेद किया कि गुण, तो प्रतिषेध हुआ, गुण हो न कि अन्य कुछ। जो और भी भेद किए जा रहे हैं, उसमे शेष भेदोका प्रतिषेध साथ मे है तो यो प्रतिषेध भेदरूप होता है और उसमे अश कल्पनायें होती हैं। ये सभीकी सभी बातें एक साथ है। जहाँ विशेषता है वहाँ विभाग जरूर पडे होते हैं, जहाँ विभाग पडे होते हैं वहाँ विशेषता आती ही है और जहाँ विभाग है, विशेषता है वहाँ अश कल्पनायें होती है और वहाँ प्रतिषेध सदके साथ लगा होता है। तो यो सामान्य

कालको तो विधिरूप कहते है और विशेष कालको प्रतिषेधात्मक कहते हैं। सो जब सामान्य कालकी अपेक्षासे वस्तु है यों अस्तित्वका कथन होता है तब वहाँ विशेषकाल की अपेक्षासे नहीं हैं यो अभाव भी बनता है। इस ही प्रकार जब विशेष कालकी अपेक्षासे है यो अस्तित्व कहा जाता है तो सामान्य कालकी अपेक्षासे नही है। वहाँ यह नास्तित्व बताया जाता है।

तदुदाहरणं सम्प्रति परिणमनं सत यावधार्यत ।
अस्ति विवक्षितत्वादिह नास्त्यंशस्याविवक्षया तदिह ॥ २७७ ॥

विधिकाल व प्रतिषेधकालका घटन—सामान्य और विशेषकालके साथ अस्ति नास्तिका जो वर्णन किया गय है उसका उदाहरण इस प्रकार ले सकते हैं कि जिस समय केवल सत्ताके द्वारा ही परिणमनका निश्चय किया गया हो उस समय उसकी विवक्षा होनेसे वह विधिरूपसे है किन्तु उसके अंशोकी विवक्षा न होनेसे अशो की अपक्षासे नही है यो सामान्य और विशेषकी अपेक्षासे अस्ति नास्तिपना सिद्ध होता है। इसी प्रकार जब विशेषकालको प्रधान करके निरखते हैं तो विशेष परिणमनकी अपेक्षासे जो अस्तित्व ध्यानमें आया वह सामान्य कालकी अपेक्षासे नहीं है, वहाँ और प्रकार ही है। यो सामान्यकाल और विशेषकालकी अपेक्षासे अस्तित्व नास्तित्वको घटित करनेका प्रसग बताया है। अब इस ही को लौकिक पदार्थोंमे दृष्टान्त देते हुए कह रहे हैं।

संदृष्टिः पटपरिणतिमात्रं कालः यतस्वकालतया ।
अस्ति च तावन्मात्रान्नास्ति पटस्तन्तुशुक्लरूपतया ॥ २७८ ॥

सामान्यकाल व विशेषकालकी अपेक्षासे स्यादस्ति स्यान्नास्तिका दृष्टान्तपूर्वक निर्णयन- जिस पटरूप जो सामान्य परिणमन है वह काल सामान्य की अपेक्षासे पटका स्वकाल कहा जाता है और पट परिणमन सामान्यके अतिरिक्त अन्य जो कुछ विशेष परिणतियां हैं जैसे तंतु, शुक्ल परिणमन आदिक जो भी विशेष परिणमन है, वे विशेष परिणमन जब निरखे जाते हैं तब तंतु शुक्ल आदिकरूपसे पदार्थका अस्तित्व है, पर पट परिणति सामान्यकी अपेक्षासे वह नही है। जिस समय जिस दृष्टिमे जो कुछ निरखा गया उस समय उस दृष्टिमें मात्र वही है, अन्यका प्रतिषेध है। यो स्वकालका अस्तित्व है तो परकालसे नही है अथवा सामान्य कालसे अस्तित्व है तो विशेष कालसे नही है और जो अस्तित्व विशेष कालकी दृष्टिमें विदित होता है वह सामान्य कालकी अपेक्षासे नही है। यो कालकी अपेक्षासे द्रव्यमे स्याद् अस्ति नास्तिका कथन किया ग ा है। इस प्रकरणमे सर्वप्रथम यह बताया था कि

वस्तु चार युगलोंमें गुम्फित है। स्याद अस्ति स्याद नास्ति स्याद नित्य स्याद अनित्य स्याद एक स्याद अनेक स्याद तत् स्याद अतत् और ये प्रत्येक युगल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे घटित होते हैं, सो उस प्रसगके अनुसार यहाँ तक द्रव्यकी अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्ति, क्षेत्र अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्ति और कालकी अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्तिका वर्णन किया। अब भावकी अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्तिका वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

भावः परिणामः किल स चैव तत्त्वस्वरूपनिष्पत्तिः ।
अथवा शक्तिसमूहो यदि वा सर्वस्वसारः स्यात् ॥ २७६ ॥

भावका स्वरूप —भाव कहते है परिणामको अथवा कहो तत्त्वका जो स्वरूप है वह भाव है अथवा कहो शक्तियोका जो समुदाय है सो भाव है। अथवा भाव शब्दसे पदार्थके सर्वस्व सारका ग्रहण करना चाहिये। इसमे भावकी व्याख्या चार प्रकारसे कही गई है। पहिले बताया है कि भावका अर्थ परिणाम है। भाव शब्द भू धातुसे बना है। जिसका अर्थ है होते रहना। तो होते रहनेकी बात जब कही जाती है तो उसमे परिणाम ही तो विदित होता है। इस भाव शब्दसे परिणाम अर्थ विदित होता है। क्योंकि होते रहनेकी बात परिणामसे सम्बन्धित होती है। यहाँ भावका स्वरूप साधारणरूपसे कहा गया है केवल इतने ही स्वरूपको इन ही शब्दोंमें बताकर कुछ मीमांसे बाहरी बात भी कही जा सकती है। होते रहनेका परिणाम है भाव। तो जो कुछ भी होता रहे विरुद्ध परिणमन हो विपरीत परिणमन हो तो वह भी यहाँ आ जायगा ऐसी बात न आ सके इस कारण लक्षण कहा गया है कि जो तत्त्व स्वरूपकी निष्पत्ति है तत्त्व स्वरूप है वही उसका भाव है। इस कथनमे यह बताया गया है कि स्वरूपकी निष्पत्ति भावमे आयगी न कि जो चाहे परिणमन हो वे सब परिणमन भावमे आयेंगे। इतना कह देनेपर भी अब भी यह संशय बना रह सकता है तो क्या ऐसा जो स्वरूप निष्पन्न होता है वह तो क्षणिक ही होगा, तो क्या भाव क्षणिक हुआ करता है? यो तो क्षणिकवादियोंने ऐसे ही भावकी व्याख्या की है। भाव, पदार्थ वस्तु पूर्ण जो एक समयमे हो उसकी धारा बौद्धोंने भी स्वीकार किया है। पूर्वक्षण उत्तर क्षणमें अपने आधारका समर्पण करके निवृत्त हो जाते हैं, यह कहा गया है। तो यो भावका लक्षण किया तो गया कि तत्त्व स्वरूपकी निष्पत्तिको भाव कहते हैं पर इसमे क्षणिकताकी बात आ जाती है। तब और विशेष स्पष्ट करनेके लिए तीसरी बार कहा है कि शक्ति समुदायका नाम भाव है। जिस वस्तुकी जितनी शक्तियाँ हैं उनका समुदाय ही भाव है। शक्तियाँ वस्तुके साथ ही साथ नित्य हुआ करती हैं। जैसे परिणमनमे उत्पाद व्ययकी बात आती है यो शक्तियोका उत्पादव्यय नहीं होता जैसे मूल सत्का उत्पादव्यय नहीं है इसी प्रकार शक्तियोका भी उत्पादव्यय

नहीं है । तो जब शक्ति समूहका नाम भाव कहा गया तो इससे केवल एक पक्ष आया कि गुण तो नित्य हुआ करते है तब वह भाव अपरिणामी हो गया । गुणोंकी व्याप्ति नित्यताके साथ है अनित्यताके साथ नही है । तो यहाँ जैसे पहिले क्षणिकता दोषका निवारण करनेके लिए भावका तीसरा अर्थ करना पडा तो इस भावके तीसरे लक्षण मे सर्वथा नित्यताकी आपत्ति आ सकती है, अतएव चौथे पक्षमे बताया गया; अन्तमे कि पदार्थका सर्वस्व सार भाव कहलाता है याने वस्तुका जो स्वरूप है, वही उसका भाव है । यों भावका स्वरूप चार प्रकारोंमे बताया गया है ।

भू व अस धातुके अर्थमे वस्तुस्वरूपका दर्शन—भाव शब्द भू धातुसे बना है । भू धातुका अर्थ सत्ता है और जब पूछा गया कि सत्ता शब्द काहेसे बना ? तो वह बना अस धातुसे । उसका अर्थ है होना । तो अब है व होना इन दोनोका कैसा परस्पर सहयोग है । भू धातुका अर्थ तो सत्ता है और सत्ताके अस धातुका अर्थ होना है । तो होना इसका अर्थ क्या है ? है इसका अर्थ क्या है ? होना है । तब इस व्याकरणके सकेतमे हमको यह सार मिला है कि है होनेका अविनाभावी है और होना है का अविनाभावी है । कोई पदार्थ यदि है तो वह होता है यह बात जरूर होगी । कोई पदार्थ होता है तो उसमे है याने अस्तित्व है । होना अर्थात् उत्पाद व्यय है, अर्थात् ध्रौव्य । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनोका एक पदार्थमे अविनाभाव है और ये एक साथ रहते है इस कारण भाव शब्द कहकर केवल अपरिणामी शक्तिको न लेना अथवा परिणामको न लेना, किन्तु वस्तुका जो स्वरूप है वही भाव है, यह अर्थ लेना चाहिये ।

सविभक्तो द्विविधः स्यात्सामान्यात्मा विशेषरूपश्च ।
तत्र विवक्षो मुख्यः स्यात्स्वभावोऽथ गुणो हि परभावः ।२८०।

भावके प्रकार और उनमे विवक्षानुसार स्वभाव व परभावका विभाग इस भावके विभाग करनेपर सामान्यभाव और विशेषभाव ऐसे दो प्रकार बनते हैं । सामान्यभाव और विशेषभावमेसे जो विवक्षित होता है, जिसकी दृष्टिसे कथन करना इष्ट होता है वह तो मुख्य हो जाता है और उस समय उसे स्वभाव कहेंगे और उनमे जो अविवक्षित होता है वह गौण हो जाता है । तब उस दृष्टिसे वह परभाव कहा जायगा । यहा विवक्षितको स्व और अविवक्षितको पर कहा गया है । भावके सबन्ध मे जो दो भेद किए गए थे—सामान्यभाव और विशेषभाव । सामान्यभावमे तो एक वस्तुका स्वभाव भाव आया जो सदा व्यापक बना रहता है और विशेष भावमे उस भावके अंश किए जाए, शक्तियाँ मानी जायें, गुण पहिचाने जायें तो वे सब कहलायेंगे विशेषभाव । जब सामान्यभावकी विवक्षा हुई उस समय वह कहलायेगा स्वभाव

और विशेषभाव हो गया प भाव और जब विशेषभावकी दृष्टिका वर्णन करनेकी बात इष्ट हो तो विशेषभाव कहलायेगा स्वभाव। और सामान्य भाव कहा जायगा परभाव इस गाथामे उदाहरणके रूपमे सामान्यका सद्भाव और विशेष याने गुणोको परभाव कहा जाय; इतना ही मात्र जानकर कुछ लोग गुणोको परभाव कह देते हैं और चैतन्य स्वभावको स्वभाव कह देते हैं, किन्तु इस प्रसगकी बातको जाननेमे उन्होने भूल की है। यहाँ स्वभाव और परभाव बदल बदलकर कहे जाते हैं, जब सामान्य भावकी दृष्टिमे कथन हुआ तो सामान्यभाव स्वभाव कहलायेगा और विशेषभाव गुण शक्ति आदिक परभाव कहलायेगा। और जब उस ही वस्तुको शक्ति गुण आदिक विशेषभावकी दृष्टि से निरखा जायगा तो गुण स्वभाव कहलायेगे और वस्तुका सामान्य स्वभाव परभाव कहा जाने लगेगा तो यो स्वभावसे अस्ति है और परभावसे नास्ति है।

सामान्यं विधिरेव हि शुद्धः प्रतिषेधकश्च निरपेक्षः।
प्रतिषेधो हि विशेषः प्रतिषेध्यः सांशकश्च सापेक्षः॥ २८१॥

सामान्य और विशेषका पर्यायवाची शब्दो द्वारा स्वरूप विवरण—सामान्य तो विधि ही कहलाती है और वह शुद्ध होती है, प्रतिषेधक होती है, एव निरपेक्ष होती है किन्तु विशेष प्रतिषेध कहलाता है और वह प्रतिषेध्य होता है, सांशक होता है सापेक्ष होता है। यहाँ सामान्य भावको शुद्ध कहा है उसका अर्थ है कि उसमे कोई तरङ्ग विशेषताये नही होती। वह सर्व विशुद्ध एक रूप है और वह समस्त प्रतिषेधोका प्रतिषेध करने वाला है, जहा केवल विधि ही दृष्टिगत है वहाँ प्रतिषेध्य अशका अवकाश ही कहाँ है? अर्थात् जहाँ प्रतिषेध प्रतिषेध्यका अवकाश नही है वह स्वय ही सहज प्रतिषेधक कहलायेगा और वह सामान्य भाव निरपेक्ष है, उसमे अन्यकी अपेक्षा तो दूर रहो काल मात्र सामान्यकी भी अपेक्षा नही है। सामान्य भाव निरपेक्ष भाव कहलाता है। अब विशेष भावकी बात देखिये! विशेष भाव वहाँ ही होता है जहाँ भाग अथवा अश बनाया गया हो। तो सामान्य भाव है वस्तुका स्वरूप और उसका भेद करके जाना गया है शक्ति गुण, तो शक्ति और गुण ये भाग करके जाने गए है इस कारण विशेष हैं। विशेष वही कहलाता है जो अन्यका प्रतिषेध कर सके। जितने भी लोकमे विशेषण होते हैं उन सबमे यही तारीफ है कि वे अपने प्रतिपक्षका निरोध करते हैं। जैसे कहा लाल गाय तो वहाँ लालके अतिरिक्त अन्य सब रङ्गोका सफेद, काला पीला आदिक सबका प्रतिषेध हो जाता है, तो विशेषमे विशेषता ही है कि वह अन्यका प्रतिषेध कर देता है। तो वह विशेष प्रतिषेधसे ही तो विदित हुआ। प्रतिषेध द्वारा गम्य हुआ। यह लाल गाय याने नीली, काली, पीली आदिक नही। इस प्रतिषेधके द्वारा ही वहा लाल गायका समर्थन हुआ है। अत विशेष प्रतिषेध्य होता है और यो भी प्रतिषेध है कि उसके अतिरिक्त अन्य तत्त्वोका

भी समकक्ष नही हुआ इसलिए वह प्रतिपक्षके काबिल है। यो विशेषभाव अश सहित हुआ। किसी वस्तुमे भाव सहित बना क्योकि उसके अश किए गए हैं। एक आत्मा आत्मा ही कोई कहता जाय तो सामान्य ही बात रही उससे तीर्थ प्रवृत्ति नही बनी। जब उसका विशेषण किया गया कहा गया जिसमे ज्ञान दर्शन चारित्र हो जो जान देखे, रमे वह आत्मा है। तो अब जानन यह हुआ ज्ञान गुण देखना यह हुआ दर्शन गुण और रमना यह हुआ चारित्र गुण तो अश कर दिए गए, विशेष तभी बना। या विशेष भाव अश सहित होता है तथा सापेक्ष होता है। किसी भी वस्तुमे कुछ भी भेद किये जायें तो उन भेदोंके किये जानेकी कोई अपेक्षा हुआ करती है। कैसी ही अपेक्षामे भेद किया हो, यह बात भेदोमे बनेगी। तो भेद करके ही विशेष बना है अतएव वह सापेक्ष है। आत्माके भेद किए गए ज्ञान, दर्शन चारित्र गुण तो अपेक्षा क्या रखी गई कि या शाश्वत् हों सदा रहें, तीनों कालकी अपेक्षा रख करके ये भेद किए गए, और जब कभी परिणमन, पर्यायका भेद कर दिया जायगा तो वहाँ क्या किया गया ? एक कालके वर्तमानकी अपेक्षा करके कहा गया। तो जो भी विशेष होंगे उनमे भेद करनेकी कोई न कोई अपेक्षा होती ही है। तो जितने भी विशेष भाव हैं वे सापेक्ष भाव हैं। इस गाथामे सामान्य भाव और विशेष भावका विवरण किया गया है। अब भावको सामान्य और विशेष दो प्रकार बताकर हमे इस प्रसगमे भाव क्या लेना है उसको यहाँ कहते हैं।

अयमर्थो वस्तुतया सत्सामान्यं निरंशक यावत् ।
भक्त तदिह विकल्पैर्द्रव्याद्यैरुच्यते विशेषश्च ॥ २८२ ॥

सामान्यकी निरशकता व विशेषकी विकल्पवानयता—सामान्य भाव और विशेषभाव अश और निरशकी पद्धतिसे होते है। जब तक सत्मे अश कल्पना नही की जाती तब तक वह सत् सामान्य कहा जाता है और जब उस सत् द्रव्यका गुणसे पर्यायसे, किन्ही भी रूपोंसे विभाग कर दिया जाता है तो वह विशेष कहा जाता है। तो अभी तक वही बात कही जा रही है विवरणके साथ जिस प्रकारका वर्णन प्रसगमे आया हुआ है। सामान्य निरश है और विकल्पोके द्वारा कहा जाने योग्य विशेष हुआ करता है। तो यहाँ सामान्य भाव और विशेष भावको सुगम पद्धति से ऐसा जानें जैसे किसी वस्तुमे घटाया, आत्मामे घटाते हैं तो आत्मामे जो चैतन्य स्वरूप है, स्वभाव है वह तो है सामान्य भाव और उस स्वभावमे जब विभाग किया गया कि ज्ञान और दर्शन तब यह हो जाता है विशेष भाव। सामान्य भाव और विशेष भाव यद्यपि कही प्रथक प्रथक द्रव्यकी बात नही है, वस्तु वही एक कही गई, किन्तु सामान्य भावके अवगमके समय जो प्रभाव है उपयोगमे और विशेष गुणके अवगमके समय जो प्रभाव है उपयोगमे उसमे अन्तर स्वय अनुभव करने वालेको

विदित हो जाता है। तो सामान्य भाव और विशेष भाव इसी लिए ये अपने अपने स्वरूप जुदे रखते हैं पर प्रदेश प्रथक नहीं है, आधार उनका प्रथक नहीं है, तो तब सामान्यका अर्थ हुआ निरश और विशेषका अर्थ हुआ अविकल्प तो इन दो पद्धतियो से इस वस्तुमे क्या दृष्टगत होता है उसे अब कहते हैं।

तस्मादिदमनवद्य सर्वं सामान्यतो यदाऽप्यस्ति।
शेषविशेषविवक्षाभावादिह तदैव तन्नास्ति ॥ २८३ ॥

भावकी अपेक्षासे स्यादस्ति स्यान्नास्तिका विवरण-इस कारण यहकथन निर्दोष है कि जिस सत् सामान्यरूपसे है, उस समय विशेपभावरूपसे नहीं है। विवक्षा सामान्यमें होतो दृष्टाके उपयोगमे वहसामान्यसहित ही दृष्टगत होता है जब विवक्षामें विशेष हुआ तो दृष्टाकी दृष्टिमे वह विशेष ही विवक्षित होता है जो विवक्षित हैं वह तो उपयोग करने वालेके आशयमे है, जो अविवक्षित है उसका उस दृष्टिमे अभाव है. जैसे एक मोटा दृष्टान्त लो एक मनुष्य हैं वह तो बालक, जवान और वृद्ध इन तीन अवस्थाओमेसे ही होगा। लेकिन जब केवल मनुष्यत्वकी दृष्टिसे देखा जा रहा हो तो उस दृष्टिमे बचपन, जवानी, बुढापा ये कुछ भी नहीं है, और जब घटना ही ऐसी हो काम ही इस तरहका हो कि बूढा, या जवान या बालक की ही आवश्यकता है ऐसी दृष्टिमे केवल मनुष्य सामान्य दृष्टिमे न रहा। इस कार्यके लिए तो जवान ही होना चाहिए। बस उसे वही दिख रहा। तो जब विशेषकी दृष्टि होती है, वहाँ विशेषका अस्तित्त्व है। जब कभी बिरादरीकी बडी सभा होती है उस सभामे कुछ भी कहनेका अधिकार सर्व व्यक्तियोको समान है। उस वक्त कोई काम बनानेके लिए एक सामान्य विवरण किया जाता है कि जिससे छोटासे छोटा भी अपनेको इस कार्यका प्रभु माने। उस समय भेदसे लाभ नही होता, क्योकि वहाँ राय देनेका सबको समान अधिकार है। वह प्रसग है बिरादरीका। लेकिन जहाँ कोई विशेष कार्य करनेकी घटना हो, कोई आफिसका काम हो सरकारी काम हो या कोई अन्य काम हो उसमे बिरादरी नही देखी जाती। वहाँ तो जो समर्थ है उस ही पुरुषका व्यवहार चल सकता है। तो सामान्य दृष्टिमे प्रभाव और कुछ है, विशेष दृष्टिमे प्रभाव और कुछ है। तो जब सामान्यका पदार्थ है तो शेष विशेषोकी विवक्षा न होनेसे उस समय पदार्थ विशेषरूप से नही है। यो भावकी अपेक्षासे स्याद अस्ति, स्याद नास्तिका वर्णन चल रहा है। और यहाँ अब तक यह सिद्ध किया कि सामान्य भावसे जब है तब विशेष भावसे नही विशेष भावसे जब है तब सामान्य भावसे नही।

यदि वा सर्वमिदं यद्विवक्षितत्वाद्विशेषतोऽस्ति यदा।
अविवक्षितसामान्यात्तदैव तन्नास्ति नययोगात् ॥ २८४ ॥

विशेषभावकी अपेक्षासे अस्तित्वका दृष्टके समय सामान्य भावके नास्तित्वका कथन—ऊपरकी गाथामें बताया गया था कि जब सामान्य दृष्टिसे देखनेपर वस्तु सामान्यरूपसे है तो जो है है, जो देखा गया वही विशेषकी विवक्षा न होनेसे विशेषापेक्षया वह ही नहीं है। अब इस गाथामें बतला रहे हैं कि जब विशेष भावकी अपेक्षा परखा जा रहा है तो विशेषभाव विवक्षित होनेसे विशेषभावकी अपेक्षा से ये सब जिस समय हैं, यह प्रतीत हो रहा है उस समय सामान्यकी विवक्षा न होनेसे अविवक्षित सामान्यकी अपेक्षासे उस समय वह नहीं है। यहाँ विवक्षितको तो कहा है स्वभाव और अविवक्षितको कहा है परभाव। सामान्यभावमें सामान्य एक स्वरूप लिया गया जिसका कि भेद न किया जाय और विशेषभावमें उस सामान्य स्वरूपको समझनेके अनुरूप विशेष अंश कर दिए गए। तो फिर वहाँ मुकाबलेमें दो भाव आ गए सामान्यभाव और विशेषभाव। जब सामान्यभाव विवक्षित है तो विशेषकी अपेक्षा से वस्तु नहीं है, जब विशेषभाव विवक्षित है तो सामान्यभावकी अपेक्षासे वस्तु नहीं है, इसी बातको स्पष्ट कर रहे हैं।

तत्र विवक्ष्यो भावः केवलमस्ति स्वभावमात्रतया।
अविवक्षितपरभावाभावतया नास्ति सममेव ॥ २८५ ॥

विवक्षित भावकी दृष्टिके समय अविवक्षित भावके अभावकी दृष्टि—सामान्यभाव और विशेषभावमेंसे जब जो विवक्षित भाव हो वह तो कहलायेगा स्वभाव और उस स्वभावकी अपेक्षासे वह वस्तु है उसी समय परभाव कहलाया अविवक्षित। भाव तो अविवक्षित परभावमें है उस कारण उसी समय अविवक्षित भावकी अपेक्षासे नहीं है यह सिद्ध होता है। भावके सामान्य विशेषमें दो बातें दिखाई गई हैं कि सामान्य भाव तो है एक सर्वस्वसाररूप भाव जिसमें वस्तुका सर्वस्व सत्त्व समझमें आये वह तो है सामान्यभाव और उस सामान्यभावके ही अंश करके जो कि शक्ति और गुणोंकी अपेक्षासे बन रहे हैं शक्ति और गुणको बताना विशेषभाव है। और, जब स्याद अस्ति, स्याद नास्तिका इस भावकी अपेक्षासे वर्णन करने चलते हैं तो सामान्यकी विवक्षा होनेपर अस्ति जो कहलाया विशेषकी विवक्षा न होनेसे वह नहीं है यों कहलायेगा। जिसकी विवक्षा की वह तो है स्वभाव और जिसकी विवक्षा नहीं की वह है परभाव। यहाँ स्वपरका भाव विवक्षा भी है न कि प्रदेश-भेदके कारण है। अब भावकी अपेक्षा वस्तु स्याद अस्ति स्याद नास्ति जो बताया गया है उसका स्पष्टीकरण दृष्टान्त द्वारा कर रहे हैं।

संदृष्टिः पटभावः पटसारो वा पटस्य निष्पत्तिः।
अस्त्यात्मना च तदितरपटादिभावाविवक्षया नास्ति ॥ २८६ ॥

भावापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिके घटनका दृष्टान्त— जैसे कि पटका सामान्यभाव जो कुछ है वह पटभाव है जैसे पटकी निवृत्ति वहां पटका जो सामान्य भाव है सामान्यतया वस्त्रको निरखनेपर केवल वस्त्रकी मुख्यतासे उसे निहारनेपर जो दृष्टि बनी है वह है पटभाव सामान्यभाव और उसके अतिरिक्त पट हीमे पाये जाने वाले जो भेद हैं ततु शुक्ल रूपादिक ही विशेषभाव है, तो जब पटका भाव विवक्षित हो रहा हो सामान्यभाव तो उस समय वह पदार्थ उस रूपसे है और भेद भाव शुक्ल ततु आदिकरूपसे वे नही है। जो विवक्षित है उस रूपसे वह है और उससे भिन्न जो भी पट आदिक भाव हैं उनकी विवक्षा नही है, अतएव उस रूपसे वे नही हैं।

सर्वत्र क्रम एप द्रव्ये क्षेत्रे तथाऽथ काले च ।
अनुलोमप्रतिलोमैरस्तीति विवक्षितो मुख्यः ॥ २८७ ॥

वस्तुमे स्यान्नित्य स्यादनित्यका योजन—उक्त कथनमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे स्याद अस्ति स्याद नास्तिका वर्णन किया गया। वस्तुको जिन चार युगलोसे गुम्फित बताया गया था उनमेसे प्रथम युगलकी बात कही गई, अब शेष ३ युगल है - स्याद नित्य स्याद अनित्य, स्याद एक स्याद अनेक स्यात् तत् स्यात् अतत् तो इन तीन युगलोंमें भी द्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे यही क्रम जान लेना चाहिए। जैसे आत्माको नित्य अनित्य युगलसे गुम्फित बताना है कि आत्मा द्रव्यसे नित्य है व अनित्य है तो यो घटित करना कि पदार्थ सामान्य द्रव्यसे नित्य है और द्रव्यके भेद जो विशेष किए गए है उन दृष्टियोसे अनित्य है क्षेत्रकी अपेक्षासे सामान्य क्षेत्र दृष्टिसे नित्य है क्योकि वह एक समान है है और विशेष- क्षेत्रकी अपेक्षासे वह अनित्य है। एक तो कल्पनामे विशेष क्षेत्रमे व्यतिरेक आ जाता है दूसरे जिन पदार्थों के प्रदेशका संकोच विस्तार है वहाँ संकोच विस्ताररूपसे स्पष्ट अनित्यता आ जाती है कि जिस प्रकार था अब उस प्रकार न रहा। आत्मा कालकी अपेक्षासे नित्य है और अनित्य है। एक सामान्यकालकी दृष्टिसे परिणमन मात्र लिया तो आत्माका परिणमन कहाँ विघटित होता है, वह सदैव चलता रहता है सो काल सामान्य परिणमनकी अपेक्षासे आत्मा नित्य है और विशेष परिणमन भी तो साथ लगा हुआ है, विशेष परिणमनो बिना सामान्य परिणमनका रूप ही क्या बनेगा ? तो विशेष परिणमनोकी अपेक्षासे वह आत्मा अनित्य भी है यो ही भावकी अपेक्षामे सामान्यभावसे नित्य है और विशेषभावसे अनित्य है। भावमे आत्माका सर्वस्व सार लिया गया है। जब वह सामान्य दृष्टिसे देखा जा रहा है तो सामान्यभावकी विवक्षामे नित्य है और विशेपभावकी अपेक्षामे अनित्य है।

वस्तुमे स्यादेकत्व व स्यादनेकत्वका कथन—पूर्वोक्त दो युगलोकी भांति

स्याद एक और अनेक इन युगलकी भी उत्पत्ति हो जाती है। आत्मा सामान्य द्रव्यमे एक है, वह एक ही है, अखण्ड है और विशेष द्रव्यकी अपेक्षा अनेक है, क्योंकि विशेष द्रव्यमे इसके भेद किए गए द्रव्य, गुण, पर्याय। गुण भी अनन्त, पर्यायें भी अनन्त। तब इन दृष्टियोंमे वह पदार्थ अनेक बन गया। इसी प्रकार सामान्य क्षेत्रकी-दृष्टिसे आत्मा एक है, विशेष क्षेत्रमे अनेक है। आत्मा असख्यात प्रदेशी है तिसपर भी सामान्य क्षेत्रकी दृष्टिमे वह असख्यात प्रदेशी नही है, एक ही है अविभाज्य है। यो सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षासे जीव सदैव इसी प्रकार है। अब विशेष क्षेत्रकी अपेक्षासे देखिये वहाँ आत्मामे असख्यात प्रदेश जाना हुआ असख्यात प्रदेशकी दृष्टिसे कल्पनामे भी अनेक है और जब सकोच विस्तार होता है क्षेत्रका प्रदेशका तो उस दृष्टिमे अनेक स्पष्ट विदित होता है। इसी प्रकार कालकी अपेक्षासे आत्मा एक और अनेक है। कालमे सामान्य और विशेष दो प्रकार हैं। सामान्यकाल मायने सामान्य परिणमन। सामान्य परिणमन तो वह एक ही है पर्यायमात्र और उसका विशेष परिणमन कैसा है? चूंकि उनमे भी व्यतिरेक है, वो भिन्न-भिन्न हैं अतएव वे अनेक है। इसको वर्तमान कालमे भी एक अनेक देखा जा सकता है। आत्मामे गुण अनन्त है। उन अनन्त गुणोंमे सभी प्रकारके परिणमन निरन्तर चलते रहते हैं। तो एक समयमें अनन्त परिणमन हैं। लेकिन वे सब परिणमनमात्रकी दृष्टिमे एक हैं। लो, परिणमन सामान्य एक ही समयमे बन गया। और जब जुदे जुदे परिणमनकी दृष्टि रखते हैं तो वहाँ परिणमन विशेष हैं, अनेक हैं। यो कालकी अपेक्षासे स्याद एक और अनेक घटित होता है भावके ढङ्गमे भी दो प्रकार हैं सामान्यभाव और विशेषभाव सामान्य भाव जैसे आत्मामें चैतन्य स्वभाव जो सर्वस्व साररूप है। जिसमे अन्तर्निहित हैं। अविभाज्य एक अखण्ड हैं ऐसे चैतन्यभाव सामान्यभावकी अपेक्षासे आत्मा एक है और जब भावोंसे विशेष भेद करते हैं ज्ञान दर्शन चारित्र आदिक शक्तियोका विभाग बनता है तो वहाँ जिस विभागकी दृष्टिमे देखा आत्मा उस ही मय विदित होता है और है इस तरह अनेक गुणमय। तो विशेषभावकी अपेक्षासे आत्मा अनेक है।

वस्तुमे स्यात् तत् व स्यात् अतत् धर्मकी उपपत्ति—पूर्वोक्त तीन युगलो की तरह तत् अतत् इस चतुर्थ युगलकी भी उपपत्ति बन जाती है। जब सामान्य दृष्टि से देखते हैं सामान्य द्रव्यकी अपेक्षासे तो तत् ही समझमें आ रहा। सर्वदा वही हैं जब विशेष दृष्टिसे देखते हैं तो द्रव्यके विशेष भेद करके जो गुण पर्याय नाना समझे जा रहे हैं उन दृष्टियोंसे परस्परमें वे सब अतत् हैं। जो गुण हैं वे पर्याय नही, जो पर्याय हैं वे गुण नहीं और गुणोंमे अनेक गुण हैं। उनमे भी परस्पर अतत्पना है और भिन्न भिन्न पर्यायोंमे भी अतत्पना है। तो द्रव्यकी अपेक्षासे वस्तु तत्रूप भी है और अतत् रूप भी विदित होता है, क्षेत्रकी अपेक्षासे भी तत् अतत् है। सामान्य क्षेत्रसे वह वही है, वहाँ विषमता अन्यताका अवसर ही नहीं है। उसी वस्तुको विशेष क्षेत्रकी अपेक्षा

मे देखते है तो यद्यपि वह वस्तु अखण्ड है, उसके विभाग नहीं हो सकते, किंतु वह जब असख्यात प्रदेशी हुआ तो यह कहना पडेगा उस दृष्टिमे कि असंख्याते प्रदेश परस्परमे वे भिन्न-भिन्न हैं अन्यथा असख्यात न ठहरेगे सर्व एक हो जायगा। तो अभिन्न होनेपर भी, अविभाज्य होनेपर भी असख्यातपनेकी सिद्धि अनेक माने बिना, अतत् माने बिना नहीं बन सकती। यो ही कालकी अपेक्षासे वस्तु तत् अतत् है सामान्य कालकी दृष्टिसे वही वही है। एक परिणमन सामान्य वही तो देखा जारहा है, वस्तु सदा तत् है और विशेष कालकी अपेक्षासे वस्तु अतत् है, एक समयके परिणमनसे दूसरे समयका परिणमन जुदा है, वह वह नही है। यदि विशेषकालकी अपेक्षा भी अतत् न रहे, तो वस्तु ही न रहेगा, परिणमन ही न रहेगा। तो कालकी अपेक्षासे वस्तु तत् अतत् सिद्ध हो जाता है। ऐसे ही भावकी अपेक्षासे वस्तु तत् रूप और अतत् रूप है। सामान्य भावमे तत् रूप है, वह वही है, और उस भावके विशेष भेद करनेपर जो ज्ञान है सो दर्शन नही, जो दर्शन है सो चारित्र नही यो अतत् रूप है।

अपि चैवं प्रक्रियया नेतव्याः पञ्चशेष भङ्गाश्च ।
वर्णवदुक्तद्वयमिह पदवच्छेषास्तु तद्योगात् ॥ २८८ ॥

शेष भङ्गो सहित समस्त भङ्ग मिलाकर सप्तभङ्गीरूपमे वर्णन—चारो युगलोकी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा दो दो भङ्ग बताये गये है, उस ही प्रक्रियामे शेष ५ भङ्ग भी लगा लेना चाहिए। यहाँ दो भङ्ग वर्णकी तरह इकहरे-इकहरे भङ्ग हैं और उनको मिलाकर जो पञ्च भङ्ग बनाये जायेंगे वे पदकी तरह मिला-जुलाकर बनाये जायेंगे। तब असयोगी भङ्ग दो हैं और सयोगी भङ्ग ५ होते है। यहाँ दोको एक साथ देखनेपर अवक्तव्य भङ्ग होनेसे उसे भी सयोगी भङ्ग कहा गया है। यह एक विवक्षासे कहा गया है मुख्यतया तो यह पद्धति उत्तम है कि इकहरे भङ्ग तीन हैं जैसे स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य। एक दृष्टिसे देखे तो अस्ति दूसरी दृष्टिमे नास्ति और सब कुछ एक बारमे ही देखनेकी दृष्टि होनेपर अवक्तव्य। तो जब तीन भङ्ग इकहरे होते है तो उनके सयोगी भङ्ग चार होंगे। ऐसा विधान है कि जितनी इकहरी चीजें होंगी उतने दूआ रख लो जाये और उनको परस्पर मे गुणा करके फिर एक घटा दें तो सब भङ्ग उतने मिलेंगे। जैसे ३ भङ्ग है तो ३ भङ्ग हैं तो ३ जगह २ रखदे और उन ३ दूओको परस्परमे गुणित करदें। २×२ हुए ४ और २×४ हुए ८। ३ दूओका गुणनफल ८ हुआ। उसमेसे १ कम कर देनेपर ७ होते है। यदि कोई चीज ४ हो इकहरी तो उसके भङ्ग कितने होंगे ? चार जगह दूआ रख दीजिए और उनको परस्पर गुणित कर दीजिए। २×२×२×२=१६ और १६मेसे १ कम कर दिया तो १५ होते हैं। यदि चार चीजें हैं तो उनके समस्त भङ्ग इकहरे और संयोगी १५ होगे। भङ्ग निकालनेकी बात लोग दृष्टान्तमे भी समझ

सकते है। यदि ३ वस्तुयें हैं भोजनकी—मानो नमक, मिर्च, खटाई तो इन तीनो चीजोका स्वाद ७ प्रकारसे लिया जा सकता है। केवल नमक, केवल मिर्च केवल खटाई, नमक मिर्च मिलाकर नमक खटाई मिलाकर, मिर्च खटाई मिलाकर दोके संयोगसे ३ भङ्ग हुए और तीनो मिलकर एक हुआ। नमक, मिर्च, खटाई तीनो मिला दिया। यों ७ प्रकारसे स्वाद हुए, भङ्ग हुए। तो यहाँ भी ३ स्वतंत्र भङ्ग हैं स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य। तो इनके मेलमे अर्थात् स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य। यो दोके संयोगमे ३ भङ्ग हुए और स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य इन तीनोके मेलमे १ भङ्ग हुआ, यो ७ भङ्ग होते है।

सप्तभङ्गोकी विवक्षायें—विवक्षासे ७ प्रकारके भङ्ग यों समझ लेना चाहिये। जब स्यात् अस्ति कहा तो उसमे विवक्षा है स्वभावकी। स्यात् नास्ति कहा तो उसमे विवक्षा है परभावकी। स्यात् अवक्तव्य कहा तो उसमे अपेक्षा है सबको एक साथ निरखनेकी। जब तीन भङ्ग ये होते है तो इनके मेलमें चार भङ्ग और किए जाते हैं। पहिले भङ्गमे जो अस्तित्व बताया है उसकी प्रधानतासे प्रतीति है। दूसरे भङ्गमें नास्तित्व धर्मकी प्रधानतासे प्रतीति है। तीसरे भङ्गमे एक साथ दोनोंकी प्रधानतासे अवक्तव्यरूप धर्मकी प्रतीति है। चौथे भङ्गमे क्रमसे दोनो धर्मोकी प्रमुखता देकर-प्रतीति है। ५ वें भङ्गमे अवक्तव्य धर्म सहित सत्त्व धर्मकी प्रतीति है। छठवें भङ्गमे अवक्तव्य धर्म सहित नास्तित्व धर्मकी प्रतीति है और ७ वें भङ्गमें क्रमसे प्रमुखताको प्राप्त हुए अस्तित्व नास्तित्वसे सहित अवक्तव्य धर्मकी प्रतीति हैं। तो वस्तु अनेकातात्मक है। उसमे अनेकान्त बोधकी सिद्धिके लिए चार युगलोंसे गुम्फित वस्तु बताया है तो उस हीमे और विशेषताके साथ ७ भङ्गोंके रूपमें हैं यह दिखाया जाना भी आवश्यक है। यों सप्तभङ्गी रूपमे किसी भी एक धर्मकी प्रतीति करें तो कर सकेंगे।

वस्तुमे किसी एक धर्मके लक्षित करनेपर सप्तभङ्गिताकी उपपत्तिकी निश्चितता—अथवा इन सब वर्णनोको यो समझिये कि कोई यदि किसी एक धर्मका भी अस्तित्व बताता है तो उसके साथ दूसरी अपेक्षासे नास्तित्व मिला हुआ ही होगा। जैसे कोई कहता है कि यह सच बोलता है तो उसके साथ यह बात भी जुडी हुई है कि यह झूठ नही बोलता दोनोसे उस आशयकी पुष्टि होती है। पदार्थके स्वरूपकी दृष्टि जिस किसी भी धर्मसे की जाय तो उसके प्रतिपक्ष धर्मकी भी किसी अपेक्षासे सिद्धि है यह बात उसके साथ जुडी हुई है। तो एक कुछ भी कहा तो उसके साथ उसका प्रतिपक्ष जुडा है और जब २ चीजें सामने आ गई तो दोनोको एक साथ कहा जाना अशक्य है। अतएव अवक्तव्य भी साथ है। लो यो ३ भङ्ग हो गए। अब तो संयोग करके चार भङ्ग बनेंगे ही। यो सब मिलकर ७ भङ्ग हो जाते हैं। यो सप्त

भङ्गात्मक पद्धतिसे वस्तु चार युगलोसे गुम्फित है और वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे चार युगलोमे गुम्फित है। ऐसा समझिये कि अगर कोई सत् है तो उसे स तिपक्ष होना ही होगा और वहां सप्तभङ्गीकी उपपत्ति ही होवेगी।

ननु चान्यतरेण कृतं किमथ प्रायः प्रयासभारेण।
अपि गौरवप्रसंगादनुपादेयाच्च वाग्विलासत्वात् ॥ २८९ ॥

एक भङ्गसे ही सिद्धी हो जानेपर अन्य भङ्गके कहनेकी व्यर्थताकी शङ्काकार द्वारा कथन—अब यहाँ शङ्काकार प्रश्न कर रहा है कि जैसे यहाँ जो मूलमे दो धर्म कहे हैं अस्ति और नास्ति तो इनमेसे किसी एक धर्मको माननेसे ही काम चल सकता है, फिर दोनोको सिद्ध करनेका इतना प्रयत्न करना व्यर्थ है। जो बात सुगमतया संक्षिप्त विधिसे सिद्ध होती है उस बातको इतना बढावा देना उसमे गौरव दोष आता है। और केवल वचनका विलास सिद्ध होता है। जब पदार्थकी सिद्धि एक अस्ति कहकर हो गयी तब नास्तिकी बात कहना प्रलापमात्र है। घट है, अपने स्वरूपसे है, बात बन चुकी अथवा कभी इस दृष्टिसे भी कहे कि यह घट अन्य रूप नहीं है तो उससे भी सिद्धि हो गयी, यहाँ कुछ कहा जाय उससे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है। फिर दूसरे धर्मको बताना व्यर्थ है। अथवा वह केवल वचनोका विलास है, उसमे सार बात कुछ नहीं है। तब सप्तभङ्गीकी सिद्धि न हो सकेगी और चार युगल प्रतिपक्ष न बन सकेंगे। उनमेंसे एक एक बात ही सिद्ध हो पायगी। इसी शङ्काकी बातको और स्पष्ट कर रहे हैं।

अस्तीति च वक्तव्यं यदि वा नास्तीति तत्त्वसंसिद्धयै।
नोपादानं पृथगिह युक्तं तदनर्थकादिति चेत् ॥ २९० ॥

एकसे अधिक भङ्ग कहनेकी अनुचितताका शङ्काकार द्वारा कथन—इन दो धर्मोमे स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति अथवा उनमेसे एक अनेकका युगल ले ले। एक कुछ भी कहो। एक कहो तो अनेक मत कहो, अस्ति कहो तो नास्ति मत कहो। विधि कह दी, इतनेसे ही काम बन जायगा अथवा प्रतिपक्षका निषेध कर दिया इतने से ही काम बन गया। दोनोको अलग अलग ग्रहण करना युक्त नहीं है, क्योंकि इनका अलग अलग ग्रहण करना अनर्थक ठहरता है। उसमें कोई प्रयोजन विदित नहीं होता वस्तुको जानना है सुगम विधिसे जान लीजिए और उस जाननेमे जो साधना बनानी है उस साधनाको बना लीजिए। व्यर्थका वचन विलास करना और इतना ही नहीं, और भी सयोगी भङ्ग बनाकर बढावा देना, यह तो एक वचन जाल है अतएव एक धर्म चाहे अस्ति बता दिया जाय अथवा नास्ति बता दिया जाय, इससे अधिक कहना

अनुचित है । अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं ।

तन्न यतः सर्वं सत् तदुभयभावाध्यवसितमेवेति ।
अन्यतरस्य विलोपे तदितरभावस्य निह्नवापत्तेः ॥ २६१ ॥

पदार्थोंकी विधि निषेधोभयाध्यवसितता होनेसे अनेक अंशात्मकताकी उपपत्ति बताते हुए शङ्काकारकी शंकाका समाधान- शङ्काकारका यह कहना ठीक नहीं है कि या तो स्यात् अस्ति ही बताया जाय या स्यात् नास्ति ही बताया जाय । क्यों ठीक नहीं है, इसका कारण यह है कि जो भी पदार्थ हैं वे सभी पदार्थ विधि निषेधरूप भावसे युक्त हैं । घटके बारेमें कहा कि घट है घट घटरूपसे है, तो इस बातको कैसे मना किया जाय ? और मना करते हैं तो वस्तु नहीं रहती । अभाव हो गया, और जब यह कहते हैं कि घट पट आदिक रूपसे नहीं है तो इसको भी कैसे मना किया जाय ? मना करते हैं तो यह घट घट नहीं रहता । पट आदिक सब कुछ बन जाते हैं । तो दोनों बातें विशेषमें जब घटी हुई हैं वस्तुका स्वभाव ही इस प्रकार है कि अपने रूपसे तो सत् होना और पररूपसे सत् न होना तो इसको इन्कार कैसे किया जा सकता है ? तो सभी पदार्थ विधि निषेधरूप भावसे युक्त हैं । यदि उन दोनोंमेंसे किसी भी एकको न माना जाय तो दूसरा भी नहीं माना जा सकता है । फिर तो पदार्थ कुछ रहा ही नहीं । पदार्थका अभाव हो जायगा । जैसे एक आत्माकी सिद्धि की जा रही है । आत्मा अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावसे है । दूसरी बात आत्मा आत्मा को छोड़कर सभी द्रव्योंके पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे नहीं है । अब इन दोनोंमें किसका लोप करते हो ? आत्मा स्वचतुष्टयसे है । इसका लोप करनेका अर्थ हुआ । आत्मा है ही नहीं । आत्मा पर चतुष्टयसे नहीं है इसका लोप करनेका अर्थ यह हुआ कि आत्मा पर चतुष्टयसे है । अन्य सब पदार्थ रूप है तो वहाँ भी आत्मा नहीं रहा । इस कारण स्यात् अस्ति, स्यात् नास्तिके दोनों भङ्गोंका रहना अनिवार्य है ।

स यथा केवलमन्वयमात्रं वस्तु प्रतीयमानोऽपि ।
व्यतिरेकाभावे किल कथमन्वयसाधकश्च स्यात् ॥ २६२ ॥

व्यतिरेकके अभावमें अन्वयका भी लोप होनेका प्रसंग होनेसे वस्तुकी विधिनिषेधोभय गुम्फितताकी सिद्धि— वस्तु विधि और निषेध दोनोंसे गुम्फित है, उनमेंसे किसी एकका लोप कर देनेपर दूसरेका भी लोप हो जाता है । अर्थात् कोई एक न माननेपर फिर कुछ भी नहीं रहता है, इस ही बातको इस गाथामें दिखा रहे हैं कि जैसे वस्तुको यदि विधिरूप ही माना अन्वयरूप ही माना तो अन्वय मात्र वस्तु प्रतीत होती तो भी अर्थात् वस्तुको अन्वय मात्र मान लिया लेकिन व्यतिरेकके अभाव

मे वह अन्वयका साधक बन कैसे सकेगा ? वस्तुमे केवल अन्वय माना है, सामान्य माना है, तो सामान्यका अर्थ क्या है ? जो समान रूपसे रहे सो सामान्य। किसमे समान रहे, ऐसा कुछ अनेक मानना ही तो होगा। अनेक माने बिना सामान्यकी सिद्धि भी कैसे हो सकेगी ? जो अनेकमे एकरूप रहे उसे सामान्य कहते हैं। तो वस्तुको तो माना अन्वय मात्र, व्यतिरेक वहाँ माना नही तो व्यतिरेकके अभावमे अन्वयका साधक भी कुछ नही हो सकता है।

ननु का नो हानिः स्यादस्तु व्यतिरेक एव तद्वदपि।
किन्त्वन्वयो यथास्ति व्यतिरेकोऽप्यस्ति चिदचिदिव॥ २९३॥

शङ्काकार द्वारा अन्वयकी तरह व्यतिरेक मानकर भी विधिनिषेधोभय गुम्फिताका निषेध-ऊपर यह बताया गया है कि केवल अन्वयमात्र वस्तु माननेपर और व्यतिरेक न माननेपर वहाँ वस्तुमे अन्वयमात्रका साधक कुछ नही बन सकता भावार्थ उसका यह था कि व्यतिरेक न माननेपर अन्वय भी नहीं बन सकता है। इस पर शङ्काकार कह रहे हैं कि हमारी कुछ हानि नही है। अन्वयकी तरह व्यतिरेक भी मान लो सो रहा आये, अन्वय भी है, व्यतिरेक भी है। जैसे कि लोकमे चेतन पदार्थ भी हैं, अचेतन पदार्थ भी हैं, उनमे क्या हानि पडती है ? चेतन अपने स्वतंत्ररूपसे हैं, अचेतन अपने स्वतत्ररूपसे है यो ही अन्वय अपने स्वतत्ररूपसे है व्यतिरेक अपने स्वतत्र रूपसे है। तो जैसे अन्वय माना गया वहाँ व्यतिरेक भी रहा आये दोनोको भी मान कर हमे कोई आपत्ति नहीं है। विधि, व्यतिरेक दोनो भी रहे, इससे वस्तु विधिनिषेध दोनोसे गुम्फित हो यह सिद्ध नही होता।

यदि वा स्यान्मतं ते व्यतिरेके नान्वयः कदाप्यस्ति।
न तथा पक्षच्युतिरिह व्यतिरेकोऽप्यन्वये यतो न स्यात्॥२९४॥

व्यतिरेकमे अन्वय न होनेकी तरह अन्वयमे व्यतिरेकका अभाव होनेमे दोनोके स्वातन्त्र्यकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा कथन—शङ्काकार ही कह रहा है कि यदि कोई ऐसा समझे कि व्यतिरेकका अन्वय कभी नही पाया जाता तो ऐसा माननेसे भी हमे कोई हानि नही क्योकि व्यतिरेक भी अन्वयमे नही पाया जाता। अन्वय और व्यतिरेक ये दोनो स्वतत्र धर्म हैं। यो कहो सामान्य और विशेष ये वस्तु मे स्वतत्ररूपसे रहते हैं अथवा ये पदार्थ ही पूर्ण स्वतत्र हैं। तो अन्वयमे व्यतिरेक नही व्यतिरेकमे अन्वय नही ऐसा तो मतव्य ठीक ही है। इसमें किसी भी प्रकारकी आपत्ति नही मानी जा सकती; रही आये, पर यह कहना ठीक कैसे जचेगा कि व्यतिरेकके अभावमे अन्वयका साधक कैसे हो सकता है ? व्यतिरेकमे व्यतिरेक है, अन्वयमे

अन्वय है उनकी अपने आपमें स्वतन्त्र सत्ता है तो व्यतिरेक भी रहे, अन्वय भी रहे पर दोनोंमें अविनाभाव हो और ऐसा अविनाभावरूपमें अथवा एक ही दूसरे रूप हो इस तरहसे अन्वय व्यतिरेक नहीं माना जा सकता।

तस्मादिदमनवद्यं केवलमयमन्वयो यथास्ति तथा।
व्यतिरेकोऽस्त्यवशेषादेकोक्त्या चैकशः समानतया ॥ २६५ ॥

वस्तुकी विधिनिषेधोभयात्मकताके खण्डनमें शंकाकार द्वारा स्वतन्त्र स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेकका समर्थन— शङ्काकार ही कह रहे हैं कि इस कारण यह कथन निर्दोष है कि जैसे केवल अन्वय है उसी प्रकार व्यतिरेक भी है, याने दोनों समान हैं, जैसे चेतना और अचेतन पदार्थ। चेतन भी है अचेतन भी है, उनमें यह कहा जाय कि अचेतनके बिना चेतनकी सत्ता न रहेगी या चेतनके बिना अचेतनकी सत्ता न रहेगी, यह कोई माने नहीं रखता। चेतन अपनेमें अपनेरूपसे सत् है, अचेतन अपनेमें अपने रूपमें सत् है। इन दोनोंका अस्तित्व है पर उनमें अविनाभाव नहीं कह सकते कि व्यतिरेकके बिना अन्वय जीवित नहीं रह सकता या अन्वयके बिना व्यतिरेक जीवित नहीं रह सकता। रहे दोनों। तात्पर्य यह है कि जैसे जगतमें अनेक पदार्थ हैं फिर गुण कर्म आदिक इसी प्रकार सामान्य और विशेष भी स्वतन्त्र पदार्थ हैं, उनमें यह बताना कि यह इसका अविनाभाव है यह बात युक्त नहीं हो सकती। उसके लिए दृष्टान्त भी सुनो।

दृष्टान्तोऽप्यस्ति घटो यथा तथा स्वस्वरूपतोऽस्ति पटः।
न घटः पटेऽथ न पटो घटेऽपि भवतोऽथ घटपटाविह हि ।२६६।

दृष्टान्तपूर्वक अन्वयव्यतिरेकके स्वतन्त्र सत्त्वका शङ्काकार द्वारा समर्थन जैसे घट अपने स्वरूपकी अपेक्षासे है उसी प्रकार पट भी अपने स्वरूपकी अपेक्षासे है। घट पटमें नहीं है, पट घटमें नहीं है। दोनों ही स्वतन्त्र हैं ना। ऐसे ही अन्वय और व्यतिरेक सामान्य एवं विशेष ये दोनों अपने-अपने स्वरूपसे हैं सामान्यमें विशेष नहीं, विशेषमें सामान्य नहीं, दोनों ही रहे आये इसमें कोई पदार्थ सामान्य विशेष दोनोंको ही नियमतः गुम्फित हो, यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती। पदार्थ भी पदार्थमें है। सामान्य सामान्यमें है, विशेष विशेषमें है। तो जैसे घट और पट ये भिन्न भिन्न स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं, उनकी परस्परमें कोई सापेक्षता नहीं है, अविनाभाव भी नहीं है, ऐसे ही सामान्य और विशेष दोनों ही रहे आयें किन्तु उनकी परस्परमें अविनाभाविकता न होनी चाहिये। और भी इस बातको स्पष्ट समझिये।

न पटाभावो हि घटो न पटाभावे घटस्य निष्पत्तिः ।
न घटाभावो हि पटः पटसर्गो वा घटव्ययादिति चेत् ॥२६७॥

दृष्टान्तपूर्वक अन्वय व्यतिरेकके अविनाभावके अनवसरकी शकाकर द्वारा घोषणा जैसे घट पटका अभाव नही कहलाता और ऐसा भी नही है कि पट के अभावमे घटकी उत्पत्ति हो जाय। दोनो ही स्वतत्र जुदे पदार्थ है, उनमे न अभाव के साथ व्याप्ति है न सद्भावके साथ व्याप्ति है। तो जैसे घट पटका अभाव नही है और पटके अभावमे घटकी उत्पत्ति नही है ऐसे ही पट घटका अभाव नही है। और, घटका व्यय होनेसे कही पट उत्पन्न नही हो जाता। तब बतलाओ घट और पटका परस्परमे क्या सम्बन्ध रहा ? कुछ भी बात तो नही रही। घटमे पटके कारण पटका सब कुछ है। यही बात सामान्य विशेषकी है। सामान्यके अभावका नाम विशेष नही है और न सामान्यके अभाव होनेपर विशेषकी उपपत्ति होती है, ऐसे ही विशेषके अभावका नाम सामान्य नही है और न विशेषका अभाव होनेपर सामान्यकी उपपत्ति होती है। दोनो ही स्वतत्र पदार्थ हैं। और जब जहाँ जो ससर्ग अभीष्ट है जिस तरह उस तरह होता रहता है। पर यह कहना कि वस्तु सामान्य और विशेषसे गुम्फित है और सामान्य विशेषका परस्परमे अविनाभाव है, ऐसा कोई दृष्टान्त नही मिलता कि जिन दो वस्तुओको बताकर उनका अविनाभाव बताया जा सके। तो घट पट आदिककी तरह स्वतत्र ही सामान्य और विशेष पदार्थ है। उनमे अविनाभावपनेकी बात कहना युक्त नही है।

तन्कि व्यतिरेकस्य भावेन विनान्वयोऽपि नास्तीति ।
अस्त्यन्वयः स्वरूपादिति वक्तु शक्यते यतस्त्विति चेत् ॥२६८॥

अन्वय व्यतिरेकमे भिन्न भिन्न स्वरूपसत्त्वकी सिद्धि करते हुए शका का उपसहार—इस कारणसे व्यतिरेकके अभावमे अन्वय भी नही रहता, यह कहना युक्त नही है। शकाकारकी शङ्का अपकरी कुछ गाथाओमे चल रही है। उससे पहिले सिद्धान्त यह रखा गया था कि व्यतिरेकके अभावमे अन्वय भी न रह सकेगा इस कारण व्यतिरेक और अन्वय दोनो अन्वयभावी है। और प्रत्येक पदार्थमे ये दोनो शाश्वत गुम्फित है। इसपर यह शङ्का की गई है कि इन दोनोको अविनाभाव कहा। ये दोनो स्वतत्र है इनका अपना अपना स्वरूप है। सम्बन्ध आदिकसे जिस तरह ये साथ रहते है, रहती है पर उनका अविनाभाव बताना युक्त नही है। और यह कहकर कि व्यतिरेकके अभावमे अन्वय भी नही रहता यह धौस देना भी ठीक नही है, व्यतिरेकके अभावमे भी अन्वय अपने स्वरूपसे है। जैसे कोई यह कह सकेगा क्या कि कपडा न हो तो घडा भी नही हो सकता। घडा अपने स्वरूपसे है कपडा अपने

स्वरूपसे है और कपडा न रहेगा न रहे उसका असर घटके सद्भाव और अभावपर कुछ नहीं है। तो ये घट और पट दोनो स्वतत्र पदार्थ है। इसी प्रकार सामान्य और विशेष ये दोनो स्वतत्र पदार्थ हैं। अपने-अपने स्वरूपसे हैं इस कारण यह बताना कि अन्वय और व्यतिरेकका अविनाभाव है और उससे प्रत्येक वस्तु गुम्फित है। अब इस शङ्काका समाधान करते हैं।

तन्न यतः सदिति स्यादद्वैतं द्वैतभावभागपि च।
तत्र विधौ विधिमात्र तदिह निषेधे निषेधमात्रं स्यात्। २९९।

शङ्काकारकी शङ्काका समाधान करते हुए वस्तुकी सामान्यविशेषोभयरूपताकी सिद्धि शङ्काकारका यह कहना कि अन्वय और व्यतिरेक दोनो स्वतंत्र हैं, अपने-अपने स्वरूपसे हैं इनका परस्परमे अविनाभाव होनेका कोई मतलब नही, यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि सत् द्वैतरूप होकर भी कथंचित् अद्वैतरूप ही है। तो जब अद्वैतरूपताकी दृष्टि होती है तब वहाँ विधि विदित होती है। जब द्वैतरूपता की दृष्टि होती है तब वहाँ निषेध विदित होता है। तो जब विधिकी विवक्षा होती है तब वह विधिमात्र है जब निषेधकी विवक्षा होती है तब वह निषेधमात्र है। शङ्काकारकी शङ्कामें यह आशय था जैसे कि कुछ दार्शनिक केवल विशेषको मानते हैं कुछ दार्शनिक सामान्यको मानते हैं। जैसे क्षणिकवादी केवल विशेषको ही मानते हैं और अद्वैतवादी केवल सामान्यको ही मानते हैं किंतु कुछ दार्शनिक ऐसे हैं नैयायिक आदि कि सामान्य और विशेष दोनोको मानकर उनको स्वतत्र-स्वतत्र मानते हैं। और, पृथ्वी, जल, चेतन जीव मन आदिक पदार्थ हैं अथवा गुण क्रिया पदार्थ हैं उसी तरह सामान्य विशेष भी स्वतत्र पदार्थ हैं। सामान्य और विशेष दोनोको मानने वाले दार्शनिकोने सत्का पूर्णरूप नही माना इसलिए गुणको अलग सत कर्मको अलग सत और सामान्य विशेषको अलग-अलग सत कहा है। वस्तु एक ही है, यह दृष्टिमे नही आया कि उस ही वस्तुका भेद करके समझाये जानेकी पद्धति है, किंतु भेद करके समझनेमे जो कुछ स्वरूप विदित हुआ उस स्वरूपको लक्ष करके उसकी स्वतत्र सत्ता मानी जाने लगी। तो यो जब सामान्य भी समझमे आता है कि जैसे सब मनुष्योमें मनुष्यत्व है तो मनुष्यत्व कह करके आशय कुछ जुदा बना है और जाति कुल अवस्था आदिककी अपेक्षासे उनमे भिन्नता है। तो सामान्य और विशेष दोनो स्वरूप विदित होनेके कारण दोनोको स्वतत्र सत मान लिया गया है और उसके आशयमे यह शङ्का की गई है कि सामान्य और विशेष दोनो भी रहे आयें तो भी उससे यह सिद्ध नही होता कि सामान्य और विशेषका परस्परमे अविनाभाव है। पर वास्तविकता यह नही है कि सामान्य विशेष स्वतत्र हो। है एक पदार्थ, असाधारण रूपको लिए हुए। वह स्वयं है, इतने अस्तित्वमात्रसे सामान्यरूप है और उसमे चैतन्य अथवा रूप, रस

आदिक विशेष गुण हैं, इस रूपसे वहाँ विशेष है और उस ही वस्तुमे अनन्त गुण पाये जाते हैं, ये विशेष हुए और वही एक वस्तु सामान्य हुआ। तो इस सामान्य और विशेषका परस्परमे अविनाभाव है। सामान्य न माननेपर विशेष न ठहरेगा और विशेष न माननेपर सामान्य न ठहरेगा।

न हि किञ्चिद्विधिरूपं किञ्चित्तच्छेषतो निषेधांशम्।
आस्तां साधनमस्मिन्नाम द्वैतं न निर्विशेषत्वात् ॥३००॥

वस्तुके अलग अलग भागोमे विधि निषेध कल्पनाकी असगतता—उक्त समाधानको ही स्पष्ट कर रहे है कि ऐसा नही है कि वस्तुमे कोई भाग विधिरूप हो और कोई भाग निषेधरूप हो क्योंकि ऐसा माननेपर सत्‌की सिद्धिके साधन उपदेश तो दूर रहो, वहाँ तो द्वैतकी भी कल्पना नही की जा सकती। क्योंकि वह समस्त ही विशेषोसे रहित माना गया है। वस्तु तो एक माना और उसमे कुछ भाग विधिरूप माना, कुछ भाग निषेधरूप माना तो वे दो ही चीजें बन गयी। वे एक चीज न रही। जब दो चीजें रही तब वे अपनी अपनी स्वतंत्र स्वतत्र हैं एक विधिरूप एक निषेध रूप। फिर विधिरूप जो चीज है वहाँ विशेष नही है, तो निर्विशेष होनेसे असत् कहा जायगा। और जो निषेधरूप चीज है, व्यतिरेकरूप विशेषरूप है उसमे विधि न होनेसे सामान्य न होनेसे वह असत् हो जायगा तब वस्तुकी सिद्धि नही बन सकती। सत् क्या है? उसकी सिद्धि इस ढङ्गमे न हो सकेगी। और भी इसी विषयका स्पष्ट कर रहे है।

न पुनर्द्रव्यान्तरवत्संज्ञाभेदोऽप्यबाधितो भवति।
तत्र विधौ विधिमात्राच्छेशविशेषादिलक्षणाभावात् ॥ ३०१ ॥

वस्तुको विधिमात्र ही माननेपर सत्के अभावका प्रसङ्ग जैसे कि दो द्रव्य हो तो उनकी सज्ञा भी अलग अलग हैं तो जैसे दो द्रव्योमे सज्ञाभेद होता है इस तरह यहाँपर एक वस्तुमे सज्ञाभेद मानना स्वतत्र मानना यह नही बन सकता क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जाय तो जो सामान्य है वह सामान्यमात्र ही रह जायगा, क्योंकि उसमे विशेषका कोई लक्षण न रहा। यदि पदार्थमे कुछ भाग विधि ही रूप माना गया तो उस भागमे तो विशेष कुछ न रहा। और, जब विशेष लक्षणका अभाव हो गया तो निर्विशेष सामान्य तो कुछ होता ही नही। तो वहाँ विधि भी न बन सकी। निषेध भी न बन सका। बल्कि बात यह है कि सत् वही है, पर सामान्य दृष्टिसे देखते हैं तो वह विधिरूप नजर आता है और विशेष दृष्टिसे देखते हैं तो वहाँ व्यतिरेक दृष्टिमे आता है। वस्तु वही है। यहाँ विधि और व्यतिरेक ऐसे भिन्न भिन्न नही है,

जैसे कि दो द्रव्य भिन्न भिन्न होते हैं पर भिन्न होकर उनका नाम जुदा जुदा होता है, वस्तु एक ही है। सामान्य दृष्टिसे सामान्यरूप दृष्टिगत होता है और विशेष दृष्टिसे विशेषरूप दृष्टिगत होता है। द्रव्यान्तरकी तरह विधि निषेध नहीं है जिससे कि यह मान लिया जाय कि एक वस्तुमे विधि भी रहे अलग और निषेध भी रहे अलग। तो यो वस्तुके दो भाग नही हैं। एक भाग विधि मात्र हो और एक भाग निषेधमात्र हो। वह समग्र वस्तु अखण्ड है और वह समग्र वस्तु विधि निषेधात्मक है। तो इस गाथामे यह बताया है कि यदि वस्तुके किसी भागको विधिरूप मान लिया जाता है तो वह विधि मात्र ही प्राप्त होगी। उसमे निषेध या विशेष या व्यतिरेकका अभाव होनेसे वह स्वय सत् न रह सकेगा। अब निषेध पक्षको लेकर स्पष्टीकरण करते हैं।

अपि च निषिद्धत्वे सति न हि वस्तुत्वं विधेरभावत्वात्।
उभयात्मकं यदि खलु प्रकृतं न कथं प्रतीयेत ॥ ३०२ ॥

वस्तुको निषेधमात्र ही माननेपर सत्के अभावका प्रसङ्ग और वास्तविक वस्तुत्वका निर्णय—अथवा वस्तु सर्वथा निषेध मात्र हो प्राप्त हो जायगी। यदि पदार्थको दो भागोमे विभक्त किया जाय और एक भाग विधिमात्र और एक भाग निषेधमात्र ही कहा जाय तो जैसे विधिमात्र भागमें केवल विधि ही रहा, विशेष नही रहता, असत् हो गया, इसी प्रकार निषेध वाले भागमे केवल वह निषेधमात्र ही रहा, उसमे विधि का अभाव हो गया। तो जहाँ विधि ही नही सद्भाव ही नहीं उसका सत्त्व क्या है? इस कारण जैसे वस्तुको केवल विधिमात्र नही मान सकते या उसके एक भागको विधि मात्र नही मान सकते इसी प्रकार वस्तुको निषेधमात्र नही कह सकते। अथवा उसके एक भागको निषेध मात्र नही कहा जा सकता हाँ यदि इन दोनो दोषोसे बचनेके लिए यह कहा जाय कि वस्तु फिर विधि निषेधात्मक रही। समग्र ही वस्तु विधिरूप हो, समग्र वस्तु निषेधरूप हो तो ठीक है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है, वस्तु विधि निषेधात्मक है। किसी सत् पदार्थकी सत्ता तब कायम है जब अपने स्वरूप से हो और परस्वरूपसे न हो। इसी प्रकार एक वस्तुकी सत्ताका परिचय हमे कब मिल सकता है? जब यह समझमे आया हो कि सामान्यरूपसे वस्तु सन्मात्र है और विशेषरूपसे देखनेपर वस्तु द्रव्यरूप है गुणरूप है पर्यायरूप है, तो यो भेदाभेदात्मक पद्धतिसे हम वस्तुके स्वरूपको समझ सकेंगे। इस कारण दोनो दोषोसे बचनेके लिए वस्तुको उभयात्मक मानना चाहिए। सो, वस्तुको ऐसे ही देखें कि वह स्वय सहज अभेदरूप है, किन्तु उसमे विशेषतायें हैं ऐसी कि वह प्रतिसमय परिणमता रहे, उत्पाद व्यय करता रहे, बस इसी बातमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्म सिद्ध हो गए, और उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धिसे गुण पर्याय सिद्ध हो गए क्योंकि ध्रौव्यका आधार तो गुण और उत्पाद व्ययका आधार है पर्याय। तो यो गुण पर्यायोका वस्तुमे निषेध भी सिद्ध होता

जो गुण है सो पर्याय नही जो पर्याय स्वरूप है सो गुण स्वरूप नही और जब केवल सामान्य दृष्टिसे देखते हैं तो वह सामान्य मात्र ही सन्मात्र है। बस यही दृष्टगत् होता है।

तस्माद्विधिरूपं वा निर्दिष्टं सन्निषेधरूपं वा।
संहृत्यान्यतरत्वादन्यतरे संनिरूप्यते तदिह ॥३०३॥

वस्तुकी विधिनिषेधात्मकता व विधि निषेधकी परस्पर अन्तर्निहितता- उक्त समाधानसे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि वस्तु वह एक ही। वही कभी विधिरूप कहा जाता है और कभी निषेधरूप कहा जाता है, विधि और निषेध परिचय मे आते हैं इतने मात्रसे ऐसा सज्ञाभेद न समझना जैसे कि भिन्न भिन्न अनेक द्रव्योमे सज्ञाभेद होता है, स्वरूप समझनेके लिए सज्ञाभेद है पर वस्तु भिन्न भिन्न नही हो जाते, क्योंकि विधि और निषेध परस्पर सापेक्ष हैं अतएव इनका एक दूसरेमे अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे घटका सद्भाव और वही है अघटका अभाव। तो अघटका अभाव कुछ अलग चीज हो और घटका सद्भाव कुछ अलग चीज हो ऐसा नही हैं। वही एक तत्त्व विधिरूप निरखनेपर घटका सद्भाव विदित होता है और उसी वस्तुमे निषेधरूप से निरखनेपर अघटका अभाव सिद्ध होता है। चूकि ये सद्भाव और अभाव परस्पर सापेक्ष हैं अतएव अभावमे भाव अन्तर्निहित हैं और भावमे अभाव अन्तर्निहित है। निषेधरूप कहा वहाँपर भी विधि कही मिट नही गई और विधिरूप कहा तो वहाँ भी विवक्षित निषेध कहीं मिट नही गया अतएव ये जाननेकी पद्धतियाँ हैं। वस्तु वही एक है। वही सत् सामान्य दृष्टिसे विधिरूप विदित होता है और वही सत् विशेषरूप से निरखनेपर निषेधरूप विदित होता हैं।

दृष्टान्तोऽत्र पटत्वं यावन्निर्दिष्टमेव तन्तुतया।
तावन्न पटो नियमाद् दृष्टान्ते तन्तवस्तथाऽप्यत्वात् ॥३०४॥

भेददृष्टिसे निहारनेपर विशेषके दृष्टिगत होनेका दृष्टान्त—उक्त प्रसङ्गमे जो कुछ तत्त्वका स्वरूप बताया गया है उसका दृष्टान्त यह ले लीजिये कि एक वस्त्र है। उसी वस्त्रको जब हम तंतु रूपसे निरखते हैं तो वस्त्रमात्रकी प्रतीति न होकर तंतुओंकी ही प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है। यहाँ वस्तुका निषेधरूपसे निरखनेपर क्या प्रतीत होता है? उसके लिए दृष्टान्त दिया गया है—भेद, निषेध व्यतिरेक, अभाव ये सब इस प्रसङ्गके पर्यायवाची शब्द है। कपडेको एक विहङ्गम दृष्टिसे वस्त्रमात्र ही निहारना यह है सामान्य दृष्टि और उसमे इतने तंतु हैं, पतले मोटे है, अमुक रगके हैं, क्या डिजाइन है आदिक बातोंको निरखना यह भेदरूपसे देखनेपर

निरखा गया। तो जब वस्त्रको भेदरूपसे निरख रहे हैं तब वहाँ प्रत्यक्षसे उन ततु शुक्लादिकरूपकी प्रतीति होती है, पट मात्रकी प्रतीति नही होती। यही बात प्रत्येक सत्मे है। जब हम किसी पदार्थकी शक्ति परिणमन शक्ति विशेष, परिणमन विशेषपर दृष्टि देते हैं तो हमे वहाँ भेद नजर आता है। निषेध दृष्टगत् होता है। एकमे दूसरा नही व्यतिरेक विदित होता है। क्योकि, उस समय हमारी दृष्टिने भेदको अगीकार किया है। अभेदको नही देख रहा मगर इतने मात्रसे कही अभेद निराकृत हो जाता है? इन भीटोके विना कोई भी कोठा नही बन सकता। अगर कमरेकी एक भीटको ही देख रहे हैं तो दूसरी भीटका अभाव हो गया उस समय वह नही दिख रहा। तो इस ही प्रकार वस्तुमे जब हम भेदको निरखते हैं तो अभेदका अभाव नही हो जाता।

> यदि पुनरेव पटत्वं तदिह तथा दृश्यते न तन्तुतया।
> अपि संगृह्य समन्तात् पटोऽयमिति दृश्यते सद्भिः॥ ३०५॥

अभेद दृष्टिसे निहारनेपर सामान्यके दृष्टिगत होनेका दृष्टान्त— तो जैसे ऊपरकी गाथामे बताया है कि भेदरूपसे निरखनेकी दृष्टिमे भेदकी ही प्रतीति होती है अभेदकी नही तो इस गाथामे यह बतला रहे हैं कि अभेद दृष्टिसे निरखनेपर अभेदकी प्रतीति हो रही है भेदकी नही, उसके लिए दृष्टान्त दिया गया है कि वही पट जब केवल पट सामान्यरूपसे देखा जाता है तब विवेकी लोग उसे ततुरूपमे न निरखकर उन ततुओके समुदायरूप पटपनेसे ही देखा करते हैं जिनमे परस्पर व्यतिरेक भरा होता है ऐसा तत्त्व वहाँ दृष्टिमे नही लिया जाता। जैसे कोई ऐसा उदासीन व्यक्ति है कि केवल तन ढकने को कपडा भी चाहिए तो वह जब किसी कपडे को लेने के लिए निरखेगा तो पट मात्र की दृष्टिसे निरखेगा, अथवा यहाँ कुछ प्रयोजन वश भेद भी हो सकता है किन्तु स्वर्णके दृष्टान्तमे जैसे किसी भी पुरुषको स्वर्णमात्र लेना है आभूषणोसे प्रयोजन नही है तो वह किसी भी चीजको देखकर स्वर्णमात्रकी दृष्टि से देखेगा और जो स्वर्ण है बस वही उसके लिए आदरकी चीज होगी और उतनेका ही वह मूल्य देगा। तो जब विशेषपर दृष्टि है तो वहाँ विशेषकी ही प्रतीति है, सामामान्यकी प्रतीति वहाँपर नही है। तब वस्तु विधिनिषेधरूप बना। न केवल विधिरूप, न केवलनिषेधरूप और इसी माध्यमसे वस्तुमे अस्तित्व धर्म देखा गया तो अस्ति नास्तिका युगल द्रव्य, क्षेत्र काल, भावसे सिद्ध होता है वस्तुमे स्याद नित्यपना, स्याद अनित्यपना भी दृष्टगत् होता तो यह युगल भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध होता है अतएव स्यात् एक स्यात् अनेकपना भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध होता है। इसी प्रकार तत्पना और अतत‌पना भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध होता है। तो वस्तु ऐसे अनेकान्त स्वरूपसे गुम्फित है जहाँ सप्रतिपक्ष धर्म एक वस्तुमे एक साथ

आत्मा पर्यायमें भी वही आत्मा । आत्माको अभेद दृष्टिसे निरखा गया है । तो जब भेददृष्टिसे निरखी हुई बातको अभेदरूपमे बतलाने लगते हैं तो तो वही विधिरूप बन गया । विधिरूपमे कही हुई बात जब निषेधरूपमे बतलाते लगते हैं, भेददृष्टिमे कह उठते हैं तो वही निषेधरूप बन गया । वस्तु वही एक है और वह है वस्तु विधेय उभयात्मक । केवल विधात्मक कहकर नहीं समझाया जा सकता है, केवल निषेधात्मक कहकर न समझाया जा सकेगा । वस्तु है और परिणामी है, बस इसी कथनमे विधिनिषेध आ जाता है । है पर जो कि सर्वथा विदित हुआ वह विधिदृष्टिमे विदित होता है और निषेधपना यह भी नहीं है, ऐसा व्यतिरेक जिस दृष्टिमे विदित होता है वह दृष्टि भेदरूप है, यो पदार्थ भेदाभेदात्मक है अथवा विधिनिषेधात्मक है । किन्ही भी शब्दोमे कहो सप्रतिपक्ष धर्म सहित होता है ।

इति विन्दन्निह तत्त्वं जैनः स्यात्कोऽपि तत्त्ववेदीति ।
अर्थात्स्याद्वादी तदपरथा नाम सिंहमाणवकः ॥ ३०८ ॥

विधि निषेधात्मक तत्त्वका निर्णय उक्त प्रकारसे जो व्यक्ति जानता है जानता है वास्तवमे, वही जैन सिद्धान्तका पारगामी है अर्थात् जैन है । जैन नाम बताया गया है जो जैन सिद्धान्तका यथार्थ पारखी हो और वही तत्त्वभेदी है; और वही वास्तवमें स्याद्वादी है । पदार्थ स्वय अपने आपके सत्त्वको लिए हुए है । ऐसा कहनेमें यह बात तो आ ही जाती है कि पदार्थ किसी अन्य पदार्थके सत्त्वमे सहित नही है । पदार्थ वस्तुत जैसा है सो ही है । इतना कहनेपर भी द्रव्य गुण पर्याय परिणमन शक्तियाँ उसके असाधारणरूप ये भी तो विदित होते हैं । साधारण गुण और असाधारण गुण दोनोसे युक्त हो तो वस्तु है । कोई वस्तु क्या ऐसी मिलेगी जिसके केवल साधारण गुण ही हो । अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व ये ६ साधारण गुण कहे गए हैं । जो भी सत् हैं सबमे ये साधारण गुण पाये जाते हैं । लेकिन कोई सत् ऐसा न मिलेगा कि जिसमे उसको असाधारण गुण तो न हो और ये ६ साधारण गुण ही पाये जाये । क्योंकि असाधारण गुण हुए बिना वस्तुमे क्रिया क्या होगी ? इन असाधारण गुणोमे एक व्यवस्था नियत तो हो गई कि वस्तु है, अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नही है और निरन्तर परिणमती रहती है । अपने ही गुणोमे स्वरूपमें परिणमती है, परमें नही । और, वह प्रमेयवान है किसी न किसीके द्वारा ज्ञेय है, ऐसी साधारण व्यवस्था बनी है, मगर वस्तु कोई परिणमती किस प्रकार है ? उसके परिणमनका व्यक्त रूप क्या है ? यह बात पदार्थ में यदि नही है, कोई असाधारण गुण नही है कोई असाधारण परिणमन नहीं है कोई व्यक्त रूप ही नही है तो वह सत् ही क्या रहेगा ? और उसमे साधारण गुण ही कहाँ रहेगे ? तो वस्तु साधारण गुण और असाधारण गुण रूप है । अब उसमे

साधारण गुणोकी दृष्टिमे तो विधि विधि ही सिद्ध होती है असाधारण गुणोकी दृष्टि से निषेधकी बात आती है। तत्त्वकी बात एक पदार्थमे निरखी, तत्त्वकी बात परस्पर अपेक्षा लेकर सभी पदार्थोमे निरखा, सब जगह विधि निषेधपनेकी बात समझमे आयगी। इस प्रकार जो वस्तुके अन्दर बाह्य स्वरूपको जानता है, भेदाभेदतत्त्वको जानता है वही जैन है, वही स्याद्वादी है और वही तत्त्वका जानकार हो सकता है। जिसको पदार्थके सम्बन्धमे यथार्थ बोध नही है वह तत्त्व स्वरूपको अनुभवमे ले सके ऐसी पात्रता ही नही रख रहा। तो जो इस तत्त्वके विमुख हैं वह तो सिंहमाणवक हैं अर्थात् किसी बच्चेका नाम यदि सिंह रख दिया तो क्या उसमे सिंह जैसा पराक्रम आ जायगा ? वह तो बच्चा ही है, अल्प शक्ति वाला है, उसमे सिंहता कहाँसे आये ? तो एक तो किसी बच्चेका नाम सिंह रख देना और एक वास्तविक सिंह जो कि वनमे रहता है, उन दोनोमे अन्तर है। एक तो बनावटी सिंह है नाम रखा गया कल्पनाका सिंह है और एक मृगेन्द्र है जो कि जङ्गलका अधिपति जैसा है। इसी प्रकार जो एक तत्त्वको स्याद्वाद रीतिसे जानता है वह तो एक जानकारी है, दार्शनिक है और एक स्याद्वादके ढङ्गसे पदार्थको नही समझता है थोडा ऊपरी कुछ ज्ञान कर लिया उससे ही सन्तुष्ट रहकर अपनेका तत्त्ववेदी मानता है, वह वास्तवमे तत्त्ववेदी नही है, काल्पनिक तत्त्ववेदी है।

ननु सदिति स्थापि यथा सदिति तथा सर्वकालसमयेषु ।
तत्र विवक्षितसमये तत्स्यादथवा न तदिदमिति चेत् ॥३०६॥

किसी भी दृष्टिमे अविवक्षितके असत्त्वके विषयमे शका – अब यहाँ शङ्काकार शङ्का कर रहा है कि जिस प्रकार सत् एक स्थायी तत्त्व है नित्य है, उसी प्रकार सर्व कालोमे भी वह पाया जा रहा है। तो जब पदार्थ सभी समयोमे वही वही पाया जाता है उस ही प्रकार पाया जाता है फिर इसके बारेमे यह क्यो कहा जाता कि विवक्षित समयमे वह है और अविवक्षित समयमे वह नहीं है, और समयकी ही बात केवल नही, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव ये चार प्रकारोमे और उन चार युगलों को इस तरहसे बताया गया कि विवक्षित क्षेत्रसे है तो अविवक्षित क्षेत्रसे नही है। विवक्षितसे है और अविवक्षितसे नहीं है। बतायी गई है सबको एक ही पदार्थकी बात एक ही पदार्थमे विवक्षित और अविवक्षितपनेसे है और नही है की नीति कैसे युक्त है? तो सभीमे है। जो वस्तु अखण्ड क्षेत्रसे है जैसे आत्मा एक पूर्ण है उसके क्षेत्रके टुकडे नही होते कि आधा आत्मा यहाँ हो आधा दूसरी जगह पहुचे। वह तो पूरा एक अखण्ड है और वही असख्यात प्रदेशी है याने उसके गुणोका बडा विस्तार है जो असख्यात प्रदेशोमे फैले हुए हैं तो लो वह आत्मा असंख्यात प्रदेशी है। अब आत्माको यो कहेता कि यदि अभेद क्षेत्रसे है तो भेद क्षेत्रसे नही है, भेद क्षेत्रसे है तो अभेद क्षेत्र

से नहीं है । उसमे विवक्षित और अविवक्षितके रूपसे अस्तित्त्व नास्तित्त्वकी बातें क्या रही । विवक्षितरूपसे भी है और अविवक्षितरूपमे जो है सो भी है बात दोनों हैं याने आत्मा अखण्ड एक क्षेत्री है और असख्यात प्रदेशी है । अस्तित्त्व तो नहीं मिट जाता । उसमे विवक्षित और अविवक्षितरूपमे अस्तित्व नास्तित्वकी बातें क्या रही ? अब इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं ।

सत्यं तत्रोत्तरमिति सन्मात्रापेक्षया तदेवेदम् ।
न तदेवेदं नियमात् सदवस्थापेक्षया पुनः सदिति ॥ ३१० ॥

सकलसदात्मकताका समर्थन करते हुए उक्त शकाका समाधान—शकाकारका कहना शङ्काकारकी दृष्टिमे ठीक है फिर भी उसका स्याद्वादके ढङ्गसे उत्तर तो सुनो सत्-सामान्यकी अपेक्षा यह वही है ऐसा कहा जाता है और सत्की अवस्थाओं की अपेक्षा यह वह नहीं है ऐसा कहा जाता है । द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव, इन चार प्रकारोंमे यह बात घटित कर लीजिए । यहाँ कालकी अपेक्षा बात कही जा रही है । जब एक सामान्य कालकी अपेक्षा बात कही जा रही है, जब एक सामान्य कालकी बात देखी जाती है तो परिणमन मात्र दीखा और परिणमन मात्रमे क्या दीखा ? वह शाश्वत् रहने वाली वस्तु निरखी गई । तो यों सत् सामान्यकी अपेक्षा जब देखा गया तो सर्वत्र यही उत्तर हुआ कि यह वही है किन्तु जब किसी सत्की अवस्थाओं पर दृष्टि देते हैं तो अवस्थायें तो भिन्न भिन्न समयोंमे भिन्न भिन्न होती हैं और कितनी ही अवस्थायें तो स्पष्ट भिन्न नजर आती हैं । विभाव अवस्थायें अनेक एक दम विरुद्ध सी जचती हैं । जैसे कोई पुरुष अभी क्रोध कर रहा था तो क्रोधमे वह एक दम क्षुब्ध हो रहा था । उसके बाद उसमे लोभ कषाय जगा तो लोभ कषायमे वह एकदम विपरीत दिखने लगा । तो कितना विपरीत परिणमन एकके बाद एक आ गया ऐसा स्पष्ट समझमे आता है । तो वहाँ यह कहा जायगा कि उसमे ही जो पहिले था सो अब नहीं रहा । तो जब सत्की अवस्थाओंकी अपेक्षासे कहा जाता है तो वहाँ यह निर्णय होता है कि यह वह नहीं है । यो सत्मे अन्वय व्यतिरेक बराबर बना हुआ है । और, अन्वय व्यतिरेकात्मक सत् है, विधि निषेध उभयात्मक है, इस सिद्धान्तमे किसी भी प्रकार बाधा नहीं आता । तब तत्त्वकी सिद्धि इस प्रकार हुई कि वह सन्मात्र है और विधि-निषेधात्मक है, भेदाभेदरूप है, परिणामी है । इस प्रकार वस्तु तत्त्व जानने वाले ही स्याद्वादी और तत्त्ववेदी कहे जाते है ।

ननु तदतयोर्द्वयोरिह नित्यानित्यत्वयोर्द्वयोरेव ।
को भेदो भवति मिथो लक्षणलक्ष्यैक भेद भिन्नत्वात् ॥३११॥

तत् अतत् एव नित्य अनित्यमें अन्तरकी जिज्ञासारूपमे शका—शङ्काकारका यह कहना है कि तत् और अतत्मे तथा नित्यत्व और अनित्यत्वमे कौन सा भेद है ? सिवाय इस बातके कि उनमें लक्षण और लक्ष्यकी ज्ञान समझमे आये। तो वहाँ नित्यपना उससे समझा जाता है कि वही वही है अथवा पदार्थ वहीका वही है। इससे समझा जाता है कि पदार्थमे अनादिपना है, सदा वही रह रहा है क्योकि पदार्थ वहीका वही दृष्टिगोचर हो रहा है और पदार्थ वह नही है उसमे भिन्नता नजर आती है। जो था वह अब नही है। अब जो हो रहा है ऐसा पहिले न था, इस अतद्भावको छोडकर यह ज्ञात होता है। वस्तु अनित्य है तो नित्यपना अनित्यपनाका जो युगल है उससे तत् अतत्पनेका युगलमे कोई भेद नही है। बात वहीकी वही कहा गई है। जब लक्ष्य लक्षण भेदके सिवाय इन दोनो युगलोमे परस्पर भेद ही नही है तब फिर इनको अलगसे क्यो कहा गया है ? कोई सा भी एक युगल मान लिया जाता उससे ही यथार्थ बोधकी सिद्धि हो जाती है. इस कारण पदार्थको यदि चार युगलोसे गुम्फित कहा गया था कि पदार्थ सत् असत्, एक अनेक, नित्य अनित्य, तत् अतत्—इन चार युगलोसे गुम्फित है सो तीन युगलोंसे गुम्फित कहा। तत् अतत्, नित्य अनित्य इन दोनोका एक ही अर्थ है, इस कारण इन दोनो युगलोको प्रथक् प्रथक कहना व्यर्थ है। अब इस शङ्काके समाधानमे कहते है।

नैवं यतो विशेषः समयात्परिणमति वा न नित्यादौ ।
तदतद्भावविचारे परिणामो विसदृशोऽथ सदृशो वा ॥ ३१२ ॥

नित्यत्व अनित्यत्व तथा तत् अततके विचारके समय दृष्टभेद बताते हुए उक्त शकाका समाधान —शङ्काकारका उक्त कथन यो ठीक नही है कि नित्य और अनित्य वाले युगलसे तत् अततपने वाले युगलमे भेद है। इन दोनो युगलोमे परस्पर भेद यह है कि नित्यपनेका विचार करते समय तो केवल यही दिख रहा है कि परिणमन नही हो रहा है। और अनित्यपनेकी दृष्टिमे यह देखा जाता है कि प्रति समय परिणमन हो रहा है। तो नित्य और अनित्यपनेके विचार करते समय यह दृष्टिमे आता है और केवल यही निर्णय बनता है कि प्रतिसमय परिणमन होता है या नही? किन्तु जब तत् अतत् भावका विचार करते हैं तो वहाँ यह दृष्टिगत होता है कि परिणमन सदृश हो रहा है या विसदृश, क्योकि तत् इस दृष्टिमे यह भाव भरा है कि पदार्थ वहीका वही है। तो वहीका वही तब ही तो समझा जा रहा है कि जब सदृश परिणमन चल रहा है और अतत् है यह भी नही है यह तब ही समझा जाता है कि जब वहाँ विसदृश परिणमन चल रहा हो। तो तत् अतत् भावका विचार करते समय यह निर्णयमे आता है कि परिणमन सदृश होता है या विसदृश ? इन दोनो युगलोमे निर्णय और दर्शन जुदा—जुदा पडा हुआ है। इस कारण दोनो युगलोका

वर्णन करना उपयुक्त है।

ननु सन्नित्यमनित्यं कथञ्चिदेतावतैव तत्सिद्धिः ।
तत्किं तदतद्भावाविचारेण गौरवादिति चेत् ॥ ३१३ ॥

नित्यत्व अनित्यत्वके विचारसे ही सिद्धि हो सकनेसे तदतद्भाव विचारकी व्यर्थताकी शका—सत् कथचित् नित्य है और कथचित् अनित्य है। जब इतना ही मात्र कह दिया गया तो उसमे ही यह सिद्ध हो जाता है कि सदृश परिणमन है या विसदृश ? जहाँ अनित्यपनेकी बात कहा वहाँ विसदृशता सिद्ध हो ही जाता है, फिर तत् अतत् इन दोनों युगलोंके विचार करनेसे क्या प्रयोजन ? जो बात सक्षेपमे एक नित्य अनित्य दृष्टिसे सिद्धि हो गयी तब उस सम्बन्धमें अन्य प्रकार ढूढना विचार करना इसमे तो गौरवका दोष आता है। गौरव दोष उसे कहते हैं कि बात तो सिद्ध हो गयी फिर भी उस विषयका विचारका बाझ और व्यर्थका लादा जा रहा है जिस विचार बोधके बिना भी कार्य सिद्ध हो रहा था। जैसे कोई भाषण करता हो और उसमे जो सार बात है वह कह चुका है अब उस सार बातको बार बार कई बार दुहराये तो वहाँ गौरव दोष बनता है। सुनने वाले लोग भी बोझमे दबकर परेशान हो जाते हैं सुनना पसद नही करते। ऐसे ही जब यहाँ नित्य अनित्यपनेके विचारसे ही सब बात सिद्ध होती है, सदृश परिणमन है, विसदृश परिणमन है आदिक सब बातें जब सिद्ध हो गयीं तब अतत्भावको युगल कहा जाना, गौरवदोष वाली बात बनेगी। उससे सिद्धि कुछ नहीं है फिर क्यो यह चौथा युगल बताया गया है ? अब इसके समाधानमे कहते हैं।

नैवं तदतद्भावाभावविचारस्य निन्हवे दोषात् ।
नित्यानित्यात्मनि सति सत्यपि न स्यात् क्रियाफलं तत्त्वम् ३१४

तदतद्भावके विचार बिना क्रियाफल व तत्त्वकी सिद्धि न हो सकना बताते हुए उक्त शकाका समाधान—शङ्काकारका उक्त कथन ठीक नही है क्योंकि यदि तत् अतत्के सद्भाव अभावका विचार लुप्त कर दिया जाय तो यह दोष आता है कि सत् यद्यपि नित्य अनित्य है यह बात मान ली गई तिसपर भी जब वहाँ तत् अतत् भाव नही माना जा रहा तो क्रियाफल और तत्त्वकी सिद्धि नहीं बन सकती। जो कुछ भी क्रिया हुई है उस क्रियासे हमे जो कुछ भी बात ग्रहण करना है अथवा उससे जो कुछ भी बात बनती है वह तत् अतत् भावका ज्ञान होनेपर बनती है, परिणमन हो रहा ठीक है। मिट्टीमे घटका परिणमन हो रहा। अब घट बन चुकनेके बाद घटका जो उपयोग किया जा रहा है तो उपयोग करने वाला यह ही तो समझ रहा

कि हाँ घडा बन गया, अब मिट्टी नही रही घडा पक गया तब ही उसका उपयोग किया जा रहा है। तो क्रिया फल, उपयोग, लोक व्यवहार वे सब तद्भाव और अतद्भावक समझनेपर निर्भर है। तो तद्-अतद् भाव नहीं माना, और नित्यानित्यात्मक माननेसे क्रियाफल और लोक व्यवहार यह कुछ भी सिद्ध न हो सकेगा इस कारण नित्यानित्यात्मक युगल माननेपर भी तत् अतत् युगल मानना आवश्यक है, इसी कारण वस्तुको चार युगलोसे गुम्फित कहा गया है। तत् अतत् माने बिना क्रियाफल की सिद्धि नही होती। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए गाथा कह रहे है।

अयमर्थो यदि नित्य सर्वं सत् सर्वथेति किल पक्षः।
न तथा कारणकार्ये कारणसिद्धिस्तु विक्रियाभावात् ॥ ३१५ ॥

—सर्वथा नित्य पक्षके क्रियाफलकी असिद्धिका प्रतिपादन —सम्पूर्ण सत केवल नित्य है यह पक्ष तो केवल स्वीकार कर लिया, अब इतना मान लेनेपर भी किसी प्रकारकी क्रिया नही बनती इसलिए सत अनित्य है, यह भी तो मानना पडा। यहाँ यह विचार कि तद् अतद्भावके बिना क्रियाफलकी सिद्धि नही होती। कुछ लौकिक ढङ्गसे विचार कर रहे हैं। तो जैसे केवल पदार्थको नित्य मान लिया गया तो नित्यके मायने है वह अपरिणामी है और जहाँ किसी भी प्रकारका परिणमन है ही नहीं वहाँ क्रिया क्या बनेगी ? कारण कार्य कारक कुछ भी नही बनता। तब नित्य पक्ष मान लेनेके बाद जब क्रियाकी सिद्धि न बन सकी तो अनित्य पक्ष भी मानना पडा। अनित्य पक्ष माननेने पर क्रिया बन जाती है। क्रियासे यह व्यक्त अर्थ होता है कि कुछ बात हुई और कुछ बात होना तब सिद्ध होता है जब कि कुछ परिणमन हुआ हो। पहिले और था अब और कुछ हुआ तो केवल नित्यपक्ष माननेपर कारण, कार्य, कारक इनमेसे किसीकी सिद्धि नही होती है। कारण कार्य कुछ नही रहा। जब केवल अपरिणामी है तो क्या कारण और क्या कार्य और उसमे करने वाला भी कौन ? बाह्य साधन भी क्या और व्यक्तरूप भी क्या ? फिर पदार्थकी पहिचान भी क्या, पदार्थका अस्तित्व भी ज्ञात न हो सकेगा। तो केवल नित्यपक्ष माननेसे काम तो न चला था तब अनित्य पक्ष मानना चाहिए। यह बात समझमे आयी। अब आगेकी बात सुनो।

यदि वा सदनित्यं स्यात्सर्वस्वं सर्वथेति किल पक्षः।
न तथा क्षणिकत्वादिह क्रियाफलं कारकाणि तत्रं च ॥३१६॥

—सर्वथा अनित्यपक्षमे क्रियाफलकी सिद्धि न हो सकनेका वर्णन —जैसे सर्वथा नित्य पक्ष माननेपर क्रिया कार्य कारण आदिककी सिद्धि नही होती। इसी

प्रकार केवल अनित्य पक्ष माननेपर भी क्रिया फल कारक तत्व किसीकी भी सिद्धि नहीं होती। मान लिया गया कि सम्पूर्ण सत् केवल अनित्य है, केवल अनित्य है इसका यह भाव है कि वह केवल एक समयको ही रहता है। दूसरे समयमें कोई नई वस्तु आती है वह वस्तु दूसरे समय भी नहीं चल पाती है ऐसा केवल अनित्य पक्ष मान लिया गया तो वस्तु क्षणिक है एक क्षणमें उत्पन्न हुई अब वह दूसरे क्षणमें न टिक सकी। तो ऐसी क्षणिक वस्तु जब मानी गई तो वहाँ क्रियाफल क्या ? पदार्थ हुआ और तुरन्त नष्ट हो गया। उसका फल क्या रहा ? करने वाला क्या रहा ? तत्त्व क्या रहा ? व्यवहार भी किसका किया जाय ? तो यों केवल नित्य पक्ष मानने मे भी क्रिया फल आदिककी कुछ भी सिद्धि नही हो सकती है। तब मानना पडेगा ना कि वस्तु अनित्य होनेपर भी कथंचित् नित्य है। कथंचित् अनित्य माननेपर फिर अनित्यपनेकी बात निरखकर क्रियाफल आदिक सिद्ध हो पाते हैं। तो जैसे केवल नित्य माननेपर क्रियाफलकी सिद्धि नहीं हुई और केवल अनित्य माननेपर क्रियाफलकी सिद्धि नही हुई। इसी प्रकार अब यह देखें कि सत्ता केवल नित्यानित्यात्मक माननेपर भी साध्यकी सिद्धि नही बन सकती। इसी बातको अब अगली गाथामें कह रहे हैं।

अपि नित्यानित्यात्मनि सत्यपि सति वा न साध्यसंसिद्धिः।
तदतद्भावाभावैर्विना न यस्माद्विशेषनिष्पत्तिः ॥ ३१७ ॥

तदतद्भावके विदित किये बिना नित्यानित्यात्मक माननेपर भी क्रिया फलकी सिद्धि न हो सकनेका कथन—यदि सत्को केवल नित्यानित्य माना जा रहा है तो नित्यानित्यात्मक पक्ष मान लेनेपर भी साध्यकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि क्रिया, क्रियाफल आदिक बात तो तब ही प्रकट होगी जब कि यह मान लिया जायगा कि यहाँ तद्भाव और अतद्भाव भी विदित हो रहा है। तद्भाव अतद्भाव माने बिना विशेषकी निष्पत्ति नहीं बतायी जा सकती। पदार्थमें जो भेद प्रतीत हो रहा है वह तो तद्भाव और अतद्भावसे ही जाना जा रहा है। नित्यानित्यात्मक युगलको यह समझ लिया गया कि वस्तु नित्य है, वहीकी वही है अपरिणामी है, अपने स्वभावका परिवर्तन नही है। सत्त्व भी कोई जुदा न बनेगा और अनित्य मानने से यह जान लिया गया कि प्रतिसमय परिणमन कर रहा है। अब फल भोगता या उससे कोई क्रियाफलका लोप आये तो यह बात तब तक नहीं बन सकती जब तक दृष्टिमें यह न आये कि यह वस्तु अब वह नही रही और वही वस्तु चल रही है तो यह वही है और यह वह नही है, ये दो बातें जब तक विदित न हों तब तक क्रियाफल की सिद्धि नही हो पाती है। जैसे मिट्टीका घडा बनाकर उसको उपयोग किया जाता है। तो नित्यानित्यात्मक है पदार्थ इस कारणसे उसमें कुछ परिवर्तन किया

जा सक रहा है। माटी सानकर लौंदा बनाकर उसे चाकपर फैलाकर घडेका रूप बना दिया जाता है, उसे सुखाकर पका लिया जाता है। ये सब परिणमन हो रहे हैं अनित्य होनेके कारण लेकिन फलभोक्ताकी दृष्टिमे यह बात बनी हुई है कि वही माटी पर अब लौंदा आदिक नही रहा, पक गया है, अब यह आसानीसे फूट भी नही सकता। इसका उपयोग किया जा सकता है। अतद्भावकी बात जब उपयोगमे आती है तब तो फलकी सिद्धि होती है। तो नित्यानित्य युगलकी तरह तत अतत युगलका मानना भी आवश्यक है।

अथ तद्यथा यथा सत्परिणामनमानं यदुक्तमस्तु तथा।
भवति समीहितसिद्धिर्विना न तदतद्विवक्षया हि यथा ॥३१८॥

तदतद्भावकी दृष्टिसे समीहित सिद्धि - अब यदि सतका जैसा परिणमन है जैसा परिणममान सत है उसे वैसा ही कहा जाय। यदि ऐसी इच्छा करते हो याने पदार्थका सम्यग्ज्ञान यदि चाहते हो, पदार्थको जैसाका तैसा ही कहा जाना यदि अभीष्ट है तो तद्भाव और अतद्भावको स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि तद्भाव और अतद्भावका युगल माने बिना, इसकी दृष्टि किए बिना इष्ट अर्थकी सिद्धि नही हो सकती। जितने भी लोकव्यवहार आदिक निःशंक परिणति हो रही है उसमे कारण तद्भाव और अतद्भावकी दृष्टि है। पदार्थमे यह समझा जा रहा है कि यह वही है और साथ ही यह भी समझा जा रहा है कि यह वह नही है, न परिणमन है, भिन्न बात है और दोनो ये सापेक्ष समझमे आ रहे है बिल्कुल भिन्न। सर्वथा भिन्न बातमे भी समिहितकी सिद्धि नहीं है। जैसे भिन्न-भिन्न दो द्रव्य हैं वे अलग-अलग हैं ऐसे अतद्भावसे बात नही बना रहे हैं किन्तु उस ही तद्भावमे अतद्भावको दृष्टि करके अर्थसिद्धि की जा रही है। पदार्थ वहीका वही है, यह भी ज्ञानमे हो और अब यह वह न रहा, दूसरा परिणमन है दूसरी अवस्था है यह भी ज्ञानमें हो तब लोक व्यवहार बनता है। केवल वही सर्वथा वही जिसमे कि अपरिणामीपनेका सम्बन्ध हो उस ज्ञानसे भी सिद्धि नहीं होती है। और सर्वथा भिन्न अनेक द्रव्योंकी भाँति जिनमे लगार भी कुछ नही, ऐसे भिन्नपनेमे अतदसे भी कोई सिद्धि नही होती किंतु ततमे ही अतत समझा जा रहा हो तो ऐसे तद्भाव और अतद्भावके विवेकसे समिहित अर्थकी सिद्धि होती है।

अपि परिणममानं सन्न तदेतत् सर्वथाऽन्यदेवेति।
इति पूर्वपक्षः किल विना तदेवेति दुर्निवारः स्यात् ॥ ३१९ ॥

तद्भाव स्वीकार किये बिना वस्तुत्वके लोपका प्रसङ्ग - तत और

असत्के कहनेसे नित्य अनित्य और परिणमनकी व्यवस्था बनती है और समीहित अर्थकी सिद्धि होती है, इस बातको स्पष्ट कर रहे हैं। परिणमन करता हुआ सत वह नहीं है जो पहिले था, किंतु पहिलेमे सर्वथा भिन्न ही है इस प्रकारका पूर्वपक्ष तत पक्षको स्वीकार किए बिना दूर नहीं किया जा सकता। याने परिणमता हुआ पदार्थ वही है, यह न माना जाय तो उसमें यह एकान्त बन जावेगा कि परिणमनमान पदार्थ समूल सर्वथा अन्य अन्य ही है। तथा यह भी नहीं कहा जा सकता कि परिणमन करता हुआ पदार्थ जो पहिले था उससे सर्वथा भिन्न है, पर्यायोंकी विभिन्नता होनेपर भी ये विभिन्न पर्यायें कैसे एक आधारमे हुई है? ऐसे उस तत् भावको भी तो समझना होगा। जैसे अतत् पक्ष माननेसे ही यह बात जानी जा सकती है कि यह परिणमता हुआ पदार्थ पहिली अवस्थामे नवीन अवस्थारूप परिणम गया। अनित्य पक्षमे यद्यपि यह सिद्ध किया कि वस्तु अनित्य है, वह नही रहता, उसमे नवीन-नवीन अवस्था बनती है। पर नवीन अवस्था है, अनित्यपना है जो अवस्था बनी वह मिट जाती है, यह बात कैसे समझी जाय? इसको अतत् पक्ष समझाता है। जो पहिले था वह अब नहीं है, इसका बोध होनेपर जाना जाता है कि वस्तु बदल गयी। वस्तुका परिणमन जाना कैसे जाय, इस बातका यहाँ संकेत किया गया है। इसी प्रकार परिणत हुआ वस्तु वही है यह तत्त्व तत् पक्षको स्वीकार करनेपर ही समझ सकते हैं। इस कारण नित्यानित्य युगलको कहकर यह तत अतत युगल कहना ही पडा।

अपि परिणतं यथा सद्दीपशिखा सर्वथा तदेव यथा।
इति पूर्वपक्षः किल दुर्वारः स्याद्विना न तदिति नयात् ॥३२०॥

अतद्भावको स्वीकार किये बिना अवस्थाओंकी उपपत्तिकी असंभवता—और भी देखिये। परिणति करता हुआ सत दीपशिखाके समान वही है, ऐसा पूर्वपक्ष अतत पक्षको स्वीकार किये बिना दूर नहीं किया जा सकता। अतत भाव माननेपर ही अवस्थायें सिद्ध होगी। अतत पक्षके स्वीकार किए बिना यह भी न माना जा सकेगा। जैसे दीपशिखा बिल्कुल नवीन तेलमें आनेसे नये-नये बनते चले जाते हैं नया नया परिणमन होनेपर भी विदित नहीं होता नया-नया, किंतु वही एक दीपशिखा, तो जैसे दीपशिखा परिणत होनेपर भी वहींका वही समझमें आती है तो कैसे आई? उसमे बोध रहा कि यह वही तो शिखा है जो पहिलेसे चल रही है, किंतु है वहाँ नवीन नवीन परिणमन। ऐसे ही पदार्थमे परिणत हुआ पदार्थ वही है, यह बात तत पक्षके स्वीकार करनेपर ही जैसे विदित हो जाती है ऐसे ही अवस्थाओंका परिचय अतद्भावको माने बिना हो नही सकता। सो तत अतत युगलमे भी वस्तु गुम्फित है यह कथन भी युक्तिपङ्गत है। वस्तुको चार युगलोमे परखा जाता है—वस्तु है और नहीं है, अपने चतुष्टयसे है पर चतुष्टयसे नहीं है, वस्तु नित्य है अनित्य नहीं है, वस्तु

एक है और अनेक है, अभेद विवक्षासे एक नजर आता है भेद विवक्षासे अनेक नजर आते हैं। इसी प्रकार वस्तु तत्स्वरूप है और अतत्स्वरूप है। वस्तुमात्रको निरखनेसे तत तत्का बोध होता है। वहीका वही है और पर्यायोको निरखनेमे अतत्का बोध होता है। यह वह नही है। तो तीन युगलोकी भाँति तत अतत्का युगल भी वस्तुके सम्यक अवबोधमे सहायक होता है।

तस्मादवसेयं सन्नित्यानित्यत्ववत्तदतद्वत्।
यस्मादेकेन विना न समीहितसिद्धिरध्यक्षात् ॥ ३२१ ॥

वस्तुकी तदतद्भावसे गुम्फितताका निर्णय—जब तत अतत पक्ष स्वीकार किया गया तब नित्य अनित्यपनेका बोध बना तो इस कारण नित्य अनित्यके समान तत अतत रूप है वस्तु, यह मान लेना ही चाहिए। क्योकि तत अतत मे किसी एकके माने बिना अर्थकी सिद्धि नही हो सकती है। हम स्पष्ट समझ रहे हैं कि यह पदार्थ नित्य है, कैसे जाना कि वहीका वही है जब यह विदित हुआ तो इस ज्ञानसे ही यह समझमे आया कि पदार्थ ध्रुव है। और जब पर्यायपर दृष्टि देकर कहते हैं कि पदार्थ अनित्य है तो यह भी बात कैसे समझमे आई कि जब इसने समझा कि अब यह वह नही है जो पहिले था, उससे ज्ञान बना कि वस्तु अनित्य है। तो वस्तुके स्वरूपको समझनेके लिए ही ये सब विधिया बताई गई हैं और स्वरूपकी समझ जैसे उन ३ युगलोके माध्यमसे होती है तत अतत्के युगलसे भी सिद्धि होती है। इस कारण यह बात निर्विवाद होती है कि पदार्थ चार युगलोमे गुम्फित है और वे चारो युगल द्रव्य, क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे घटित है। इस तरह अनेकान्त बोधकी शुद्धि बनती है और उस शुद्धिसे पदार्थका अवगम होता है।

स्वरूपसाधनमे चार युगलोकी अनिवार्यता—कोई भी धर्म माना जाय, उसमें ये चार युगल सिद्ध होगे ही। जब कहा जाय कि आत्मा ज्ञानमात्र है तो ज्ञान मात्र है इतना कहनेपर भी ज्ञानमात्रका स्पष्ट बोध तब हो सका जब इसकी अनेकांत बोधसे शुद्धि की गई है। आत्मा ज्ञानमात्र है, अर्थात् ज्ञानमात्र जो भीतरी तत्त्व है स्वरूप है उसकी अपेक्षा सत् है और ज्ञान बनता है कब? जब कुछ जानन हो। तो ज्ञानके कहते ही प्रतिपक्ष ज्ञेय और आ गया। यह ज्ञेय अन्तर्ज्ञेयाकाररूप है एक वस्तुमें संप्रतिपक्षता कही जा रही है तो ज्ञेयकी अपेक्षामे यह ज्ञानमात्र आत्मा असत् है और ज्ञानमात्रकी अपेक्षासे आत्मा सत् है। अब यहाँ देखना है कि ज्ञान एक है और ज्ञेयमे ज्ञेय जानन उतना होरहा जितना कि जगतके पदार्थ समूह है उतना ही यह अन्तर्ज्ञेयाकार बन रहा है। तो एक ही वस्तुमे निरख रहे हैं ज्ञानकी अपेक्षा एक है और ज्ञेयाकारकी अपेक्षा अनेक है। अब ज्ञानस्वरूप तो वहीका वही है और उसका

जो कार्य होरहा है ज्ञेयाकारमें प्रतिभास उसकी दृष्टिसे अनेकता है तो यों ज्ञानमात्र वस्तु ज्ञानस्वरूपसे एक है और अन्तर्ज्ञेय स्वरूपसे अनेक है। अब वही ज्ञानमात्र आत्मा जब केवल सहज ज्ञानस्वरूपसे परखा जारहा है तब एकरूप है और ज्ञान क्या? ज्ञेय का प्रतिभास! तो यो अन्तर्ज्ञेयाकारके रूपमे देखा जारहा है तो वह अनेकरूप है। यों ज्ञानमात्र आत्मवस्तु कहनेपर भी वह वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित सिद्ध होती है। वस्तुका स्वरूप है, इसी प्रकार है कि जिसका प्रतिपादन पूरा किया जाय तो चार युगलोमें ही बताया जा सकेगा। जब उस ज्ञानमात्र आत्मवस्तुको केवल ज्ञान ज्ञानदृष्टि से देखा तो वह तद्रूप है और जब अन्तर्ज्ञेयाकाररूपसे देखा तो प्रतिसमय वहाँ नया नया रूप है अतएव अतद्रूप है। यो प्रत्येक पदार्थ चार युगलोसे गुम्फित होता है।

ननु भवतु सर्वथैव हि परिणामो विसदृशोऽथ सदृशो वा।
ईहितसिद्धिस्तु सतः परिणामित्वाद्यथाकथञ्चिद्वै ॥ ३२२ ॥

सत्को परिणामी मान लेनेसे अर्थसिद्धि हो जानेके कारण तदतद्भाव की कल्पनाकी व्यर्थताका शङ्काकार द्वारा कथन—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि परिणाम चाहे सर्वथा सदृश हो, किसी भी प्रकारका परिणाम चाहे सर्वथा सदृश हो या सर्वथा विसदृश हो किसी भी प्रकारका परिणमन होता रहा हो, अब उसमे तत् अतत् भावके न माननेसे क्या हानि है? क्योंकि अर्थक्रिया, क्रियाफल, इष्ट अर्थकी सिद्धि तो सत्को कथंचित् परिणामी मान लेनेसे हो जाती है। सत् है और कथंचित् परिणामी है इतने बोधसे अर्थक्रिया, क्रियाफल सबकी सिद्धि हो जाती है। अब उसमें तत्रूप और अतत्रूप माननेकी आवश्यकता ही क्या है? तत्रूप सदृश देखकर ही तो कहते हो, अतत्रूप विसदृश देखकर ही तो कहते हो। परिणमन हो रहा है सो परिणमन होनेसे क्रिया और क्रियाफल बन जाते हैं फिर उसमे और गौरव क्यो बढाते कि तद्रूप और अतद्रूप भी मान लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि तत् अतत् युगल माने बिना वस्तुको परिणामी मान लेनेसे अर्थक्रिया और क्रियाफल की सिद्धि होती है इस कारण चतुर्थ युगलकी बात कहना नि०

तन्न यतः परिणामः सन्नपि सदृशैकपक्षतो न तथा।
न समर्थश्चार्थकृते नित्यैकान्तादिपक्षवत् सदृशात् ॥ ३२३ ॥

तदतद्भाव माने बिना नित्यत्वैकान्तकी तरह सदृशपक्षके एकान्तसे भी अर्थ सिद्धिका अभाव—उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं। शङ्काकारका यह कहना कि तत् और अतत् युगलके माने बिना सत्को परिणामी मान लेने मात्रसे पदार्थमें अर्थ क्रिया और क्रियाफलकी सिद्धि हो जाती है। अब उसमें यह परखनेसे क्या लाभ

है कि वह सदृश परिणामी है या विसदृश ? कैसा भी परिणाम रहे । सत् परिणामी है और जब परिणामी है तो उसमें किया बन गई । जब क्रिया बन गई तो व्यवहार का उपयोगी हुआ । तो तत् अतत्के माने बिना केवल परिणामी मान लेनेसे अर्थ सिद्धि है यों शङ्काकारका आशय है, और वह आशय ठीक नहीं है। कैसे ठीक नहीं है उसको सब दृष्टियोंसे घटित कर रहे हैं। देखिये ! परिणाम होकर भी वह सदृशरूप होता है ऐसा पक्ष माननेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि नित्य एकान्त आदिक पक्षकी तरह सदृश परिणामके माने जानेपर भी वह कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ।

नापीष्टः संसिध्यै परिणामो विसदृशैकपक्षात्मः ।
क्षणिकैकान्तवदसतः प्रादुर्भावात् सतो विनाशाद्वा ॥ ३२४ ॥

तदतद्भाव माने बिना क्षणिकैकान्तपक्षकी तरह विसदृशत्वपक्षेकान्तसे भी अर्थ सिद्धिका अभाव—जिस प्रकार परिणमन होकर सदृशात्मक माननेका पक्ष रखनेसे एक सदृश परिणामकी ही बात सिद्धकी सो वह पक्ष कार्य करनेमे समर्थ न हो सका जैसे कि नित्य एकान्त माननेमे अपरिणामी बना, कोई नई बात बने ही नहीं तो वहाँ कार्य नहीं बनता । तो यों ही जब पूर्णतया सदृश ही परिणमन रहा तो नवीनता तो आयगी नहीं तो वहाँ भी कुछ कार्य करनेमे सामर्थ्य न होगी, ठीक इसी प्रकार सर्वथा विसदृश परिणाम मान लिया जाय तो वहाँ भी वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वथा विसदृश परिणाम माननेका अर्थ होगा, जैसे क्षणिक एकान्त पक्षमे जो देखा गया उस प्रकार । तो सर्वथा विसदृश परिणाम माननेमे यह बात आ जायगी कि असत्की उत्पत्ति हुई और सत्का विनाश हुआ । विसदृश ही तो हुआ । सदृशता तो कुछ भी दृष्टिमें न रही और सर्वथा विसदृशताका अर्थ हुआ कि नवीन परिणति बनी तो असत्की उत्पत्ति और विनाशका प्रसंग आता है जैसे कि क्षणिक एकान्त पक्ष माननेमें दोष है वही दोष सर्वथा विसदृश माननेमे आता है। तब क्या मानना चाहिए सो बताते हैं ।

एतेन निरस्तोऽभूत् क्लीबत्वादात्मनोऽपराद्धतया ।
तदतद्भावाभावापह्नववादी विबोध्यतेत्यधुना॥ ३२५ ॥

तदतद्भावका अपलाप करने वालेको विबुद्ध करनेका उपक्रम - उक्त मान्यताओंमें तद्भावका और अतद्भावका लोप किया गया था सो उसके तद्भावका लोप करनेपर भी अर्थकी सिद्धि नहीं होती और अतद्भावका लोप करनेपर भी कार्य की सिद्धि नहीं होती । जैसे कि नित्य एकान्तमे कार्य न बनेगा विक्रिया ही कुछ न होगी वैसे ही अनित्यैकान्तमें भी कार्य न बनेगा, क्योंकि वहाँ नवीन ही कुछ हुआ ।

कार्य कारणका अवसर ही क्या ? यो तद्भाव और अतद्भावका लोप करनेसे यह दोष आता है, अत कोई तद्भाव और अतद्भावका अपलाप नही कह सकता। और कोई अगर करेगा तो वह अपराधी है, वह कुछ सिद्धि करनेमें समर्थ हो ही नही सकता इस कारण उसका मतव्य निराकृत हो जाता है। मानना चाहिए तद क्या, सो सुनिये यदि वस्तु स्वरूपका ढङ्गसे ज्ञान करना है तो समझना चाहिए यह कि जैसे वस्तु नित्यानित्यत्व युगलसे गुम्फित है उसी प्रकार वस्तु तद्भाव और अतदभावके युगलसे गुम्फित है। सो अब उसीको ही समझाया जायगा जो तद्भाव और अतद्भावका अपलाप कर रहा है। तद्भाव और अतदभावके युगलसे वस्तु गुम्फित है, इतना तो संक्षेपरूपसे अभी कह ही दिया गया है कि केवल नित्य मान लेनेसे यह बोध हुआ कि पदार्थ बस वही एक मात्र है। उसमे कुछ भी फेर परिवर्तन अवस्था नही बनती। तो कहाँ और कोई बात नही जानी गई। कार्य सिद्धि कैसे हो ? इतना तक भी नही समझा गया कि सदृश परिणामी ज्ञात होता है किन्तु तद्भावमे ध्रुवता ज्ञात होती है परिणमन होनेपर भी वहीका वही है यह दृष्टि तद्भावमे आती है और नित्य होनेपर अगर सदृशताकी दृष्टि लाये क्योंकि अपरिणामी है वहीका वही सदा है तो सर्वथा सदृश बन जायगा यो ही केवल अनित्य एकान्त माननेपर सर्वथा विसदृश बन जायगा और सर्वथा सदृश और सर्वथा विसदृश माननेमे अर्थक्रिया नही बनती। तो सर्वथा सदृश और सर्वथा विसदृश वह परिणाम सिद्ध न हो इस कारणसे तद्भाव व अतदभाव को मान लेना चाहिए। नित्यानित्यत्वमे गर्भित कर तद तद्भावके अपलापका आशय न बनाना चाहिए। तो तद्भाव और अतद्भावका मानना आवश्यक है। अब इसीका कुछ विवरण दृष्टान्तके साथ बता रहे हैं।

तदतद्भावनिबद्धो यः परिणामः सतः स्वभावतया।
तद्दर्शनमधुना किल दृष्टान्त पुरस्सरं वक्ष्ये ॥ ३२६ ॥

तद्भाव और अतद्भाव वस्तुमे स्वभाव निबद्ध—तद्भाव और अतद्भाव से निबद्ध जो परिणाम है वह सद्भूत वस्तुके स्वभावसे ही है। वस्तु वहीका वही रहे यह भी वस्तुके स्वभावकी बात है, और वस्तु प्रतिक्षण नवीन नवीन अवस्थामे आये, जो थी वह न रहे, यह भी वस्तुके स्वभावकी ही बात है पदार्थ परिणमनशील है, इसका भाव यही होगा कि वहीका वही है और वहीका वही नही भी है। तभी तो परिणमनशीलताकी बात सिद्ध होगी और चू कि यह बात शीलताके कारण है सो मानना होगा कि ये तद्भाव अतद्भाव वस्तुमे स्वभावसे निबद्ध हैं। एक वस्तुमे तद्भाव अतद्भाव दोनो परखे जाते हैं, इसको दृष्टान्त पूर्वक अब समझायेंगे और मुख्यतया जीवतत्त्वको ही दृष्टान्तमें लेकर इस विषयको समझायेंगे।

जीवस्य यथा ज्ञानं परिणामः परिणमंस्तदेवेति ।
सदृशस्योदाहृतिरिति जातेरनतिक्रमत्वतो वाच्या ॥ ३२७ ॥

तद्भाव अथवा सदृश परिणामका उदाहरण,—जैसे कि जीवका ज्ञान परिणाम है, वह परिणमता हुआ वह ही है ऐसा परखमें आता है ना । ज्ञानने विवध पदार्थोंको जाना और क्रम क्रमसे भी जाना, जैसे कि छद्मस्थोंके ज्ञानमें क्रम होता है, अनेक पदार्थोंको जाना, पहिले कुछ पदार्थ जान रहे थे, अब कोई अन्य पदार्थ जान रहे है तो वहाँ जाननका परिणमन तो होता ही रहता है, तिसपर भी जाननपनेकी दृष्टिसे कहाँ अन्तर आया? वह भी ज्ञान ही परिणाम था, यह भी ज्ञान परिणाम है । तो जीवका ज्ञान परिणाम परिणमता हुआ भी वह ही है इस प्रकार परखा जाता है, अनन्तकाल तक परिणमन करते हुए भी सदा वही रहता है । इसमें ज्ञानत्व जातिका किसी भी समय उल्लघन नही है । जो ज्ञान है, ज्ञाननपन है, जो शील है, प्रकृति है वह कभी भी दूर नही होता । तो देखो कि इस ज्ञान परिणाममे तद्भावकी बात बराबर बन रही है । इसे कहेंगे सदृश पक्षका उदाहरण । वह परिणाम जातिकी अपेक्षा सब सदृश ही चल रहा है । जैसे जाननपना था वहीका वही रहता है । कभी भी यह नही होता कि ज्ञान जाननपनेकी वृत्तिका त्याग कर किसी अन्य गुण-परिणमन वृत्तिको अंगीकार करले तो यह ही तद्भाव है । जैसे कि इस जीवके ज्ञानके उदाहरणमे बताया है कि निरन्तर परिणमता हुआ भी ज्ञान ज्ञानत्व जातिका उल्लघन नही कर रहा अतएव सदा वह ही है यह समझा जाता है ।

यदि वातदिति ज्ञानं परिणामः परिणमन्न तदिति यतः ।
स्वावसरे यत्सत्त्वं तदसत्त्वं परत्र नययोगात् ॥ ३२८ ॥

विसदृश पक्षका उदाहरण—अब देखिये ! विसदृश पक्षका उदाहरण । वही ज्ञान परिणाम परिणमता हुआ वह नही है, इस रूपमें भी तो निरखा जाता है । किसीने ५ मिनटमें २० पदार्थोंको क्रमसे जाना तो विवक्षित समयमें जिस पदार्थका जानन बन रहा था उस पदार्थका जानन अब तो नही है । तो अब यह नया ही जानन है । यदि नया जानन न हो तो जाननेमें भी कुछ न आयेगा यो समझ लेना चाहिए । तो वही ज्ञान परिणाम परिणमन करता हुआ बदलता है क्योंकि जिस समयका जो परिणाम है उसका उस समयमें जो सत्त्व है वह सत्त्व अन्य समयमें नही है । पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे वे सब अवस्थायें विभिन्न विभिन्न हैं तो इन भिन्न अवस्थाओके रूपमें वह परिणमन वह न रहा जो पहिले था । तो यहाँ अतद्भाव स्पष्ट विदित हो रहा है देखिये ! लोकव्यवहार ही मिट जायगा यदि अतद्भावकी बात न आये तो, मनुष्य बालक था, जवान हुआ, बूढा हुआ, इन अवस्थाओंमे अतद्भाव भी तो है,

अन्यथा जवान, बूढे और बालक जैसी चेष्टा या अधिकार क्यो नहीं पा लेता ? तो अतद्भाव न माना जाय तो सारा लोकव्यवहार नष्ट हो जायगा और तद्भाव न माना जाय तब भी व्यवहार नही बन सकेगा। तो यहाँ सदृश परिणाम और विसदृश परिणामके उदाहरणमे छद्मस्थ जीवके ज्ञानकी बात कही है। किन्तु तदतद्भाव शुद्ध अशुद्ध सभी परिणामोमे घटित होता है। अशुद्ध परिणाममें अतद्भाव सुगमतया विदित हो जानेसे यहाँ दृष्टान्तमे लिया है अब इन्ही सदृश और विसदृश परिणामोका विशेष स्पष्टीकरण कर रहे हैं।

अत्रापि च संदृष्टिः सन्ति च परिणामतोऽपि कालांशाः ।
जातेरनतिक्रमतः सदृशत्वनिबन्धना एवः ॥ ३२९ ॥

स्वजातिका अतिक्रम न करनेवाले कालांशोकी सदृशत्वनिबन्धनता—तद्भाव और अतद्भावके सम्बन्धमे यह भी दृष्टान्तरूपसे समझियेगा कि परिणमनशील जितने भी कालांश हैं अपने-अपने समयमे जो जो अवस्थायें बनती हैं वे पदार्थके स्वकाल कहे जाते हैं और वे हैं एक-एक समयके अतएव कालांश कहे जाते हैं। तो जितने भी कालांश हैं, जितनी भी अवस्थायें हैं वे सब अपनी-अपनी जातिका उल्लघन नही करती अतएव वे तद्भावके ही हेतुभूत हैं और तद्भावके कारण ही यह बात बन रही है कि प्रत्येक पदार्थ कितना ही परिणमे, पर अपनी जातिका उल्लघन न कर सकेंगे। तभी तो देखिये ! यह संसारी प्राणी कभी निगोद अवस्थामे था, जहाँ न कुछ जैसी दशा थी लेकिन वह नष्ट न हो सका था। तो आज कुछ प्रकाशित पर्यायमें आता है उस ही स्वभावके अनुरूप बात नजर आ रही है। तो जितनी भी अवस्थायें हैं कालांश हैं वे अपनी जातिका उल्लघन नही करते। जिस पदार्थमे वह स्वकाल है उस पदार्थका जो स्वभाव है उस स्वभावसे विरुद्ध परिणमन न हो जायगा। विरुद्धका अर्थ है अत्यन्त विरुद्ध। जैसे चेतनका परिणमन अचेतनरूप न हो जायगा। रूप रस गंध, स्पर्शवान पुद्गलका परिणमन कही चेतना आदिके रूप न हो जायगा। तो सभी कालांश अपनी जातिका उल्लघन नही करते, इस कारण वे सद्भावके ही हेतु हैं।

अपि नययोगाद्विसदृशसाधनसिध्यै त एव कालांशाः ।
समयः समयः समयः सोऽपीति बहुप्रतीतित्वात् ॥ ३३० ॥

प्रतिसमयके कालांशोंकी विसदृशत्वनिबन्धनता—अब अतद्भावका निदर्शन देखिये। वे ही कालांश जो प्रतिसमय नवीन-नवीन हुए हैं वे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे देखे जायें तो अतद्भावके कारण हैं क्योकि वहाँ अलग-अलग समयके परिणमन हैं और वे परस्परमे विभिन्न भी हैं। तो प्रथम, द्वितीय, तृतीय समयादिकके

रूपसे उन अवस्थाओकी जो एक समयसे भिन्न अन्य समयोमे प्रतीति होती है उससे यह सिद्ध है कि पदार्थमे अतद्भाव है। जो था सो अब नही है। अब कुछ नवीन ही हुआ, इस तरह पदार्थमे तदभाव और अतदभाव गुम्फित है। जैसे कि सत् असत्, नित्य अनित्य, एक अनेक ये तीन युगल गुम्फित है। यो ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे तदभाव और अतदभाव भी वस्तुमे गुम्फित है। यो चार युगलोसे युक्त वस्तु का स्वरूप परखा जाता है।

अतदिदमिहप्रतीतौ क्रियाफलं कारकाणि हेतुरिति ।
तदिदं स्यादिह संविदि हि हेतुस्तत्त्वं हि चेन्मिथः प्रेम ॥३३१॥

तद्भाव व अतद्भावके माननेमे वस्तुत्वसिद्धिका कथन—यह असत् है अर्थात् यह वह नही है, इस प्रतीतिमे क्रिया, फल, कारण ये सब हेतु हैं और यह वही है, इस प्रतीतिमे शाश्वत् तत्त्वकी सिद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि वस्तु है और निरन्तर परिणमती है और उसके परिणमनेका फल है। उसके लिए तो फल यह है कि स्वयकी सत्ता बनाये रहे क्योकि सत् होना ही वह है जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त हो और बाह्य फल यह है उसकी अर्थक्रियाका निमित्त पाकर अन्य विभाव परिणमनके योग्य उपादान अपनेमे विभाव परिणमन करते है, ऐसा परस्पर एक दूसरेका निमित्तपना भी है। एक ही वस्तुमे देखा जाय तो वस्तुकी उत्तर पर्यायोका कारण पूर्व पर्याय सयुक्त वही पदार्थ है उत्तर पर्याय उसी पदार्थमे हुई इसलिए पदार्थको कारणतासे दूर नही किया जा सकता और पूर्व पर्यायके होनेपर उत्तर पर्यायकी योग्यता हुई और उत्तर पर्याय हुई अतएव पूर्व पर्यायको कारणतासे अलग नही किया जा सकता। यो उत्तर पर्यायका कारण पूर्वपर्याय है और उत्तर पर्याय पूर्व पर्यायका कार्यरूप है। इस तरहसे यह वह नही है इस कथनमे कारण और कार्यकी सिद्धि हो जाती है। वह नही, जो नही जो नही वह कारण थी, वह हुई है तब यह हुई। पूर्व पर्याय आये बिना उत्तर पर्याय कहाँसे आयगी ? जिस पदार्थमे जो पर्याय उत्पन्न होनी है वह जिस पर्यायके बाद हो सकती है उस अवस्थाके आये बिना नही हो सकती। जैसे घडा बनना है तो माटीका पिण्ड रूप योग्य अवस्था बने ना, तो वह उत्तर पर्याय कहाँसे आयगी ? यो उत्तर पर्याय कार्य है पूर्व पर्याय कारण है। यह बात तब ही तो समझी गई जब यह ज्ञान हुआ कि यह वह नही। इसमे यह तो है कार्य और वह है कारण, जिसका स्मरण वह शब्दसे किया है उसका व्यय कारण है। यो तदभाव व अतदभाव के माननेपर कार्यकारणकी सिद्धि है। और इसीमे फलकी भी बात है। क्रिया भी सिद्ध होती है, वस्तु पलटी तो हो तो जाना गया कि यह वह नही है याने वस्तु तो वही है पर अवस्था अब वह नही रही जो पहिले थी। तो इसमे पलटनेकी बात भी विदित होती है। उन्ही बातोको भेदबुद्धिसे विचारा जाय तो ये

तीनो तत्त्व जुदे-जुदे स्वरूपको रख रहे हैं। क्रिया नाम जिसका है उसीका है कारण और कार्यसे जिसका बोध होता है उसका ही बोध है। तो क्रिया भी, कारण भी, कार्य भी ये सब अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं क्योंकि पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायका काल जुदा-जुदा है। तो यो अतत्के कहनेसे क्रिया फल कारक सबकी सिद्धि होती है। व्यवहार भी बनता है, साथ ही उसमे ध्रुवत तत्त्वरूप कही गया नही। मूल पदार्थ वही है, जिसकी अवस्थायें पलटी हैं। तो जब द्रव्यदृष्टिसे देखेंगे याने अभेदबुद्धिसे विचारेंगे तो द्रव्य अथवा गुण सब अभिन्न ही प्रतीत होगे। पर्याय वस्तु से जुदा तो नही है अथवा कहो पर्यायका पुञ्ज ही तो वस्तु है। तो जब उस अभिन्न वस्तुको देखते हैं तो क्रिया कारण फल सब जुदे नही प्रतीत होते और उसके विरुद्ध दृष्टिमे प्रतीत भी न होगे। यो वस्तु भेदाभेदात्मक नीतिसे परिज्ञात होता है और यह परिज्ञान तदभाव अतदभावके स्वीकार किये विना हो नही सकता। अत. सत् असत् की तरह, नित्य अनित्यकी तरह, एक अनेककी तरह तत् अतत् भाव भी मानना पडेगा, तब वस्तुका पूर्ण परिचय हो सकेगा।

अयमर्थः सदसद्वत्तदतदपि च विधिनिषेधरूप स्यात्।
न पुनर्निरपेक्षया तदद्वयमपि तत्त्वमुभयतया ॥ ३३२ ॥

सदसद्भावकी तरह तदतद्भावकी विधिनिषेधरूपता—उक्त कथनका साराश यह है कि सत् और असत्के समान तत् और अतत् भी विधि निषेधरूप होता है। और, सत् असत्मे यह व्यवस्था थी कि जब अभेदसे सत् देखा तब भेदसे देखा हुआ असत् है और अभेदसे जब देखा तो भेदसे देखा हुआ असत् है। तो विवक्षित प्रसङ्ग परस्पर विधि निषेधरूप होता है परन्तु ये सब बातें सापेक्ष दृष्टिमें हैं निरपेक्ष दृष्टिसे वे ऐसी नहीं हैं अर्थात् ये दोनो धर्म निरपेक्ष होकर रहे। जैसे कि मीमासक वैशेषिक द्वारा अभिमत सामान्य और निरपेक्ष स्वतन्त्र पदार्थ हैं इस तरहसे सत् असत् या तत् अतत् कुछ भी धर्म सप्रतिपक्ष दोनो निरपेक्षरूपसे रहे तो तत्त्वसिद्धि नही होती। जैसे सत्की विवक्षामे विवक्षित पदार्थ विधिरूप है तब अविवक्षित असत्रूप पडता है, इसी तरह तत् और अतत्की विवक्षासे भी उनमे यह बात नजर आती है। जब तत्को देखते है तो अतत् निषिद्ध हो गया और जब अतत् रूपमे देखते हैं तो तदभाव निषिद्ध हो गया। इतनेपर भी केवल उस दृष्टिमे ही यह विधि निषेध है उस द्रष्टाकी प्रतीतिमे तो दोनोका ही बोध है। प्रमाणसे ग्रहण किये हुए पदार्थमे किसी विशिष्ट धर्मकी दृष्टिमे नयका बोध होता है वहाँ भी यह विशेषता है कि विधिनिषेध की अपेक्षा रखता है। और निषेध विधि की अपेक्षा रखता है। तो सर्वथा स्वतंत्र उनमेसे कोई न रह सकेगा। पदार्थ स्वय सदसदात्मक है, विधि निषेधात्मक है। कोई पदार्थ है तो उसका अस्तित्व तभी तो है जब कि वह अन्य कुछ न हो। कोई

पदार्थ है तो इस है की दृष्टिमे जिस प्रकार निरखा गया है उसी प्रकारसे तो है अन्य प्रकारसे नही है। जब अभेदसे देखा तो अभेद रूप वस्तु है। भेद रूप दृष्टिमे ही नही है, उसकी अपेक्षा असत् है। तो यो पदार्थ सदसदात्मक है, विधि निषेधात्मक है। अत. सप्रतिपक्ष दोनो धर्म निरपेक्ष रूपसे न रहेंगे, सापेक्षरूपसे दोनोका अवगम हो सकेगा।

रूपनिदर्शनमेतत्तदिति यदा केवलं विधिमुख्यः।
अतदिति गुणो पृथक्त्वात्तन्मात्रं निरविशेषतया ॥ ३३३ ॥

तद्भावकी दृष्टिमे तन्मात्रताका दर्शन—उक्त साराशको कुछ विशेष विवरणके साथ कह रहे है, विधि निषेधकी परस्पर सापेक्षतामे यह विशेषता है कि जिस समय केवल विधि मुख्य की गई हो, तद्भाव किया गया हो उस समय अतद्भाव अथवा निषेध कथन गौण हो जाता है क्योंकि विधि निषेध जुदे तत्त्व हैं जब विधि विवक्षा है उसमे केवल विधिरूप ही वस्तु प्रतीत होती है पर जो द्रष्टा पुरुष है उसकी प्रतीतिमे दोनो ही वार्ते हैं, जब कोई पुरुष कमरेकी एक दीवाल देख रहा है, ता जिसे देख रहा है उसीका तो नक्शा है। कैसा रग है, कैसा चित्र है कैसा ढङ्ग है वह सब उसी भीटका ही तो ज्ञान होगा, दूसरेका नही लेकिन उस पुरुषकी यह प्रतीति नही है कि दूसरी भींट, अन्यथा कमरा कैसे टिकता ? तो यो ही उस दृष्ट पुरुषकी प्रतीति मे दोनो ही धर्म उस दृष्टिमे है, अन्य दृष्टिका नही। तो जो भी विवक्षित हो वह हो जाता है मुख्य और अविवक्षित होना है गौण। यो जब तद्भावकी मुख्यताकी हो तो तद्भाव गौण हो जाता है और उस समय पदार्थ केवल तद्भावमात्र ही प्रतीत होता है।

अतदिति विधिर्विवक्ष्यो मुख्यः स्यात् केवलं यदादेशात्।
तदिति स्वतो गुणत्वादविवक्षितमित्यतन्मात्रम् ॥ ३३४ ॥

अतद्भावकी दृष्टिमे अतन्मात्रका दर्शन—जिस प्रकार तद्भावकी दृष्टि मे वस्तु तन्मात्र है और तद्भाव भी मुख्य है तथा अतद्भाव गौण हो जाता है उस ही प्रकार जब अतद्भाव विवक्षित होता है तब उस दृष्टिमे अतद्भाव मुख्य हो जाता है। उस दृष्टिमें तद्भाव अविवक्षित है और गौण है ऐसे अतद्भावकी विवक्षामे पदार्थ अतन्मात्र प्रतीत होता है। वहाँ तन्मात्र नही समझा जा रहा है। विधि निषेध का यही एक निर्दोष है। साराश यह है कि भेद विवक्षामे वस्तु भिन्न भिन्नरूप से प्रतीत होती है। पदार्थमे द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, ये सब प्रतीत होते हैं और भेद विवक्षामे पदार्थ एकरूपसे प्रतीत होता है। द्रष्टाकी दृष्टिमे जैसा आशय है उसके

अनुरूप वस्तुका दर्शन हुआ करता है और प्रमाण विवक्षामें वह उभयात्मक प्रतीत होता है।

शेषविशेषाख्यानं ज्ञातव्यं चोक्तवक्ष्यमाणतया।
सूत्रे पदानुवृत्तिर्ग्राह्या सूत्रान्तरादिति न्यायात् ॥ ३३५ ॥

तदतद्भावके प्रसङ्गमें पूर्वकथित शेष व्याख्यानका मन्तव्य, यह प्रसङ्ग चल रहा है अनेकान्तात्मक वस्तुका परिज्ञान करनेका और अनेकान्त ज्ञानकी सिद्धि का। वस्तु चार युगलोमें गुम्फित है, तो स्यात् सत् असत् है, स्यात् नित्य अनित्य है स्याद् एक अनेक है, स्यात् तत् अतत् है और ये चारों ही युगल द्रव्य, क्षेत्र काल भाव से घटित होते हैं। इस प्रकरणमें वस्तुका वह स्वरूप दिखाया गया है सो जो अभी प्रसङ्ग चल रहा है इसमें जो बात शेष रह गई हो वह पूर्वकथित प्रकरणमें समझ लेना चाहिए क्योंकि उसी सिलसिलेमें यह प्रसङ्ग है, और वस्तु स्वरूपको देखनेकी यही पद्धति है। कभी किन्हीं दार्शनिकोंने कोई एकान्त दर्शन भी पकड़ लिया तो वहाँ भी यही पाया जायगा। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको। जो चार युगलोंकी बात निरखी जाती है उसमेंसे किसी ही एक बातको मुख्य करके अथवा आग्रह करके ही अन्यका निषेध करके रह गए तब एकान्त दर्शन प्रकट हुआ है। सभी दर्शनोंमें चाहे एकान्त हो चाहे अनेकान्त हो बात आयगी तो द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव इन चार युगलोंके सम्बन्ध में। यदि इनमेंसे कोई अंश ही माना तो एकान्त हो जाता है और जहाँ सबकी प्रतीति की हो वहाँ अनेकान्त ज्ञान प्रकट होता है।

ननु किं नित्यमनित्यं किमथोभयमनुभयं च तत्त्वं स्यात्।
व्यस्तं किमथ समस्तं क्रमतः किमथाक्रमादेतत् ॥ ३३६ ॥

जिज्ञासुका प्रथम प्रश्न वस्तु नित्य है या अनित्य?—अब यहाँ वस्तु स्वरूप के विषयमें कुछ प्रश्न किये जा रहे हैं जिनका कि सम्बन्ध स्याद्वादमें है। प्रथम प्रश्न यह है कि वस्तु क्या नित्य है अथवा अनित्य है? पदार्थके सम्बन्धमें अनेक दार्शनिकों की एक एक धारणा रहती है। जिनकी दृष्टिमें वस्तु नित्य समझमें आया उनका वस्तु नित्य ही विदित होता है। जब कभी उनसे प्रश्न किया जाय कि फिर ये दिखने वाले पदार्थ, ये दृश्यमान लोग जो कि विनाशीक नजर आते हैं, फिर ये अनित्य कहाँ रहे? तो उनका उत्तर होता है कि परमार्थ तत्के अतिरिक्त कोई माया है प्रकृति है, किन्हीं शब्दोंसे कहो आखिर दूसरी बात मालूम होती है। वे यों दूसरी बात मानकर तत्त्वकी रक्षा करना चाहते हैं पर स्वयं वस्तुमें ये दोनों रूप हैं, इस सम्बन्धको नहीं परख पाते तो किन्हीं दार्शनिकोंकी दृष्टिमें वस्तु नित्य है तो किन्हीं दार्शनिकोंने इन अवस्थाओं

पर मुख्यतया दृष्टि की है, और इन परिणमनोंसे ही निरखा तो उस ओरसे अनित्य देखा तब उनका एकान्त बन गया कि वस्तु अनित्य ही है। जो देखा वह पहिले न था जो देखा वह आगे भी न रहेगा, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस कारण यह दृष्टि बनी कि वस्तु अनित्य ही है। तो जब दार्शनिकोंकी ये भिन्न भिन्न दृष्टियाँ हैं तो एक समाधान चाहने वाला जिज्ञासु प्रश्न करता है कि वास्तविकता क्या है? क्या वस्तु नित्य है अथवा अनित्य है?

जिज्ञासुका नित्यानित्यत्वके सम्बन्धमे द्वितीय प्रश्न—अब उक्त सशयके समाधानमे कुछ दार्शनिक दोनो बातें बताते हैं कि वस्तु उभयरूप है। उभयरूप बताकर कुछ भी दार्शनिक इस प्रकार स्वतत्र मान बैठे हैं कि कोई वस्तु नित्य होती है और कोई वस्तु अनित्य होती है। एक ही वस्तुमे नित्यत्व और अनित्यत्व धर्म न मान कर यो समझते है कि जैसे चन्द्रसूर्य आदिक पदार्थ नित्य है, ये सदा ज्योके त्यो रहते हैं और यहाँके घर मकान आदिकको निरखकर जो बनता है और गिर जाता है, टूटता है ऐसे पदार्थोंको कह देते हैं कि अनित्य हैं। तो यो स्वतत्ररूपसे कुछ लौकिक जन किन्ही चीजोको नित्य कह देते हैं और किन्ही चीजोंको अनित्य कह देते है, इस तरहसे उभयरूप मानते है। अथवा कोई दार्शनिक एक ही वस्तुको किसी दृष्टिमे नित्य है किसी दृष्टिसे अनित्य है ऐसा जानकर उभयरूप कह देते हैं। कुछ दार्शनिक जब इस चर्चामे चलते है तो उसका अन्त निरीक्षण करते हैं, जहाँ फिर ये दोनो रूप भी समझमे नही आते, अथवा इन दोनो रूपसे किसी एक शब्दमे नही बोल सकते। इस कारण वे वस्तुको अनुभयरूप कह देते हैं। तो नित्यानित्यत्वके सम्बन्धमे समाधान चाहने वाला जिज्ञासु यहाँ यह पूछ रहा है कि पदार्थ नित्यानित्यात्मक है अर्थात उभयरूप है अथवा अनुभय याने नित्य भी नही और अनित्य भी नही, क्या इस तरह दोनों धर्मोंसे रहित है पदार्थ? यो द्वितीय प्रश्नमे पूछा गया है।

जिज्ञासुका तृतीय प्रश्न वस्तु व्यस्तरूप है या समस्तरूप?—अब तृतीय प्रश्नमे यह पूछा जा रहा है कि पदार्थ क्या व्यस्तरूप है या समस्तरूप है? जब कुछ किन्ही दार्शनिकोको समझमे आया कि प्रत्येक पदार्थ अणु अणुमात्र है और उनका सघात भी नही होता, मिलान भी नही होता। जैसे कि क्षणिक एकान्त मानने वाले दार्शनिक अथवा कहो निरशवादी पदार्थको अशमात्र ही सर्वस्व मानते है और उनकी दृष्टिमे केवल एक प्रदेश, केवल एक समय वाला, केवल एक डिग्री वाला ही पदार्थ होता है। उनको मिलाकर अनेक डिग्री वाला सघात बनाना अथवा अनेक प्रदेशोंसे घिरे हुए पिण्ड बनना यह सब एक आरोपन है, उपचारसे है यो निरखना कि दृष्टिसे है। वस्तुत तो एक अशमात्र है ऐसा मानने वाले दार्शनिक पदार्थको व्यस्तरूप मानते हैं। तो कुछ दार्शनिक ऐसे है कि अत्यन्त जुदे-जुदे भी पदार्थ पडे हो जिनके बीच अन्तराल भी पड़ा हुआ हो लेकिन ऐसे भी भिन्न-भिन्न पृथक-पृथक अवस्थित

पदार्थोको एक समस्तरूपमे मानते हैं। तो ऐसी दो धारायें जव चलती रहती हैं तो समाधान चाहने वाला जिज्ञासु यहाँ प्रश्न कर रहा है कि वस्तु व्यस्तरूप है या समस्तरूप है ?

जिज्ञासुका चतुर्थ प्रश्न वस्तु क्रम पूर्वक है या अक्रमपूर्वक— वस्तुका जो कुछ भी दृष्य नजर आ रहा है उन दृष्योमे वही क्रम देखा जा रहा है,–कहीं सव एक साथ देखा जा रहा है। अवस्थायें क्रमसे हुआ करती हैं, शक्तियाँ सव एक साथ रहा करती हैं, अथवा परिणतियोके ही सम्बन्धमे दो प्रकारके ख्याल होते हैं। एक ख्यालमे तो ये परिणतियाँ क्रमपूर्वक जव जो वात होनी है तव वही होती है और इस सिद्धान्तसे उन सव परिणतियोमें क्रम वन गया है। किस परिणतिके बाद कौन सी परिणति होगी ? इस तरह अनन्त काल तककी परिणतियोका क्रम भी पडा हुआ है, तो कुछ दार्शनिकोका अभिमत है कि परिणतियोमे क्रम नही है। जव जिस कारण मिले जिस प्रकारकी शक्ति हो पदार्थमे, परिणमनेमे, उस वातावरणमे उस प्रकार परिणम जाता है यो कुछ सोचना है कि ये सव बातें अक्रम पूर्वक हैं, आदिक अनेक पद्धतियोमे क्रमपूर्वकता और अक्रमपूर्वकता दृष्ट होती है। उस सम्वन्धमे समाधान चाहने वाला जिज्ञासु प्रश्न करता है कि वस्तु क्या क्रम पूर्वक है या अक्रम पूर्वक ? काल क्रम रखता है क्षेत्रक्रम रखता है अथवा किसी प्रकारका क्रम नही रखता है। यो यहाँ चार युगलोका प्रश्न किया जा रहा है। उसमे यह चतुर्थ युगल पूछा गया है कि वस्तु क्रमपूर्वक है अथवा अक्रमपूर्वक है ? इन उक्त चार प्रकारकी जिज्ञासाओका समाधान देनेके लिए अब कहते हैं।

सत्यं स्वपरनिहन्त्यै सर्वं किल सर्वथेति पदपूर्वम् ।
स्वपरोपकृतिनिमित्तं सर्वं स्यात् स्यात्पदाङ्कितं तु पदम् ॥३२७॥

जिज्ञासुके प्रश्नोके समाधानकी कुञ्जी—उक्त शङ्काके समाधानमे कहा जा रहा है कि जो कुछ प्रश्न पूछे गए हैं ऐसी जिज्ञासा करना वास्तवमे जिज्ञासुकी ठीक है, पर उनमें समाधान यह पडा हुआ है कि यदि उनके पहिले सर्वथा पद लगा दिया जाता तव तो वह विरुद्ध पड जाता। अपने का भी विघातक हो गया और दूसरोका भी विघातक हो जाता है। जैसे कह दिया कि सर्वथा नित्य है तो सर्वथा नित्य कहनेपर नित्य भी सिद्ध न होगा और अनित्य भी सिद्ध न होगा। इन सब बातों का विशेष वर्णन दार्शनिक ग्रन्थोमे यथायोग्य कह देनेके प्रकरण आते हैं पर सक्षेपरूप मे यह समझलें कि यदि वस्तु सर्व प्रकारसे अपरिणामी है तो ऐसे कथनमे वस्तु ही सद्रूप न रहेगी। जव सत् ही न रहा तो नित्य क्या ठहरे ? चले तो अनित्यका विघात करने पर हो गया नित्यका ही विघात। तो यो ही ऐसे सप्रतिपक्ष धर्मके

सम्बन्धमे यदि पहिले सर्वथा शब्द लगा दिया जाता है तो वह वाक्य, वह वाक्य स्व और पर दोनोका विनाश करने वाला है, और यदि उस कथनको स्यात् पदसे अंकित कर दिया जाय कि कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, अथवा इस दृष्टिसे नित्य है और इस दृष्टिसे अनित्य है । तो इस कथनमे स्वका भी उपकार है और परका भी उपकार है । जिस धर्मको कहा जा रहा है उस धर्मकी भी वहाँ सिद्धि नही है और द्वितीय धर्मकी भी सिद्धि है । जैसे कहा गया कि वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है तो उनके साथ यह भी सिद्ध होता है कि कोई अन्य दृष्टि भी है जिसमे अनित्य है अर्थात् पर्याय दृष्टिमे अनित्य है, तो यो दोनो ही बाते सिद्ध होती हैं । तो यह प्रश्न स्यात् पदको अङ्कित कर देनेपर स्वयं सुलझ जाता है । साराश यह है कि सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य उभय सर्वथा व्यस्त सर्वथा संक्रम आदिक कुछ भी कहनेपर वह कथन विरुद्ध होता है और स्यात् पद लगाकर कथन करें । अपेक्षा और दृष्टिको कहकर बताया तो वहाँ सब कथन यथार्थ हो जाता है ।

अथ तद्यथा यथा सन् स्वतोऽस्ति सिद्धं तथा च परिणामि ।
इति नित्यमथानित्य सच्चैकं द्विस्वभावतया ॥ ३३८ ॥

वस्तुमे स्वत. सिद्धताकी दृष्टिसे नित्यत्व व परिणामिताकी दृष्टिसे अनित्यत्व—उक्त समाधानका ही विवरण करते हुए इस कथनमे कह रहे हैं कि वस्तु जिस प्रकार स्वत सिद्ध है उसी प्रकार वह परिणमनशील तो है याने पदार्थमे ये दो बातें परखी जा रही है । पदार्थ स्वत सिद्ध होनेपर भी है निरन्तर परिणमनशील अर्थात् उसमे नवीन अवस्थाका उत्पाद हुआ और पूर्व अवस्थाका व्यय हुआ और पदार्थ वहीका वही बना रहे ऐसी प्रकृति प्रत्येक पदार्थमे है । तो जब पदार्थके सम्बन्धमे यह समझा गया कि पदार्थ स्वत. सिद्ध है और परिणमनशील है, तो इस समझमे दो बाते आयी कि वह एक ही सत दो स्वभाव वाला है अर्थात् सतमे स्वत सिद्धता है और परिणमनशीलता है । तो जब स्वत. सिद्धताके रूपमे देखते है तो वहाँ विदित होता है कि वह नित्य है, क्योकि वह स्वत सिद्ध है । किसी परसे नही उत्पन्न हुआ है तो मानो उत्पन्न ही नही हुआ है और जो स्वत सिद्ध है उसके विनाशका भी कोई हेतु नही है । यदि औपाधिक भाव है जिसे परत सिद्ध कह सकते है तो परके निमित्तके न रहनेपर उसका अभाव हो जाता है । तो जो स्वत सिद्ध है वह आदि अन्त रहित है अतएव नित्य है । जब पदार्थोकी परिणमनशीलतापर दृष्टि देते हैं तो चूंकि वह परिणमनशील है, प्रतिसमय नवीन नवीन परिणमनसे परिणमता है तो स्पष्ट ही अनित्य सिद्ध हो जाता है । तो यो अपेक्षा दृष्टिसे वस्तु नित्य है ।

अयमर्थो वस्तु यदा केवलमिह दृश्यते न परिणामः ।
नित्यं तदव्ययादिह सर्वं स्यादन्वयार्थनययोगात् ॥ ३३९ ॥

स्वत सिद्धताकी दृष्टिमे विवक्षितता व अविवक्षितताका प्रभाव— स्यात् पद करके मुद्रित वक्तव्य सही हो जाता है। इस समाधानकी पुष्टिमे ही कहा जा रहा है कि देखिये ! वहाँ हुआ क्या ? कि जब स्वत सिद्धकी दृष्टिसे देखा और जब परिणमन शीलताकी दृष्टिसे देखा तो विदित हुआ क्या ? जिस समय केवल वस्तु दृष्टगत् होती है, स्वत सिद्धताकी दृष्टिमें केवल एक वस्तु दृष्टगत् है तो वहाँ पर्याय दृष्टगत् नही है, जब कि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा हुई। तो यों द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तु नित्य सिद्ध होती है। क्योंकि वस्तु सामान्यका कभी भी नाश नही होता तो वस्तु सामान्य ही परखा जा रहा है द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे तो उत्तर यह हुआ कि द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे वस्तु नित्य है, अर्थात् उसका कभी भी विनाश न होगा और न कभी उसका उत्पाद हुआ था। वह तो अनादि अनन्त है।

अपि च यदा परिणामः परिणामः केवलमिह दृश्यते न किल वस्तु।
अभिनवभावानभिनवभावाभावादनित्यमंशनयात् ॥ ३४० ॥

परिणामिताकी दृष्टिमे विवक्षितता व अविवक्षितताका प्रभाव— जैसे द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे आत्मा दृष्टगत् न हुआ और वस्तु नित्य सिद्ध हुई, उसी प्रकार जब पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि होती है तो उस समय केवल पर्याय दृष्टिमे रहती है। जो शाश्वत् अनादि अनन्त वस्तु है वह दृष्टिमें नही रहता उस समय पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तु अनित्य सिद्ध होती है, क्योकि जहाँ परिणमनशीलता देखी, पर्याय निरखी गई तो यही तो देखा गया कि प्रतिसमय नवीन पर्यायका उत्पाद हुआ और पुरानी पर्यायका विनाश हुआ है। तो इसीका नाम तो अनित्य है। तो पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे केवल पर्याय दृष्टगत् है। शाश्वत वस्तु दृष्टगत् नही है। तब इस अपेक्षासे पदार्थ अनित्य है। यों दृष्टिकी अपेक्षा वस्तु नित्य और अनित्य दोनो रूप विदित होता है।

क्रमार्पितकी अपेक्षा वस्तुकी उभयरूपता जिज्ञासुका दूसरा प्रश्न है कि वस्तु क्या उभयरूप है या अनुभयरूप ? अर्थात् वस्तु नित्य और अनित्य दोनो प्रकार की है या न नित्य है न अनित्य है ? उभयरूपपनेकी शङ्का वैशेषिक मतकी खोज करती है, जैसे वैशेषिक सिद्धान्तमे कोई पदार्थ नित्य ही होता है कोई अनित्य ही तो यों पदार्थ दोनो प्रकारके होते हैं ? क्या इस प्रकारसे वस्तु उभयरूप है अथवा वस्तु अनुभयरूप है ? जैसे कि शून्याद्वैतवादी वस्तुको शून्य मानते हैं, अब वह शून्य न नित्य है न अनित्य क्या इस तरहसे वस्तु अनुभय रूपादिकरूपमे यह प्रश्न घटित होता है ? समाधान इसका यह है कि यदि सर्वथा शब्द लगाकर प्रश्न हो तो लगता है और कथचित स्यात शब्दकी मुद्रामें प्रश्न हो तो यह समीचीन है। वस्तु सर्वथा उभयरूप

है, यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि वस्तु जो नित्य है वह सर्वथा ही नित्य है वस्तु जो अनित्य है वह सर्वथा अनित्य है, ऐसे कथनमे जो नित्य अनित्यके सम्बन्धमे आपत्तियाँ इस उभयपक्षमे भी आती है, क्योंकि यहाँ निरपेक्षरूपसे यह पक्ष मानते हैं। तब घटित यह करना चाहिये कि वस्तु कथञ्चित् उभयरूप है - जिस समय क्रमसे अर्पित नित्य और अनित्यकी विवक्षा होती है वहाँ वस्तु उभयरूप है।

सहार्पित दृष्टिसे वस्तुकी अनुभयरूपता—यदि क्रम अर्पित दृष्टि न होकर एक दृष्टि हो अथवा सह अर्पित दृष्टि हो तो उन दृष्टियोमे वस्तु उभयरूप नही है। साथ ही यह समझना चाहिये कि कोई वस्तु नित्य है कोई अनित्य है ऐसी बात नहीं है, किंतु प्रत्येक वस्तु नित्यानित्यात्मक है, क्योंकि वह स्वतः सिद्ध है और परिणामी है। उस ही वस्तुके सम्बन्धमे स्वतः सिद्धता और परिणामिता एक समयमे है। इस कारण एक ही वस्तुमें उभयात्मकता है और वह है क्रमार्पित द्रव्य और पर्यायकी दृष्टिसे।-इसी प्रकार वस्तु उभयरूप है। इस सम्बन्धमे भी सर्वथा शब्द लगानेपर तो मिथ्या है और स्यात् शब्द लगाकर यह क्रम बनता है, वस्तु स्यात् अनुभयरूप है। जब एक ही साथ द्रव्य और पर्याय दृष्टिमे निरखा जाता है तो वहाँ वस्तु अनुभय है कहनेमें अशक्य है, इस कारण अवक्तव्य माना है। नित्य है, न अनित्य है, जो है वह समझमे आया है।

दृष्टिभेदसे वस्तुकी व्यस्तरूपता व समस्तरूपता—जिज्ञासुका दूसरा प्रश्न है ? क्या वस्तु व्यस्त रूप है या समस्त रूप है ? व्यस्त रूप है इसका भाव यह है जैसे कि वैशेषिक सिद्धान्तमे द्रव्य गुण, कर्म सामान्य विशेष ये सब स्वतत्र तत्व हैं, क्या इस प्रकार वस्तु व्यस्तरूप है अथवा जैसे निरंशवादमे वस्तुको एक एक क्षेत्री एक एक निरंशभावको माना गया है, क्या इस तरह वस्तुस्वरूप है ? दूसरा उसमे ही प्रश्न है—क्या समस्तरूप है ? जैसे कि अद्वैतवादी सबको एक अद्वैत मानते है, क्या इस तरह समस्तरूप है ? समाधान इसका यह है कि सर्वथा शब्द लगाकर इसका हल किया जाय तो मिथ्या है और स्यात् शब्द लगाकर इस समस्याको सुलझाया जाय तो यह सम्यक है। वस्तु है वस्तुरूप है, कथचित् जो उसका चतुष्टय है उससे निहारनेपर प्रत्येक जीव अलग-अलग है, प्रत्येक वस्तु अलग-अलग है। एक मिलकर भी एक पिण्डमे होनेपर भी पदार्थ अलग-अलग ही है। यो कथचित् व्यस्त रूप है अथवा जब उसके समझनेकी दृष्टि की जाती है तो द्रव्यमे और और भी धर्म पाये जाते हैं, उन सब धर्मोंका विचार चलता है। तो जब किसी धर्मका स्वरूप निरखा जारहा है तो उस स्वरूप दृष्टिमे वह वस्तु अलग है। यो एक ही पदार्थमे रहने वाले गुण पर्याय अनेक धर्म अपने अपने स्वरूपसे न्यारे-न्यारे है अर्थात् उनका स्वरूप स्वलक्षण जुदा है, उस दृष्टिमे व्यस्तरूप है लेकिन यह सर्वथा नही लगाया जा सकता क्योकि वस्तु कथंचित् समस्तरूप भी है। द्रव्य, गुण, पर्याय सामान्य, विशेष

ये सब कोई पृथक पृथक क्षेत्रमे स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्ता लिए हुए नहीं हैं, किंतु एक ही पदार्थ हैं सामान्यरूपसे विशेषरूपसे, गुणरूपसे, परिणतिरूपसे निरखा जा रहा है। इस कारण इन सब व्यस्त धर्मोंका पुञ्ज ही वह एक पदार्थ है। यो कथंचित् वस्तु व्यस्तरूप है और कथंचित् वस्तु समस्तरूप है।

दृष्टिभेदसे वस्तुकी क्रमपूर्वकता व अक्रमपूर्वकता—जिज्ञासुका चौथा प्रश्न था कि वस्तु क्रमपूर्वक है या अक्रमपूर्वक है? इससे यह दृष्टि की गई है कि जैसे शब्दाद्वैतवादमे समग्र पर्यायें एक सत्में मौजूद हैं और वे सब अक्रमपूर्वक हैं तो एक ही समयमें सबमें सब मौजूद हैं, अथवा वस्तुमे पर्यायें क्रममें व्यक्त होती हैं उनकी धारा है, उनका क्रम है। यो किस प्रकार वस्तु है? इस सम्बन्धमें वस्तु शब्दसे पर्याय को मुख्यतया लक्षित किया गया है। इसका भी समाधान यह है कि सर्वथा शब्द लगाकर इसकी खोज की जाती है तो यहाँ सर्वथा क्रमपूर्वक अथवा सर्वथा अक्रमपूर्वक ये दोनों सिद्धान्त मिथ्या होते हैं। जब स्याद शब्द लगाकर इसे कहा जाता है तो यह बात सम्यक् हो जाती है। वस्तु किसी दृष्टिमे क्रमपूर्वक है। जो पर्याय जब होनी है वह सब प्रभुके ज्ञानमे विदित है। अथवा यह जो विशिष्ट ज्ञानियो द्वारा विदित है इस कारण वह सब क्रमपूर्वक हैं अथवा पर्यायें जितनी होती हैं उन पर्यायोंरूपसे जब वस्तुका ज्ञान किया जाता है तो वस्तु क्रमपूर्वक है और जब गुणोंकी दृष्टिसे वस्तुका ज्ञान किया जाता है तब वह अक्रमपूर्वक है। गुण दृष्टिमें प्रत्येक वस्तु गुण मात्र है, तो इस प्रकारकी वस्तुवें अर्थात् सभी गुण पदार्थोंमे अक्रमसे एक ही साथ रहते हैं। यों वस्तु शक्ति दृष्टिसे अक्रमपूर्वक है। जिज्ञासुके अनेक प्रश्न हो सकते हैं उनके समाधान विवक्षासे हो जाते हैं। वस्तु नित्यादिक अनेक धर्मात्मक है मगर वह किस प्रकार है उसका यहाँ समर्थन किया गया है। वस्तु सर्वथा किसी एक धर्मरूप नही कहा जा सकता अपेक्षा दृष्टिसे वस्तु सभी प्रकारसे वर्णित किया जा सकता है।

पञ्चाध्यायी प्रवचन

(चतुर्थ भाग)

प्रवक्ता
[अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु. मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज]

ननु चैकं सदिति यथा तथा च परिणाम एव तद् द्वैतम् ।
वक्तुं क्षममन्यतरं क्रमतो हि समं न तदिति कुतः ॥ ३४१ ॥

सत् और परिणामका स्वरूप अन्तर आदि जाननेका प्रश्न—वस्तु स्वत सिद्ध है और परिणामी है पूर्वोक्त इस वर्णनसे वस्तुके स्वरूपमे जो अनेक शंकाये उठ रही थी उन सबका समाधान हो चुका है । अब सत् और परिणामके सम्बन्धमे पूछा जा रहा है कि जिस प्रकार सत् एक चीज है उसी प्रकार परिणाम भी चीज एक है । यथार्थतया प्रत्येक वस्तु एक ही है, अपने चतुष्टयमे है और प्रतिसमयमे जो परिणाम होता है वह परिणाम भी एक समयमे है । तो यो जब परिणाम भी एक चीज है और सत् भी एक चीज है फिर क्या कारण है कि इन दोनोमेसे किसी एकका क्रम से ही कथन किया जा सकता दोनोको एक साथ नही किया जा सकता याने द्रव्य दृष्टिसे तो सत्का वर्णन होता है, शाश्वत वस्तुका वर्णन किया जाता है और पर्याय दृष्टिसे परिणामका वर्णन होता है द्रव्य दृष्टिमे सद्रूप ही दिख रहा, पर्याय दृष्टिमे विशिष्ट सत् परिणामरूप परिवर्तनरूप ही दिख रहा है, तो दोनोका एक साथ कथन क्यो नहीं बनता है ? शंकाकारकी यहा यह भी जिज्ञासा है कि सत् और परिणामके साथ क्या किस प्रकारका सम्बन्ध है ? एक पदार्थमे ये दोनो बातें किस प्रकारसे रहती हैं जिससे कि इन दोनोंका कथन एक साथ नही बन पाता है । यो शंकाकारके आशयमे यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि सत् और परिणाममे भेद क्या है ? मर्म क्या है और उसका वस्तुमे निवास किस प्रकारसे है ?

अथ किं खरवादिवर्णाः सन्ति यथा युगपदेव तुल्यतया ।
वक्ष्यन्ते क्रमतस्ते क्रमवर्तित्वाद् ध्वनेरिति न्यायात् ॥ ३४२ ॥

युगपत तुल्यरूपसे विद्यमान क ख आदि वर्णोंकी ध्वनिकी क्रमवर्तित्व

की तरह सत् और परिणामकी व्यक्ति माननेका प्रश्न—शङ्काकार पूछ रहा है कि सत् और परिणामके विषयमें क्या इस प्रकारकी बात है कि जैसे क ख आदिक वर्ण एक साथ समानरूपसे विद्यमान रहते है पर इनमे क्रमवर्तीपना पाया जाता है क्योकि वे सब वर्ण क्रमसे ही बोले जा सकते हैं, क्या इसी भांति सत और परिणाम एक साथ विद्यमान तो रहते हो पर उनका कथन क्रमसे कहा जाता हो क्या सत् और परिणामकी बात इस तरह है ? यहाँ शङ्काकारने यह तो मान लिया इस समय कि पदार्थमें सत् और परिणाम एक साथ रह रहे है जैसे कि वस्तुमे या ज्ञानमे क ख आदिक सभी वर्ण एक साथ रहते हैं लेकिन जैसे वर्णोंका उच्चारण क्रमसे हो पाता है इसी प्रकारसे सत् और परिणामका कथन क्रमसे हो पाता है। क्या इस तरहकी बात है जो सत् और परिणाम दानोका कथन एक साथ नही बन पाता ? जिस कारण से कि अलग अलग दृष्टियोमें अलग अलग धर्म निरखा जा रहा है। जैसे द्रव्यदृष्टिमे वस्तुको नित्य देखा तो नित्यपना देखनेमे तभी आया जब अनित्यपना तो न आया। जब पर्यायदृष्टिसे वस्तुमें अनित्यपना देखा तो अनित्यपना देखनेमे आया, पर नित्यपना नही आया। न आया कथनमे अथवा जिस दृष्टिसे देख रहे हैं वह समझमे भी न आये फिर भी नित्य और अनित्य दोनों उस वस्तुमे रहते हैं। तो क्या इस प्रकारसे सत् और परिणामके विषयकी बात है कि दोनो रहे तो आये सदा एक साथ, किन्तु उनका कथन क्रमसे हो पाता हो। क्या इस तरह सम्बन्ध सत् और परिणाममे है ? अब इस प्रश्नका समाधान करते हैं।

अथ किं खरतरदृष्टया विन्ध्यहिमाचलयुगं यथास्ति तथा।
भवतु विवक्ष्यो मुख्यो विवक्तुरिच्छावशाद् गुणोऽन्यतरः ।२४३।

विन्ध्याचल व हिमाचलकी तरह सत् और परिणामको विवक्षावश मुख्य और गौण करनेका प्रश्न—अब शङ्काकार कहता है कि सत् और परिणामके सम्बन्धमे क्या यह बात है कि जिस प्रकार देखनेमे विन्ध्याचल और हिमालय ये दो स्वतंत्र पर्वत हैं परन्तु दोनो उन वक्ताकी इच्छासे जो विवक्षित होता है वह मुख्य हो जाता है और दूसरा गौण है। हैं दोनो पर्वत, एक साथ हैं, जानकारी है, परन्तु जैसे पर्वतकी प्रशसा कोई वक्ता कर रहा हो तो उसकी विवक्षामे वही पर्वत है, जिसकी प्रशसा की जा रही और दूसरा पर्वत गौण हो जाता है, क्या इस प्रकार सत् और परिणामकी बात स्वतन्त्रतया हो तो दोनोपर उन दोनोमे जो विवक्षित हो वह मुख्य हो जाय तो, दूसरा गौण हो जाय, क्या इस प्रकारकी बात सत् और परिणामके सम्बन्धमे है ? शङ्काकारके आशयसे सत् और परिणाम दोनो स्वतन्त्र तत्त्व हैं और वे दोनो एक पदार्थमें रहा करते हैं, पर जिस समय सत्को देखा जा रहा है उस समय सत् मुख्य है और पर्याय गौण है और जब पर्यायको देखा जा रहा है तो, पर्याय मुख्य

है और सत् गौण है, क्या इस प्रकारसे सत् और परिणामके सम्बन्धमे ऐसा धर्म है ? क्या इस तरहसे सत् और परिणाम रह रहे हैं। इस प्रकार शङ्काकारने सत् और परिणामके सम्बन्धमे यह दूसरा प्रश्न है, जो इतना बडा विन्ध्याचल और हिमालय पर्वतके उदाहरणसे पूछा गया है। शङ्काकारके आशयमे पदार्थमे दोनो ही तत्त्व है। उनसे इन्कार नही कर रहा है। केवल एक कथनमे नही आ पा रहे है अर्थात् उसे जो अनुभय नामके अवक्तव्य नामके तृतीय स्वतन्त्र भङ्ग द्वारा जो बताया गया है उसके बारेमे सदेह कर रहा है कि क्यो अवक्तव्य है ? क्या विवक्षित मुख्य होता है और अविवक्षित गौण होता है ? क्या इस पद्धतिमे उन दोनोमे अन्तर बताया जा रहा है ? ऐसा यह दूसरा प्रश्न किया गया ?

अथ चैकः कोऽपि यथा सिंह साधुर्विवक्षितो द्वेधा ।
सत्परिणामोऽपि तथा भवति विशेषणविशेष्यवत् किमिति ३४४

सिंह और साधुकी तरह सत् और परिणामको विशेष्य माननेका प्रश्न जिज्ञासु यहाँ पूछ रहे है कि क्या सत् और परिणामके सम्बन्धमे यह बात है जैसे कि कोई एक व्यक्ति कोई सिंह और कभी साधु दो तरहसे विवक्षित होते है क्या इस प्रकार एक वस्तु कभी सत् और कभी परिणाम रूपसे विवक्षित हो क्या इस प्रकार की दो दिशायें हैं अर्थात् वस्तुका सत् और परिणामके साथ इस तरहका क्या विशेषण विशेष्य सम्बन्ध है ? जैसे कोई साधु पुरुष है उसकी जब प्रशसा की जाती है तो वह विक्रममे पराक्रममे, निर्भयतामे सिंह है ऐसा उसके सम्बन्धमे कहते हैं अथवा उसकी सिंह वृत्ति है। तो यो साधुको कभी सिंह शब्दमे कहते हैं कभी साधु शब्दसे भी कहते हैं, तो यहाँ साधु विशेष्य है और सिंह विशेषण। क्या इस प्रकार सत् और परिणाममे एक कोई भी विशेष्य हो दूसरा विशेषण हो, और कभी सत् शब्दसे कहा जाता हो कभी परिणाम शब्दसे कह दिया जाता हो, क्या इस प्रकार सत् और परिणामके साथ वस्तुका सम्बन्ध है ? यह तीसरी जिज्ञासामे जाननेकी इच्छा प्रकट की जा रही है। सत् और परिणाम इन दोनोका मानना अनिवार्य बनाया गया है और स्वत सिद्ध है इस कारणसे वह सत् नित्य है और परिणाम है वह अनित्य है। तो यो नित्य और अनित्यके सकेत रूप सत् और परिणामका उस पदार्थमे सम्बन्ध क्या है और क्यो इन दो शब्दोसे कहा जाता है और क्यो एक साथ इन दो शब्दोका वक्तव्य नही बनता है? इस प्रकार यह तृतीय जिज्ञासा की गई है।

अथ किमनेकार्थत्वादेक भावद्वयाङ्कितं किञ्चित् ।
अग्निर्वैश्वानर इव सव्येतरगोविषाणवत् किमथ ।। ३४५ ।।

अग्नि और वैश्वानरकी तरह एक ही वस्तुको सत् और परिणाम इन दो नामोंसे कहे जानेकी चतुर्थ जिज्ञासा—अब जिज्ञासु चतुर्थ जिज्ञासा प्रकट कर रहा है कि क्या सत् और परिणामके साथ इस तरहका सम्बन्ध है जैसे कि एक ही पदार्थ नाना प्रयोजन होनेसे अग्नि और वैश्वानर इन दो नामोंसे अङ्कित होता है। लौकिक कार्योंमें, सामान्य व्यवहारमे उसे अग्नि नामसे कहते हैं और जब कभी धार्मिक यज्ञ आदिक समारोह हो अथवा पूजन विधानोंमें उन्हें वैश्वानर नामसे कहते हैं। तो प्रयोजनभेदसे जैसे वह एक ही पदार्थ कभी अग्नि नामसे अङ्कित होता है कभी वैश्वानर नामसे कहा जाता है, इस प्रकार सत् और परिणाम भी नाना प्रयोजन होनेसे एक ही वस्तुके नाम हैं क्या ? पदार्थ तो एक ही है, किंतु जब तक शाश्वत देखनेका प्रयोजन है, पदार्थ अनादि अनन्त है, ऐसा बतानेका जब प्रयोजन है तब वह सत शब्द से कहा जाता है और जब परिणतियोंके बतानेका प्रयोजन है कि पदार्थमें प्रतिसमय जुदी-जुदी परिणतियाँ होती हैं तो पर्यायोंको बतानेका प्रयोजन होनेपर उसे परिणाम शब्दसे कहा जायगा, क्या इस तरह प्रयोजनभेदसे एक ही पदार्थको दो नामोंसे कहा जानेकी बात है ? यह चतुर्थ जिज्ञासा सत और परिणामके संबंधमें की गई है।

दायें बायें सींगकी तरह सत् और परिणामको प्रधानरूप माननेकी पञ्चम जिज्ञासा अब जिज्ञासु ५वी जिज्ञासामें पूछ रहा है कि सत और परिणामका क्या इस तरहसे दर्जा है जैसे कि दायें और बायें सींग होते हैं ? जैसे किसी गाय या बछड़ेके दो सींग प्रधानरूपसे समानरूपसे बने हुए हैं। उनमे किसी सींगको मुख्य कह दिया जाय, किसीको गौण कह दिया जाय, यह बात तो नहीं है। दोनों समान हैं दोनोंका आरम्भ भी एक समयसे है और दोनोंकी व्यक्त अवस्था भी समान रूपसे है और एकका दूसरे पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं है। स्वतत्र-स्वतत्र दोनों हैं मगर उन दोनो सींगोका आधार कोई एक पशु है। तो जैसे दायें बाये सींग होते हैं क्या इस प्रकार पदार्थमें सत और परिणाम ये दो बातें हैं ? स्वतत्ररूपसे सत का भी वही दर्जा, परिणामका भी वही दर्जा और होता है वह एक पदार्थमें। क्या इस तरह एक पशुके दायें बायें सींगकी तरह सत और परिणाम होता है ? यह ५ वीं जिज्ञासामें प्रश्न किया गया है।

अथ किं कालविशेषादेकः पूर्वं ततोऽपरः पश्चात् ।
आमानामविशिष्टं पृथिवीत्वं तद्यथा तथा किमिति ॥ ३४६ ॥

कच्चे पक्के मृद्घटकी तरह सत् और परिणामको पूर्व अपर माननेकी जिज्ञासा- अब कोई छठवाँ जिज्ञासु सत् और परिणामके स्वरूपका दिग्दर्शन करने वाला पूछ रहा है कि कालभेदसे सत् और परिणाम क्या कोई पहिले हुए कोई पीछे

हुए, ऐसी उसमे बात है ? जैसे कि जब घडा बनता है तो उसमे पहिले कच्ची पर्याय रहती है और घडा पकनेपर पक्की पर्याय आगे होती है, याने कच्ची मिट्टी पहिले होती है और पक्की उसके मिट्टी उसके अनन्तर समयमे होती है। इस प्रकारसे पदार्थने जो सत् और परिणाम बताये गए हैं क्या उनमे ऐसे विभाग हैं कि मानो सत् पहिले होता हो और परिणाम बादमे होता हो ? सामान्यजनोकी एक सहसा दृष्टिमे आ सकता है ऐसा कि सत् पहिले है, पर्याय उसके बाद है। जब कोई चीज हो तब उसपर पर्यायें डाले ऐसा एक मोटा दृष्टान्त रखकर कोई सोच सकता है कि सत् पहिले होता है और पश्चात् फिर उसका परिणाम उत्पन्न होता है। क्या इस भांति सत् और परिणामकी स्थिति है ? ऐसी यह एक छठी जिज्ञासामें पूछा गया है। इस जिज्ञासामे कालभेदकी दृष्टि रखी है और अपादान अपादेयकी दृष्टि रखी है। सत्मे परिणाम निकला, परिणाममेसे सत् नही निकला, ऐसी भी तो लोगोकी दृष्टि बन सकती है। तो जैसे वृक्षसे फल निकला तब वृक्ष ध्रुव रहा, वृक्ष पहिले रहा, फल अध्रुव रहा, और फल अनन्तर समयमे हुआ। तो यों ही कच्ची मिट्टीसे पक्की मिट्टी बनी या पक्के घडासे कच्चा घड बना ? तो इसमे कच्चे घडेकी स्थिति पहिले है पक्के घडेकी स्थिति बादमे है। तो क्या इस ही प्रकारसे सत् और परिणामकी स्थिति है कि सत् पहिले हो और उसके अनन्तर समयमे परिणाम होता हो ? यह छठवी जिज्ञासा है।

अथ किं कालक्रमतोऽप्युत्पन्नं वर्तमानमिव चास्ति ।
भवति सपत्नीद्वयमिह यथा मिथः प्रत्यनीकतया ॥ ३४७ ॥

कालक्रमसे उत्पन्न व परस्पर विरोधरूपसे वर्तमान सपत्नी द्वयकी तरह सत् व परिणाम की परिस्थिति माननेकी सप्तमी जिज्ञासा—अब ७ वी जिज्ञासामे यह बात कही जा रही है कि सत् और परिणामके सम्बन्धमे कि जैसे आगे और पीछे बरिणी हुई स्त्री, जिसे सौत कहते है जैसे वे दो सौत वर्तमान कालमे परस्पर विरुद्ध भावमे रहती हैं अर्थात जिन सवतियोमे मेल नही होता है, एक दूसरेके खिलाफ परिणाम रखा करती हैं, परिणाम कर सकने वाली नही है, किन्तु विरुद्ध और एक दूसरे की अवनति चाहने वाली हैं तात्पर्य यह है कि उन दोनोका चित्त परस्पर विरुद्ध रहता है, मेल नही खाता है क्या इस प्रकार सत और परिणाममे परस्पर विरुद्धता है ? कालक्रमसे उत्पन्न तो हुआ हो, मान लीजिए कि सत पहिले होता है और परिणाम उसके बाद होता है। जैसे सवतियाँ एक साथ बरिणी हुई तो नही होती, कोई पहिले बरिणी है कोई अनेक वर्ष बाद बरिणी हुई है, तो इसी प्रकार सत और परिणाम इनमें कालक्रम हो, सत पहिले उत्पन्न हुआ पो परिणाम बादमे उत्पन्न हुआ हो यह किसी प्रकार भी उत्पन्न हुआ हो ये दोनो वर्तमान कालमे

परस्पर विरुद्ध भावने रहते हैं क्या ? देखनेमें तो ऐसा लगता है कि सतकी जब दृष्टि की जाती है तो वह नित्य लगता है, शाश्वत है, सदाकाल है, और जब परिणामकी बात कहते हैं तो उसमें समझ बनती है कि अनित्य है क्षणिक है मिट जाने वाला है, तो भाव भी एक दूसरेसे विरुद्ध मानने पड रहे हैं, सत कहनेसे तो नित्यताका भान होता है, परिणाम कहनेसे क्षणिकताका भान होता है। तो लग भी यों रहा है कि ये दोनो परस्पर विरुद्ध भाव वाले है। इसी माध्यमसे यह ७ वां जिज्ञासु पूछ रहा है कि क्या दो सवतियोंकी तरह सत और परिणाम ये दोनो परस्पर विरुद्ध भाव वाले हैं ?

अथ किं ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातृद्वयमिव मिथः सपक्षतया ।
किमथोपसुन्दसुन्दमल्लन्यायात्किलेतरेतरस्मात् ॥ ३४८ ॥

अविरोधरूपसे रहनेवाले बडे छोटे भाईकी तरह सत् और परिणाम की परस्पर सपक्षता माननेकी आठवी जिज्ञासा– अब यहाँ आठवां जिज्ञासु सत और परिणामके सम्बन्धमे पूछ रहा है कि क्या सत और परिणाम ये दोनो एक साथ अविरुद्ध भावमे रह सकते हैं ? जैसे कि बडा और छोटा भाई ये दोनो परस्पर अविरुद्ध भावसे मेलसे प्रेमसे रह सकते हैं क्या इस प्रकार सत और परिणाम एक ही जगह वर्तमान कालमे मेलसे रह सकते हैं ? अविरुद्ध रूपसे रहते हैं इस जिज्ञासामें यह बात दृष्टिमे रखी गई है कि दीख तो रहा है कि एक ही पदार्थमें नित्यपना और अनित्यपना अविरुद्ध रूपसे रहते है, वही पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य है। तो यों नित्यपना और अनित्यपना दोनो ही अविरुद्ध भावसे रह रहे हैं, बस इस ही एक स्थूल दर्शनको निरखकर यह जिज्ञासा बनी है कि सत और परिणाम बडा और छोटा भाईकी तरह क्या परस्पर अविरुद्ध भावमे रहते हैं ? पौराणिक कथाओमे दो भाइयोंके प्रेमकी बात बहुत जगह वर्णित है। श्रीराम और लक्ष्मण अपने जीवनमे कैसा परस्पर प्रेमभावमे रहे कि किसी भी क्षण एक दूसरेके प्रति विरुद्ध न हो सके। और वर्तमानमे भी अनेक लोग ऐसे देखे जाते हैं जो परस्पर अविरुद्ध भावसे रहते हैं। सत और परिणाम भी एक पदार्थमे रहते हैं तो उनका भी अविरुद्धपना सा दिखता है। यों सत और परिणामके सम्बन्धमे अविरुद्ध भावसे रहने की जिज्ञासा बन गई है।

दो मल्लोकी तरह सत् और परिणाममे परस्पर आश्रितता माननेकी नवमी जिज्ञासा—अथवा ९ वां जिज्ञासु यह पूछता है कि सत और परिणाम क्या दो मल्लोकी भांति परस्परमे आश्रित हैं ? जैसे मानो कोई दो - मल्ल, जिनका नाम सुन्द और उपसुन्द लिया जाता हो-तो ये दो मल्ल परस्परमे आश्रित हैं। एक मल्ल

दूसरेसे अपेक्षा न रखे तो वे मल्ल अपना क्या कर्तव्य दिखायेंगे ? बडे बडे मल्लोके द्वन्द्व देखनेके समारोहमे लोगोकी यही तो जिज्ञासा होती है। देखें कैसा मल्ल है और कैसे अपनी कुश्ती दिखाता है। तो एक मल्ल दूसरे मल्लका आश्रय लेकर जब कुछ क्रियायें करे तभी तो वह अपना कुछ कर्तव्य दिखा सकता है। कोई बडासे बडा भी मल्ल हो यदि वह दूसरे छोटे मल्लको अपने साथमे नही रखता है तो उस मल्लका गुजारा चल नही सकता। जहाँ कही मल्ल युद्धकी प्रदर्शनियोमे ये लोग हजारो रुपया कमाते है तो क्या एक ही मल्ल रहकर कोई समारोह बना सकेगा ? या अपने गुजारे के लिए कुछ धनार्जन कर सकेगा ? तो यह बात निश्चित है कि दो मल्ल परस्परके आश्रित ही अपना निर्वाह कर पाते हैं। तो जैसे दो मल्लोका निर्वाह परस्परके आश्रित है क्या इसी भाँति सत और परिणाम भी एक दूसरेके आश्रित हैं ? लगता भी ऐसा है स्थूल दृष्टिमे कि यदि कोई सत रहने वाला पदार्थ नही है तो वहाँ परिणाम पर्यायो की बात क्या बताई जाय ? और साथ ही यह भी दिखता है कि यदि परिणाम और पर्यायें कुछ भी नही होती हैं तो वहा किस वस्तुको बताया जाय कि यह सदा रहने वाली वस्तु है ? तो मल्लोकी भाँति सत और परिणाममे भी यह बात नजर नही आती है कि ये दोनो परस्पर एक दूसरेके आश्रित हैं। सो इस ६ वी जिज्ञासामे यह पूछा गया है कि सत और परिणाम दो मल्लोकी तरह परस्पर सापेक्ष है, क्या ऐसी बात यहाँ विदित होती है ?

केवलमुपचारादिह भवति परत्वापरत्ववत्किमथ।
पूर्वापरदिग्द्वैतं यथा तथा द्वैतमिदमपेक्षतया ॥ ३४६ ॥

परत्व अपरत्व अथवा पूर्वापर दिशाकी तरह सत् और परिणामके कथनमे उपचार व अपेक्षा माननेकी दसवी जिज्ञासा—सत और परिणामके विषयमे १० वाँ जिज्ञासु पूछ रहा है कि क्या सत और परिणाम इस प्रकारका जो द्वैत कहा जा रहा है सो अपेक्षारूपसे कहा जा रहा है जैसे कि परत्व और अपरत्व यह बडा है यह छोटा है, यह जेठ है यह लहुरा है। जैसे यह अपेक्षासे कहा जाता है या विचारसे ? क्या इस प्रकार सत् और परिणाममे एक दूसरेकी या किसी बातकी अपेक्षा है क्या ? जैसे कि पूर्व दिशा और पश्चिम दिशा ये दोनो अपेक्षा मात्रसे कह जाते हैं क्या ? तो सत् और परिणाम ये दोनो भी अपेक्षासे है अथवा जैसे सूर्य जिस ओरसे उगता है उसका नाम पूर्व दिशा रख दिया और पूर्वका जो प्रतिपक्षी है उसका नाम पश्चिम दिशा रख दिया। तो जैसे ये पूर्व और अपर दिशा अपेक्षासे हैं या जेठा लहुरा, छोटा बडा, दूर निकट ये अपेक्षासे हैं क्या उसी प्रकार अपेक्षासे ही सत और असत् और आत्माकी सिद्धि है। जब कभी कोई कहता है कि यह मदिर पास है यह मदिर दूर है तो पास और दूर अपेक्षासे ही तो हैं जैसे जाने वाला मुसाफिर रास्तेमे

किसी मुसाफिरसे पूछता है कि अमुक गाँव कितनी दूर है ? तब वह उत्तर देता है कि बिल्कुल पास है। अब केवल पासका क्या अर्थ है ? दो मील हो तब भी कहा जा सकता कि बिल्कुल पास है, दो फर्लांग हो तब भी कहा जा सकता कि बिल्कुल पास है। सुनने वाला हैरान हो जाता है। पासका क्या मतलब ? तो बिल्कुल पास है यह उस मुसाफिरकी दृष्टिकी बात है। उसने किसी दूर वाली चीजको दृष्टिमें रखा है। उसकी अपेक्षासे तो पास ही है अथवा जितनी लम्बाईको वह कुछ दूर समझता है अपेक्षासे बोल रहा है कि यह ग्राम बिल्कुल पास है। तो निकट होना, दूर होना बड़ा होना छोटा होना यह सब अपेक्षासे है, उपचारसे है। पूर्व पश्चिम आदिक दिशाओंका विभाग बनाना यह अपेक्षासे है। स्वयं दिशाओंमें क्या पड़ा हुआ है ? भले ही कोई दार्शनिक लोग दिशा नामका भी पदार्थ मानते हैं, पर दिशा क्या पदार्थ है ? आकाश प्रदेश पंक्तियाँ हैं और उनमें अपेक्षा लगा दी गई है तो जैसे विचारसे और अपेक्षामें परत्व अपरत्व पूर्व पश्चिम आदिक व्यवहार चलते हैं क्या सत और परिणाम इन दोनोंका कथन अपेक्षासे चलता है।

किमथाधाराधेयन्यायादिह कारकादिद्वैतमिव ।
स यथा घटे जलं स्यान्नस्यादिह जले घटः कश्चित् ॥ ३५० ॥

घट व जलकी भाँति सत् व परिणाममें आधाराधेय भाव माननेकी एकादशी जिज्ञासा—अब ११ वाँ जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा रख रहा है कि सत और परिणाममें क्या आधार आधेय न्यायसे कारक आदिक द्वैत इसमें घटित हो जायें क्या इस प्रकारसे सत और परिणाम हैं। जैसे कि कहा जाता है—घटमें जल है, आधार हुआ घट आधेय हुआ जल। तो जैसे घटमें जल है यों आधार आधेय भावको व्यक्त करता है, क्या इसी प्रकार सत्में परिणाम है ? यों असत् आधार हुआ और परिणाम आधेय हुआ, क्या इस तरह इसमें आधार आधेय भावकी अपेक्षासे द्वैतपना है ? जैसे यहाँ कोई यह कहे कि जलमें घट है। हाँ, ऐसी घटना हो कोई घट फेंक दिया तो कहेंगे कि जलमें घट है। वह घटना दूसरी हो गई। अब प्रकृत दृष्टान्तमें जलमें घट है ऐसा कोई नहीं कहता। इसी प्रकार परिणाममें सत है, यह भी कोई नहीं कहता। इससे भी कुछ प्रतीत तो होना चाहिए कि सत और परिणाममें आधार आधेय भाव है और लगता सा भी ऐसा है कि सत् तो है शाश्वत, जड है वस्तु और उसमें होता है परिणमन। तो इस स्थूल धारणाके अनुसार क्या सत् और परिणाममें आधार आधेय भाव है, इस प्रकारसे द्वैतपना घटित होता है क्या ?

अथ किं बीजांकुरवत्कारणकार्यद्वयं यथास्ति तथा ।
स यथा योनीभूतं तत्रैकं योनिजं तदन्यतरम् ॥ ३५१ ॥

बीज व अकुरकी तरह सत् और परिणाममें कारण कार्यपना माननेकी द्वादशी जिज्ञासा— अब १२ वां जिज्ञासु यहाँ पूछ रहा है कि सत् और परिणाममें क्या इस प्रकारका अन्तर है जैसे कि बीज और अकुरमे कारणकार्यपना पाया जाता। अकुर तो है कार्यरूप और बीज है कारणरूप। बीज तो यहाँ योगीभूत है, और अकुर योनिज है, क्या इस प्रकार सत् और परिणाम है कि सत् तो है कारण योनिभूत, उसमेसे उत्पन्न हुआ परिणाम। तो परिणाम हो गया कार्य अथवा योनिज। यो बीज अंकुरकी तरह सत् और परिणाममे एक तो कारण हुआ, और एक कार्य हुआ। क्या इस प्रकारसे सत् और परिणामका स्वरूप समझा जाता है? उक्त जिज्ञासामे तो आधार आधेयकी बात कही गई थी। सत्मे परिणाम है, समुत्पादकी बात न थी। जैसे घटमे जल है तो जल उत्पन्न होता है यह बात नही है। केवल एक अस्तित्व बताया है कि घटमे जल है। घट भी अस्तित्वरूप है, जलका अस्ति रूप है और दो पदार्थ हैं पर घट आधार है, जल आधेय है। केवल वहाँ आधार आधेय भावरूपसे अस्तित्व बताया था किंतु उस जिज्ञासामे सत और परिणाममे कारण कार्य भावकी प्रच्छना हो रही है। क्या सत कारण है और परिणाम कार्य है? जैसे कि स्थूलरूपसे साधारण जनोको विदित होता है कि सतसे परिणाम बना, क्या यो सत और परिणाममे कारणकार्य भावका अन्तर है, स्वरूप है क्या?

अथ किं कनकोपलवत् किञ्चित्स्वं किञ्चिदस्वमेव यतः।
ग्राह्यं स्वं सारतया तदितरमस्वं तु हेयमसारतया ॥ ३५२ ॥

स्वर्ण पाषाणकी तरह सत् और परिणाममे कुछको ग्राह्य सारभूत मानने व अन्यको हेय पर असारभूत माननेकी त्रयोदशी जिज्ञासा - अब यहाँ १३ वां जिज्ञासु यह जिज्ञासा रख रहा है कि सत और परिणाम स्वर्ण पाषाण की तरह जैसे कि स्वर्णमे किट्ट कालिमा आदिक हैं तो वहाँ कुछ चीज तो स्वरूप है कुछ चीज अस्वरूप है, पररूप है। क्या इस तरह सत और परिणाममे कोई एक स्वरूप हो और दूसरा अस्वरूप हो, क्या इस तरहका भेद है? स्वर्ण पाषाणमें अभी किट्ट कालिमा मिली हुई है। जब योग्य उपायसे उसे आँचमे तपाया जाता है तो वह दूर होता है, पाषाण शुद्ध होता है, स्वर्ण विशुद्ध निकल आता है। तो उस डलेमे कुछ चीज तो थी पररूप, जो कि हेय माना गया और जिसको निकालकर फेंक दिया गया और कुछ है स्वरूप, जो ग्रहण किया गया जिसका मूल्य महत्त्व समझा गया। क्या इस भाँति सत और परिणाममे कुछ तो हुआ ग्राह्य स्वसार रूप और बाकी हुआ हेय असार रूप? जिसे यो कह सकते हैं प्राय कि सत और परिणाममे सत, तो ग्राह्य है, स्वरूप है, सारभूत है और परिणाम पर्याय परिणमन अवस्था ये अस्व है, पररूप है, अग्राह्य है, हेय हैं और असार है, क्या इस प्रकार सत् और परिणाममे परस्पर

भेद है ? प्राय. करके कुछ जिज्ञासु साधक इस प्रकारके रुचिया होते हैं कि वे पर्याय मात्रको दृष्टिमें न लेना चाहिए । वे शाश्वत नित्य सत्त्व सहज भावको उपयोगमें लेना चाहते हैं । तो वहाँ भी सिद्ध किया गया जैसे कि परिणाम तो हेय है असार है, उपेक्षाके योग्य है, उसकी ओर दृष्टि भी न करें और सत् शाश्वत नित्यस्वरूप है उसकी ओर दृष्टि करें, उसका आलम्बन ले ध्यानमें उसीको विषय बनायें, ऐसा कुछ लोगोका ध्यान होता है । क्या इस भाँति सत् और परिणाममे सत् और ग्राह्य अश हुआ सारभूत हुआ और परिणाम असार हुआ, क्या इस प्रकारसे है ?

अथ किं वागर्थद्वयमिव सम्पृक्त सदर्थसिध्यै ।
पानकवत्तन्नियमादर्थाभिव्यञ्जक द्वैतात् ॥३५३॥

वचन व अर्थ की तरह सत् और परिणाम दोनोको मिलकर अर्थाभिव्यञ्जक माननेकी चतुर्दशी जिज्ञासा—अब यहाँ १४ वाँ जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा रख रहा है कि सत् और परिणाम क्या ये दोनो मिलकर अर्थकी सिद्धि कर पाते हैं ? जैसे अर्थ और वचन हुए वाक्य, शब्दरूप और अर्थ हुए वे पदार्थ ,जिनको वचन द्वारा वाच्य किया गया हो । तो व्यवहारमें देखते हैं कि वचन और वाच्य पदार्थ ये दोनो मिलकर एक पदार्थके अभिव्यञ्जक होते हैं, व्यवहारके प्रवर्तक होते हैं । जैसे मानो केवल वचन वचन ही तो होते दुनियामे, वाच्यभूत अर्थ नही होता, तो वहाँ क्या सिद्धि थी ? उस वचनका होना भी किसलिए था ? अर्थ न माने, केवल वचन हो तो उससे क्या सिद्धि है ? और मान लो अर्थ ही अर्थ हैं सभी पदार्थ, पर वचन न हो तो सिद्ध क्या हो ? अब उस अर्थ शब्दमें लें । तो वचन और अर्थ ये दोनो मिल कर और इस प्रकार मिलकर जैसे कि कई औषधियोंका मिलकर एक रस करके शर्बत बन गया हो इस तरहसे मिल गया, घुल गया वचन और अर्थ जैसा व्यवहार बनाते हैं पदार्थमे सिद्धि करते हैं क्या इस प्रकार सत और परिणाम ये दोनों मिल कर पदार्थकी सिद्धि करते हैं । पदार्थकी सिद्धि केवल सत कहकर नही प्रतीत होती है । सत् इतना कहने मात्रसे कोई कुछ नही समझ सकता । और परिणाम इतने मात्र से भी कुछ नही जाना जाता । तो सत् और परिणाम दोनो मिलकर पदार्थकी सूचना करते हैं । क्या इस प्रकार सत और परिणाममे सम्बन्ध है ?

अथ किमवश्यतया तद्वक्तव्य स्यादनन्यथासिद्धेः ।
भेरीदण्डवदुभयोः सयोगादिव विवक्षितः सिद्धयेत् ॥ ३५४ ॥

भेरी और दण्डकी तरह सत् और परिणामको मिलकर अर्थ साधक माननेकी पन्द्रहवी जिज्ञासा—अब यहाँ १५ वाँ जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा रख रहा

है कि क्या सत् और परिणाम इन दोनोके बिना अर्थसिद्धि नही होती ? इस कारण सत् और परिणाम दोनोका कथन करना आवश्यक समझा गया क्या ? जब सत् और परिणाम हो तो अर्थसिद्धि हो सकेगी। केवल सत् जुदा पडा रहे, परिणाम कही जुदा पडा रहे तो उसके मेल बिना भी अर्थ सिद्धि नही। जैसे भेरी और दण्ड, इनका जब सयोग होना है तब प्रयोजन सिद्ध होता है। किसी मन्दिरके पौरमे भेरी रखी है, दण्ड नही है तो उस केवल भेरीसे क्या प्रयोजन रहा ? क्यो रखा गया ? व्यर्थ जगह घेरी गई। भेरी रखनेका प्रयोजन है आवाज करना, समयपर लोगोको चेताना समयकी सूचना देना। वह प्रयोजन तो सिद्ध नही हो सकता। मानलो केवल दण्ड रखा है, भेरी नही है, तो उसके रखनेसे भी क्या सिद्धि ? भेरी और दण्ड ये दोनो हो और उनका आवाज सयोग बनाया जाय, समयपर दण्डोसे उस भेरीको पीटा जाय यो भेरी और दण्डके सयोगसे विवक्षित कार्य सिद्ध होता है। सूचना देना मन्दिरमे आनेकी प्रेरणा करना जो भी प्रयोजन माना है वह सिद्ध होता है। इसी प्रकार क्या परिणाम के सयोगमे अर्थसिद्धि है, केवल सत् ही पडा रहे कही तो उससे क्या प्रयोजन अथवा केवल परिणाम ही रहे तो उससे अर्थसिद्धि नही। सत् और परिणाम दोनोका सम्बन्ध हो, दोनो एक जगह मिलें तो उससे अर्थकी सिद्धि हुई। पदार्थ सिद्ध हो, व्यवहार सिद्ध हो, बन्ध मोक्षकी व्यवस्था बने क्या इस प्रकार सत् और परिणामके संयोगसे अर्थ सिद्धि होगी। यो इन दोनोमे परस्पर सम्बन्ध है क्या ? यो १५ वी जिज्ञासामे पूछा गया है।

अथ किमुदासीनतया वक्तव्य वा यथारुचित्वान्न।
पदपूर्णन्यायाऽप्यन्तरेणेह साध्यससिद्धेः ॥ ३५५ ॥

पदपूर्णन्यायसे सत् और परिणाम इन दोमे से किसी भी एककी उदासीनतासे कथन द्वारा अर्थ सिद्धि माननेकी सोलवी जिज्ञासा १६ वाँ जिज्ञासु यहाँ प्रश्न कर रहा है कि सत् और परिणाम क्या ये दोनो ऐसी बातें हैं कि जिनका कथन रुचिपूर्वक न करके उदासीनता पूर्वक किया जाता है अर्थात् जैसे पदपूर्ण न्याय के अनुसार उनमेसे किसी एकके द्वारा ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है जैसे किसी श्लोकका कोई एक अश बोला और एक अश बोलकर ही एक श्लोक उसने बोल दिया तो अन्य बात तो नही कही गई और जिस शब्दमे बताया वह भी उदासीनता पूर्वक कही याने किसी विद्यार्थीकी परीक्षा लेना है मानो नम. श्री वर्द्धमानाय इस श्लोकको पूछा है तो उससे कहा कि बोलो निर्धूत कलिमात्मने इस श्लोककी पूर्ति करो, तो इस पदको सुनकर वह पूरा श्लोक बोल देगा। तो यहाँ निर्धूत वाला पद बोलना कोई मुख्य न था, वह उदासीनता पूर्वक बोला गया, लडकेकी बुद्धि जितनी है साध्य तो यह है, समझना तो यह है। अब उस श्लोकमें कोई भी शब्द बोलकर पूछा जा

सकता है। तो जो भी शब्द पूछा गया उस शब्दको उदासीनता पूर्वक लेगा, मानो यह नहीं तो और भी बोल सकता था। तो उसमे साध्य तो इतना ही है कि उसकी बुद्धि की परीक्षा करना है, अब परीक्षक चाहे दूसरा चरण बोलकर पूछे अथवा तीसरा या अन्तिम बोलकर पूछे जो भी बोलेगा वह उदासीनता पूर्वक कहलायेगा तो क्या इसी तरह सत् और परिणामकी बात है? जैसे सत् कहा तो परिणाम झट समझमे आ गया और सत् और परिणाम दोनो मिलकर पदार्थ कहलाते हैं यह भी समझमें आ गया तो सत् कहकर समझा गया तो कभी परिणाम कहकर भी समझा जायगा। तो जो साध्य है जो पदार्थकी सिद्धि करना इष्ट है उसको बतानेके लिए। सत्को बोल दे चाहे पर्याय नामसे बोल दे, उदासीनता पूर्वक बोला जायगा क्या इस प्रकार सत् और परिणामकी बात है। यह १६ वें जिज्ञासुने १५ वाँ प्रश्न किया है?

अथ किमुपादानतया स्वार्थं सृजति कश्चिदन्यतमः।
अपरः सहकारितया प्रकृत पुष्णाति मित्रवत्तदिति ॥३५६॥

मित्रोकी तरह सत् और परिणाम को उपादान व सहकारीरूप मानने की सत्रहवी जिज्ञासा—अब यहाँ १७ वां जिज्ञासु पूछ रहा है कि क्या सत् और परिणामका ऐसा सम्बन्ध है कि कोई एक उपादान कारण होकर अपने कार्यको करता है और दूसरा सहकारी कारण बनकर उस प्रकृत कार्यका पुष्ट करता है क्या इस तरहकी बात सत् और परिणाममें है याने जिस बातकी सिद्धि करना है उस बातको हम सिद्ध करनेमे सत् शब्द तो मुख्य हुआ, सत् कहनेमे एक बातकी सिद्धि की गई कि पदार्थ है और फिर परिणाम कह करके कि वाच्यकी सिद्धिमें सहाय मिले जैसे कि दो मित्र हो तो काम करने वाला एक ही मित्र होता है। दो मित्र हो चाहे कितनी ही समान बुद्धिके हो फिर भी उनमे मुख्य और गौण हो ही जायगा। दो मित्र मिलकर कोई काम करते हो तो चाहे वे दोनो ही समान बुद्धि वाले हैं और पुरुषार्थ भी उनका समान है लेकिन प्रकृतिकी बात है कि उसमे कोई एक मुख्य होगा दूसरा सहकारी रूप होगा। तो जिस तरह एक कार्यको एकने मुख्य रूपसे किया दूसरेको सहकारी बनाकर किया, क्या इस तरह जो वाच्य है जो कार्य बताना है उसकी सिद्धि तो सत् और परिणाममेसे एकने मुख्यतया की, दूसरेका सहकारी बनकर की, क्या इस तरह सत् और परिणाम दोनो मिलकर अर्थकी सिद्धि करते हैं। सत् और परिणाम ये दो एक बातको बताते हैं। एक पदार्थका स्वरूप झलकाना है तो काम एक हुआ लेकिन प्रकृतिकी बात है कि दोमेसे कोई एक मुख्यरूपसे समझाने वाला होगा, अर्थात् दूसरा सहकारीरूपसे होगा क्या इस प्रकार सत् और परिणाम कार्यकी सिद्धि उसमें मुख्य और गौणरूपसे किया करते हैं? यह १७ वाँ प्रश्न हुआ।

शत्रुवदादेशः स्यात्तद्वत्तद् द्वैतमेव किमिति यथा ।
एकं विनाश्य मूलादन्यतमः स्वयमुदेति निरपेक्षः ॥३५७॥

शत्रुकी तरह सत् और परिणामको एक नष्ट कर दूसरेको उदित माननेकी अठारहवी जिज्ञासा अब १८ वाँ जिज्ञासु पूछ रहा है कि क्या सत् और परिणाममे शत्रु की तरह द्वैत भव हैं ? जैसे शत्रुमे कोई एक दूसरे का समूल नाश करके अपना अभ्युदय प्रकट करते हैं शत्रुकी यही रीति है। कोई सबल शत्रु निर्बलका समूल नाश करके उसके राज्यपर अपना पैर रखे, क्या इस तरह सत् और परिणाम इ मेसे कोई भी एक दूसरेका नाश करके अपना अभ्युदय रखे क्या इस तरहके सत् और परिणाममे विरोध जैसी बात है ? इस जिज्ञासु को ऐसा प्रश्न करनेका यों अवसर मिला कि बात भी यही देखी जाती । जब द्रव्य दृष्टिसे कोई चर्चा करता है तो पर्याय का वहाँ नाम भी नही दिखता । अगर वह वडी गहरी और परेशानीके साथ द्रव्य दृष्टि कर रहा है तो एक पर्याय दृष्टिमे कोई बात नजर नही आती । लोकमे विवाद क्यो होता कि नजर तो किए हुए है द्रव्य दृष्टिकी और बात मिलायेगे पर्याय दृष्टिकी जैसे जब देखा कि द्रव्य पर्यायोका पुञ्ज है । द्रव्यमे एकके बाद एक एक पर्याये होती हैं, कुछ भी हुआ हो जो होना है सो होता है उन पर्यायोका पुञ्ज द्रव्य है । देखिये ! यह सब एक द्रव्यकी दृष्टिमे नजर आ रहा है अब उस दृष्टिमे अनन्त पर्यायें हैं और एक पर्यायके बाद दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है बस यही धारा द्रव्यमे है और यही उसकी दुनिया है । चर्चा यह कर रहे, दृष्टि कर रहे द्रव्य दृष्टिकी । अब उस ही द्रव्य मे रहकर यो करे कि दूसरा कोई निमित्त नही अथवा अमुक इतना ही निमित्त मात्र किसी भी प्रकारकी चर्चा करना यह उस दृष्टिसे अलग होकर बात करनेमे था लेकिन एक दृष्टिमे रहे और अन्य दृष्टिका समावेश करे तब विवाद है अब इस ईमानदारीमें यह बात नजर आयी कि जब जिस दृष्टिसे देख रहे हैं उस दृष्टिमे ही दिख रहा है अन्यका तो लोप है । तो द्रव्य दृष्टिमे तो दिखता है सत् और पर्याय दृष्टिमे दिखता परिणाम । ये दोनो भिन्न-भिन्न दृष्टिके विषय हैं । तो यहाँ भी ऐसा होना चाहिए कि जब द्रव्य दृष्टिकी कुछ निरखा जा रहा है तब वही अन्यका लोप है । तो क्या इसी प्रकार सत् और परिणामकी बात है कि उनमेसे एक दूसरेका समूल नाश करके स्वय मुख्य रूपसे अभ्युदित होता है । अब १९ वाँ जिज्ञासु जो कि इस प्रसगका अतिम प्रश्न है उसका करने वाला पूछता है ।

अथ किं वमुख्यतया विसन्धिरूपं द्वयं तदर्थकृते ।
वामेतरकरवर्त्तितरज्जूयुग्मं यथास्त्रमिदमिति चेत् ॥३५८॥

वामेतरकरवर्तिरज्जूयुग्मकी तरह सत् और परिणामकी विमुखतासे

अर्थ सिद्धि माननेकी अन्तिम जिज्ञासा—यहाँ जिज्ञासु पूछ रहा है कि सत् और परिणाम क्या परस्पर विमुखतासे अनमिल होकर ही अपना कार्य करते हैं। कार्य है पदार्थकी सिद्धि करना पदार्थमे अर्थक्रिया बनना व्यवहार बनना, कार्य होना ये सब बातें सत् और परिणाम करता तो है दोनो लेकिन क्या विमुखतासे करता है या अनमिल रहकर करता है ? याने अनमिल रहकर भी दो मिलकर कार्य करते हैं, ऐसी भी घटना होती है। सुननेमे ऐसा लगता कि दो आदमी मिलकर एक कार्य करें, और विमुखतासे करें, अनमिल रहकर करें और वह एक कार्य बन जाय यह कैसे सम्भव है ? लेकिन उदाहरण देखिये ! दहीको मथानीसे मथकर घी निकाला जाता है, तो जब दही मथा जाता है मथानीसे तो उसमे लगी हुई दो रस्सियाँ है याने रस्सी के दो और छोर हैं, वे अनमिल होकर ही काम कर पाती है। यदि एक रस्सी पूर्वको खिचती है तो दूसरी रस्सी पश्चिमको खिचती। एक छोरका मुख है मथने वालेकी ओर और एकका मुख है उससे उल्टी ओर। तो एक रस्सीका एक छोर खिच रहा है मथने वालेकी ओर एक छोर मथने वालेकी ओरसे भाग रहा है। दोनो ही छोर एक दूसरेसे उल्टे काम कर रहे हैं एक छोरने पूरब दिशाकी ओर गति की और एक छोरने पश्चिम दिशाकी ओर गति की। अनमिल होकर ऐसी विमुखतासे देखो वहाँ रस्सीके दोनो छोरोंने मथनेका काम किया और सारभूत घी निकाल दिया तो क्या इसी तरह सत् और परिणाम ये दोनो, द्रव्य पर्यायें ये दोनो क्या परस्पर विमुखता रखकर परस्परमे अनमिल रहकर पदार्थमे अर्थ क्रिया करते हैं ? अनमिल रहनेकी बात भी जिज्ञासुको यो सूझी कि द्रव्यका स्वरूप जो है उससे विपरीत पर्यायका स्वरूप है। द्रव्य शाश्वत है तो पर्याय अनित्य है। द्रव्य उपादानभूत है तो पर्याय उदित होने वाली चीज है एक ध्रुव है वह अध्रुव है, वह एक है तो पर्याय अनेक हैं। बहुत सी बातें विरोधरूप हैं इस कारण अनमिल रहकर कार्य करनेकी बात किसी जिज्ञासुको सूझ सकती है और इस सूझमे यह अन्तिम जिज्ञासु प्रश्न करता है कि जैसे बायें और दायें हाथमे रहने वाली रस्सीके दो छोर परस्पर विमुखता रखकर काम करते हैं उसी तरह क्या सत् और परिणाम भी एक दूसरेसे अनमिल रहकर अपना परिणाम करते हैं, क्या इस तरह सत् और परिणामका जोडा है क्या सत् और परिणामका इस तरहसे सम्बन्ध है ? यहाँ तक १९ प्रकारकी जिज्ञासायें प्रकट हुई। अब सत् और परिणामका सम्बन्ध परस्परमे किस प्रकार है सो बतावेंगे।

नैवमदृष्टान्तत्वात् स्वेतरपक्षोभयस्य घातित्वात् ।
नाचरते मन्दोऽपि च स्वस्य विनाशाय कश्चिदेव यतः ॥३५९॥

सत् और परिणामके सम्बन्धमे १९ जिज्ञासाओंका सक्षेपमे समाधान

धान अब उन समस्त जिज्ञासावोका जो कि ऊपर बतायी गई हैं क्रमश समाधान करते हैं। देखिये अपने अपने पक्ष की पुष्टिमें जिन जिन जिज्ञासाओंने जो जो दृष्टान्त दिये हैं वे अपने और दूसरे के पक्षका घात करने वाले हैं। लेकिन यह बडे आश्चर्य की बात है कि कितना भी मंदबुद्धि पुरुष हो वह अपने विनाशके लिए तो कोई उपाय नही बनाता, लेकिन इन जिज्ञासुओने जो दृष्टान्त दिया है उनमे ही वस्तुकी यथार्थ सिद्धि होती है। जो पक्ष रखा है उसका उसमे विघात है। सो यह आश्चर्यकी बात है कि स्याद्वाद शासनका परिज्ञान न होनेसे कोई भी एकान्त आग्रही, अपने पक्षकी सिद्धि करनेमे जो भी उदाहरण देगा, दृष्टान्त देगा, वह उसके विरुद्ध ही पडेगा। कारण यह है कि जगतमे कोई भी पदार्थ एकान्त स्वरूप नहीं है. सब अनेकान्तात्मक हैं। उदाहरण किसका देगा? उदाहरण सहित पक्षकी सिद्धिके लिए तो सही मिल जायगा मगर मिथ्या पक्षकी सिद्धिके लिए अन्य जो कुछ भी उदाहरण दिये जायेंगे वे उस पक्षका विघात करने वाले ही होगे। अब इन सब जिज्ञासुओके अपने अपने पक्ष मे दिए गए दृष्टान्त जैसे उनके पक्षका विघात करते हैं? सो यह बात अब क्रमश बताई जायगी। उन सबमे प्रथम पक्ष था वर्णोंकी तरह सत और परिणामका एक साथ रहना, परन्तु उनका क्रमसे कहा जाना जैसे क ख ग वर्ण पुस्तकमें, आनमे सबके सब मौजूद हैं लेकिन उनका कहना क्रमसे होता है। इसी प्रकार पदार्थमे सत् और परिणाम दोनोके दोनो मौजूद हैं लेकिन उनका कथन क्रमसे ही होगा, एक साथ नही कहे जा सकते। और इस जिज्ञासुने यह कारण बताया था जो सिद्धान्तमे अनुभय नामका तृतीय भङ्ग अवक्तव्य नामका बनाया गया तो सत और परिणाम ये अवक्तव्य क्यो हैं? बात भली लग रही है, जिज्ञासुका कहना ठीक जच रहा कि बात दोनो पदार्थमे है सत और परिणाम, मगर उनका कथन क्रमसे ही हो सकेगा। किंतु क ख आदिक वर्णोंका और उन ध्वनियोका जो उदाहरण दिया है उनसे अपने पक्ष की सिद्धि करना चाहा है, उसमें कुछ अयुक्तता है। उसी बातको अब देखियेगा कि पहिला जिज्ञासु अपना प्रश्न कैसे अयुक्त बना रहा है?

तत्र मिथस्तापेक्षधर्मद्वयदेशिनः प्रमाणस्य।
मा भूदभाव इति नः हि दृष्टान्तो वर्णपङ्क्तिरित्यत्र ॥ ३६० ॥

प्रथम जिज्ञासाके समाधानमे वर्णपङ्क्तिके दृष्टान्तकी अयुक्तताका कथन

प्रथम जिज्ञासुने यह जिज्ञासा प्रकट की थी कि पदार्थमे सत और परिणाम क्या इस तरह स्वतत्र रूपसे रहते हैं जैसे कि क ख आदिक वर्णोंका विन्यास यह स्वतत्र है। उसमें यह बात तो नहीं है कि पहिले क बना था फिर ख बना। बोलनेमे अवश्य क्रमसे आता है, किंतु उनकी रचना तो एक समान एक साथ है। उसमे क्रम नही है कि दुनियामे पहिले क बना था फिर ख फिर ग। सब वर्ण अनादि सिद्ध है। सबकी

समान स्थिति है पर उनका बोलना क्रमसे होता है इसी प्रकार सत् और परिणाम दोनों एकसाथ हैं किन्तु उनका कथन क्रमसे होता है क्या इस तरह कि सत् और परिणाममें अस्तित्व की स्वतन्त्रता है, इस जिज्ञासाके समाधानमें अस्तित्वकी स्वतन्त्रता है, इस जिज्ञासाके समाधानमें कहते हैं कि सत् और परिणाम ये दोनों सापेक्ष हैं, सत् के बिना परिणाम नहीं परिणामके बिना सत् नहीं और इस सापेक्ष दोनों धर्मोंका विषय करने वाला हैं प्रमाण । प्रमाण दृष्टिसे सत्त्व और पर्याय, द्रव्य और ये दोनों सिद्ध होते है । तो द्रव्य पर्याय दोनो को विषय करने वाले प्रमाणका अभाव करना किसी इष्ट नहीं हो सकता, इस कारणसे जो वर्ण पंक्तिका दृष्टान्त दिया है और दृष्टान्त दिया है और दृष्टान्त देकर यह सिद्ध किया है कि सत् और परिणाम दोनों स्वतन्त्र हैं, पर उनका व्यक्ति कथन क्रमसे होता है सो ठीक है । सो जिनको प्रमाणका अभाव इष्ट नहीं है उनको यह मानना चाहिए कि सत और परिणाम सापेक्ष धर्म है स्वतंत्र धर्म नहीं है । जैसे कि वैशेषिक लोगोंने द्रव्यको भिन्न और धर्मको भिन्न माना है । कर्म क्या है ? परिणाम और परिणाममें गुण भी है । वैशेषिक लोगोंने द्रव्य को भिन्न और कर्मको भिन्न माना है । कर्म क्या है ? परिणाम और परिणाममें गुण भी है । वैशेषिक द्वारा माना गया और भी माता है । जो गुण पर्यायात्मक है वह परिणाम है । और क्रिया सारी ही परिणाम है । तो जैसे वैशेषिक जनोंने सत्त्वको द्रव्य रूप मान रखा और परिणामको गुण कर्म आदिक रूप मान रखा और सब स्वतन्त्र माने गए । भले हो फिर अर्थक्रियाकी व्यवस्था समवाय सम्बन्धसे बनाई गई है लेकिन मूलमें उन धर्मोको स्वतन्त्र माना है । इस प्रकारसे सत् और परिणाम स्वतंत्र नहीं हैं, स्वरूप उनका अवश्य जुदा है, पर सत् और परिणाम सापेक्ष है । वस्तु एक है, उसी एक ही वस्तुमें सामान्य दृष्टिसे देखते हैं तो सत्त्व विदित होता है । विशेष दृष्टिसे निरखते हैं तो पर्याय विदित होती है । तो सत् और परिणाम दोनो सापेक्ष हैं अतएव वर्ण पंक्तिका दृष्टान्त यहाँ उपयुक्त नहीं होता कि जैसे क ख ग आदिक स्वतन्त्र हैं पर उनकी ध्वनि क्रमवर्ती है यों सत और परिणाम स्वतन्त्र हैं, पर उनका कथन क्रमसे है, सो इस प्रकारका पार्थक्य नहीं है ।

अपि च प्रमाणाभावे न हि नयपक्षः क्षमः स्वरक्षायै ।
वाक्यविवक्षाभावे पदपक्षः कारकोऽपि नार्थकृते ॥३६१॥

वाक्यविवक्षाके अभावमें पदपक्षकी अर्थसिद्धिमें अक्षमताकी तरह प्रमाणके अभावमें नय पक्षकी स्वरक्षामें भी अक्षमता—उक्त गाथामें बताया गया है कि जिसको सापेक्ष सत् और परिणाम इन दो धर्मोका विषय करने वाले प्रमाणको सत्त्व मानना इष्ट है, अभाव नहीं चाहते उनको वर्ण पंक्तिके दृष्टान्तकी तरह सत् और परिणामको स्वतंत्र मानना युक्त नहीं है । यदि कोई यह कहे कि हमें

प्रमाणका अभाव भी इष्ट है। प्रमाण नहीं रहता तो न रहो, सो ऐसा मनमाना मन्तव्य न डालकर उसी प्रमाणका अभाव माननेपर कोई काम न चल सकेगा। जैसे कि वाक्य विवक्षा न माननेपर केवल पशु पक्षी कोई कार्य करनेमे समर्थ नहीं, कोई एक ही शब्द बोला उस शब्दको बोलकर ही लोग पूरा वाक्य समझ गए। किसी श्लोकका कोई अश बोला गया और समझने वालेमे पूरा श्लोक समझ लिया तो वहाँ यह न समझना चाहिए कि केवल एक पदसे ही प्रयोजनकी सिद्धि हुई है। ज्ञानमे प्रतीतिमे पूरा वाक्य है पूछने वालेके भी चित्तमे और उत्तर देने वालेके भी चित्तमे, तो उस वाक्यकी विवक्षा है, उस पूर्ण श्लोककी बात कहनेकी बात चित्तमे है, ज्ञानमें है तब जाकर कोई एक पद बोला गया उसके माध्यमसे वह अर्थ सिद्ध होगा लेकिन वाक्य विवक्षाका अभाव हो तो पदका बोलना कोई अर्थ सिद्ध करनेमे समर्थ नही है तो इसी प्रकार वाक्यकी तरह विशाल तो है प्रमाण और पदकी तरह है एक देश नय तो कभी किसी नयके प्रयोगसे समस्त पदार्थकी सिद्धि समझ ली गई, समझ लीजिए, लेकिन जिन्होने समझा है उन्हे प्रमाणके समस्त विषयका परिज्ञान था तब जाकर एक नय पक्षसे भी उसने सब कुछ समझ लिया यदि प्रमाणका परिज्ञान न हो तो एक नय पक्षसे सब बातें नही समझी जा सकती।

सप्तभङ्गीके प्रत्येक भङ्गमे अन्यसापेक्षताकी ध्वनि—सप्तभङ्गीमें एक भङ्ग बोलकर सारी बात समझ ली जाती है कही वहाँ यह बात नही है कि एक भङ्ग मे केवल एक ही बात है दूसरी है ही नहीं। मुख्यताकी बात है। उसमे अपेक्षा दृष्टि लगनेके कारण उस ज्ञानीके चित्तमे सारी बातें समायी हुई हैं। तो जो वस्तुको नित्यानित्यात्मक समझ बैठे हैं उनको अगर कोई कहे कि द्रव्य दृष्टिसे नित्य है तो इतने कथनसे वह सब स्वरूप समझा गया। कब समझा गया ? जब प्रमाणसे उसे समस्त स्वरूपका ज्ञान था। तो यो ही समझिये कि जिस वाक्य विवक्षाके अभावमे किसी पदे पक्षका प्रयोग अर्थ सिद्धिके लिए समर्थ नही है। इसी प्रकार प्रमाणके अभावमे कोई सा भी नय पक्ष अपनी रक्षाके लिए समर्थ नहीं है, इसी कारण सत् और परिणाम इन दोनोंको यदि सापेक्ष नही माना जाता और प्रमाणसे इसका एक ही वस्तुमे परिग्रहण नही होता तो अलग अलग सत् और परिणाम कह देनेपर कभी पदार्थकी सिद्धि नहीं हो सकती।

सत् और परिणामको स्वतन्त्र स्वतन्त्र दो पदार्थ माननेकी अयुक्तता—यो तो अनेक दार्शनिकोने माना है सामान्य उनका पूरा पदार्थ है। अब सामान्य पदार्थ बोलकर सिद्धि क्या कर लेगा वह। अथवा कर्म विशेष जो पूरे पूरे स्वतन्त्र पदार्थ हैं उन दार्शनिकोके मतमे तो केवल एक प्रयोगसे वह क्या सिद्ध कर सकता है? बात तो यो थी कि सत् एक है। उसमे जो शक्ति है उसका नाम गुण है उसकी जो परिणति है उसका नाम कर्म है। उसमे जो सजातित्व है उसका नाम सामान्य है।

उसमें जो विशिष्ट स्थिति है उसका नाम विशेष है। बस काम बन गया। अलग अलग कोई कर्म सामान्य विशेष मानना तो एक भेदहठकी बात है। अब जैसे यहाँ कोई किसी एक सामान्य विशेषादिक पदार्थको ही मानकर रहे, भेद करके रहे तो किसी वस्तुकी सिद्धि नहीं है। तो यों ही सत् और परिणाम दोनोंको स्वतंत्र मानकर सत्का पक्ष ले वह नयपक्ष, पर्यायका पक्ष ले वह नयपक्ष तो प्रमाणके अभावमें कोई सा भी नयपक्ष अपनी रक्षा करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकता, इस कारण प्रमाणका अभाव करने वाला तो किसी भी प्रयोजनकी सिद्धि न कर सकेगा।

संस्कारस्य वशादिह पदेषु वाक्यप्रतीतिरिति चेद्वै ।
वाच्यं प्रमाणमात्रं न नया ह्युक्तस्य-दुर्निवारत्वात् ॥३६२॥

सस्कारवश पदोमें वाक्य प्रतीति माननेपर नयोंके अवाच्यत्वकी व प्रमाणमात्रके वाच्यत्वकी सिद्धिका प्रसङ्ग—उक्त गाथामें यह बताया गया है कि वाच्य विवक्षाके अभावमें पद प्रयोग अर्थ सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है। तो उसके उत्तरमें शङ्काकार यदि यह कहे कि संस्कारके वशसे पदोंमें ही वाक्यकी प्रतीति हो जायगी। चूंकि वह समझता है सुनने वाला और उसे उन समस्त ज्ञानोका सस्कार लगा है उस संस्कारकी वजहसे पदोमें वह वाक्यकी प्रतीति कर लेगा। ऐसा कथन भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि सस्कारके वशसे पदोंमें वाक्य प्रतीति माननेके मतव्य पर होगा, क्योंकि नयोंका अभाव हो जायगा। नया न रहेगा और केवल एक प्रमाण ही वाच्य बन जायगा। तात्पर्य यह है कि किसी विद्वानने सस्कारकी वजहसे पदोंमें वाक्यकी प्रतीति करली, अब यह बात सभी जगह लगायी जा गी, अर्थात्, अब यह नियक बन बैठा कि पदमें ही वाक्यकी प्रतीति हो जाती है तो पद तो है एक नयका प्रतीक और वाक्य है प्रमाणका प्रतीक। अब जब पदोंमें वाक्य प्रतीति होने लगे तो वाक्यकी अब क्या आवश्यकता नहीं? पद ही कार्यकारी बन गया, वाक्य कुछ न रहे, यों भी समझिये कि यदि सत् और प्रमाणका ग्रहण करने वाले नय पक्षने ही अर्थ सिद्धि कर दिया तो अब प्रमाणकी क्या आवश्यकता रही? एक बात, दूसरी बात यह है कि सस्कारकी वजहसे अगर पदोंमें वाक्य प्रतीति है तो संस्कारसे, अंतरङ्गमें वाक्य ही तो ग्रहणमें आया। पदने तो केवल अर्थ सिद्धि नहीं की, इसी तरह वाक्य मुख्य रहेगा। फिर पद कुछ न रहे। यों तो संस्कारकी वजहसे कुछ भी कोई न बोले तो विद्वान सारी समझ रखता है। ऐसी स्थितिमें भाव यह बनेगा कि केवल प्रमाण ही वाच्य रह गया, नय वाच्य न ठहरेगा। तब प्रमाण ही कहना चाहिए। नयोंका कथन फिर न कहना चाहिए, पर ऐसा मंतव्य तो कुछ ठीक नहीं और नय दोनोकी व्यवस्था है। केवल प्रमाण ही कोई माने और नय न माने तो प्रमाण भी कोई न बन सकेगा, न व्यवहार चल सकेगा। कोई नय ही माने प्रमाण नहीं मानता तो उससे

भी अर्थ सिद्धि नही है, न व्यवहार चल सकेगा। तब सत् और परिणाममे परस्पर सापेक्षता समझना चाहिए और उनके ग्रहण करने वाला प्रमाण है उन्हें वस्तुमे स्वतत्र स्वतंत्र न समझना चाहिए।

अथ चैवं सति नियमाद् दुर्वार दूषणद्वयं भवति।
नयपक्षच्युतिरिति वा क्रमवर्तित्वाद् ध्वनेरहेतुत्वम्॥ ३६३॥

केवल प्रमाणपक्ष माननेपर दो दूषणोंका प्रसङ्ग—उक्त कथनमे बताया है कि सरकारसे पदोमें वाक्य प्रतीति माननेपर केवल प्रमाण मात्र वाच्य हो जायगा, तो इसपर यदि शङ्काकार यह कहे कि केवल प्रमाण पक्ष ही वाच्य बनता है तो बनने दो। उसके उत्तरमें यह समझना चाहिए कि केवल यदि प्रमाण पक्ष ही माना जाता है नयोका अभाव कर दिया जाता है तो इस मन्तव्यमे दो दूषण आते हैं—प्रथम तो यह कि नय पक्षका सर्वथा अभाव हो जाता है। स्पष्ट ही मानते हैं कि केवल प्रमाण पक्ष ही रहा आये तो नयपक्ष नही ठहरता। और यदि कोई यह ही हट करे कि नय पक्ष भी नही ठहरता तो न ठहरे! तो नयपक्ष विना कोई गति भी नही हो सकती। कोई कुछ कथन करेगा तो किसी एक दृष्टिमे ही तो कथन करेगा। सब दृष्टियोसे जो बात समझी गई है वह कथनमे नही आ सकती। दूसरा दोष यह है कि फिर जो इस जिज्ञासामे ध्वनिको क्रमवर्ती बताना यह हेतुमे कहा है तो ध्वनि क्रमवर्ती होती है यह हेतु फिर समीचीन नही ठहरता। ध्वनि अहेतुक बन जायगी अथवा यह हेतु विपरीत बन जायगा। तब मानना यह चाहिए कि सत् और परिणाम ये नय दृष्टिसे वस्तुमे निरखे गए धर्म हैं, ये स्वतंत्र धर्म नहीं हैं। उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक वस्तु होती है। कहीं पदार्थमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वतन्त्र नही हुआ करते। तो सत् परिणामको स्वतंत्र सिद्ध करनेके लिए प्रथम जिज्ञासुने जो क ख आदिक वर्णोंका उदाहरण दिया वह युक्तिपङ्गत नही कहा जा सकता।

विन्ध्यहिमाचलयुग्मं दृष्टान्तो नेष्टसाधनायालम्।
तदनेकत्वे नियमादिच्छानर्थक्यतोऽविवक्षश्च॥ ३६४॥

विन्ध्याचल हिमाचलकी तरह सत् और परिणामको स्वतन्त्र स्वतन्त्र व विवक्षानुसार मुख्य गौण माननेकी शङ्काका समाधान—शङ्काकारने यह शङ्का प्रकट की थी कि वस्तुमे सत्त्व और परिणाम क्या इस भांति है जैसे कि विन्ध्याचल और हिमाचल पर्वत। विन्ध्याचल बिल्कुल प्रतिपक्ष दिशामें है और हिमाचल उत्तर दिशामें हैं। तो जैसे ये दोनो स्वतन्त्र हैं क्या इस प्रकारसे सत्त्व और परिणाम ये दोनो स्वतंत्र सत्त्व हैं? अर्थात् निश्चय नयका विषयभूत जो द्रव्य स्वरूप

बताया गया, वह और पर्यायार्थिक नयका विषयभूत जो परिणाम बताया गया वह क्या ये दोनों स्वतन्त्र हैं ? जैसे कि मीमांसक जन गुणपर्याय द्रव्य सबको स्वतन्त्र मानते हैं, परिपूर्ण स्वयं स्वतन्त्र पदार्थ है इस तरहसे स्वतन्त्रता बतानेके लिये जो विन्ध्याचल और हिमाचल इन पर्वतोंका दृष्टान्त दिया वह भी इष्टसिद्धि करनेके लिए समर्थ नहीं है क्योंकि जब ये नियमसे स्वतन्त्र हैं तब इनमें किसीको गौण किसीको मुख्य कहना यह निरर्थक बात है। जो स्वतन्त्र हैं और उनमें विवक्षावश किसीको मुख्य और किसी को गौण बनाया तो भले ही विवक्षा कुछ करलें किन्तु वस्तुतः उनमें एक मुख्य हो एक गौण हो सो बात नहीं। वे दोनों अपने आपमें स्वतन्त्र हैं, और अपना पूरा सत्त्व लिए हुए हैं, सत् और परिणाममें कथंचित् ही भेद माना गया है। वस्तुतः भेद नहीं है, जैसे चौकी भीट आदिकमें प्रकट भेद है, ऐसा प्रकट भेद सत्त्व और परिणाममें नहीं है। वस्तु एक है। जब उसे द्रव्य दृष्टिसे देखा तो उसका शाश्वत रूप नजरमें आया, जब पर्याय दृष्टिसे देखा तो उसकी पर्यायरूप अवस्थारूप नजरमें आयी, पर अवस्था और वह शाश्वत द्रव्य स्वतंत्र (न्यारा) हो ऐसा नहीं है और विन्ध्याचल हिमाञ्चल जिनका दृष्टान्त दिया गया है वे दोनों स्वतन्त्र हैं और कथंचित अभेदरूप रहने वाले सत् और परिणामकी बात समझनेके लिए अत्यन्त भिन्न विन्ध्याचल हिमाञ्चलका दृष्टान्त युक्त नहीं है।

नालमसौ दृष्टान्तः सिंहः साधुर्यथेह कोऽपि नरः।
दोषादपि स्वरूपासिद्धत्वात्किल यथा जल सुरभि ॥ ३६५ ॥

सिंह साधुकी तरह सत् परिणामको विशेषणविशेष्य विशेषणविशेष्यरूप माननेकी शङ्काका समाधान—सिंह साधुका दृष्टान्त भी प्रकृत, सत् परिणामकी बातको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है। तीसरी जिज्ञासा साधु सिंहका दृष्टान्त बताया था कि जैसे किसी सज्जनका नाम सिंह है और साधु नाम है, क्या उसी प्रकार उसी एक पदार्थका सत् हो और परिणाम नाम हो क्या इस प्रकार इनमें विशेषणविशेष्य भाव है अथवा साधु सिंह भी कह देते हैं। यह तो सिंह है—अर्थात् श्रेष्ठ है, सिंहवत् शूरवीर है। तो साधु हो गया विशेष्य सिंह होगया विशेषण अथवा एक हीके दो नाम रखे हो तो साधु और सिंह ये दोनों हो गए विशेषण। सो कोई एक विवक्षित हो विशेष इस तरहसे सत् और परिणामकी बात नहीं है कि इसमें एक विशेषण हो, एक विशेष्य हो। यहाँ दृष्टिमें दो धर्म लिए जा रहे हैं—द्रव्य और पर्याय। अतः अनन्त शाश्वतरूप जो सहज स्वरूप है और उसमें जो पर्याय उत्पन्न होती है इन दोनोंमें किस को विशेषण कहेंगे और किसको विशेष्य कहेंगे। तो यह दृष्टान्त इष्ट सिद्धि नहीं करता बल्कि इसमें स्वरूपासिद्ध दोष है। सत् और परिणाम ये दोनों धर्म हैं। दो धर्मोंकी बात समझानेके लिए जो दृष्टान्त दिया है वह दो धर्म वाला है ही नहीं। तो

स्वरूपासिद्ध दोष हो गया। जिसकी चर्चा कर रहे हैं वह स्वरूप ही वहाँ नहीं है। जैसे कहा कि जल स्वरभि है तो ऐसा माननेमें स्वरूपासिद्ध दोष है। यह उदाहरण दिया जा रहा है नैयायिक सिद्धान्तके अनुसार। नैयायिक सिद्धान्तमे पृथ्वीको गंधवान माना है जलको रसवान माना है, अग्निको रूपवान और वायुको स्पर्शवान माना है ये चार जो भौतिक तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। वनस्पति, पेड, काठ वगैरह पृथ्वीमे शामिल हैं, क्योंकि जो कठिन हो वह सब पृथ्वी है। जैसे पृथ्वी कठोर है तो काठ भी कठोर है। तो पृथ्वीको वनस्पति तत्त्वमे लिया है न्यायदर्शनमे। जैसे ये चार तत्त्व हैं तो इनका स्वरूप एक एक धर्मको लिए हुए है। तो जलमें सुगन्ध नही है। जलमे केवल रस गुण बताया गया फिर भी लोग बोलते हैं कि यह सुगंधित है। जलका स्वरूप ही नही गंध और फिर यह कहना कि यह स्वरूपासिद्ध है। जो बात नही है उसका बताना। इस प्रकार सिंह और साधुमे धर्मत्व है ही नही फिर भी धर्मके दृष्टान्तमें उसका उदाहरण देना यह स्वरूपासिद्धकी बात है। तो ५ दृष्टांत मे स्वरूपासिद्ध दोष है यह बात निर्णीत है अप्रसिद्ध ही है, क्योंकि और कोई दृष्टांत दीजिए। दो धर्मोकी अपेक्षा न कहकर सिंह और साधुका जो रूढिवश व्यवहार बताया है वह स्वरूपासिद्ध है। दो धर्म हुए किसी वस्तुमें और फिर उन दो धर्मोका दृष्टांत देकर सत् और परिणामकी बात सम्हालें तो वह कुछ विचारणीय भी है।

नासिद्धं हि स्वरूपासिद्धत्वं तस्य साध्यशून्यत्वात्।
केवलमिह रूढिवशादुपेक्ष्य धर्मद्वयं यथेच्छत्वात् ॥ ३६६ ॥

सिंह साधु दृष्टान्तकी प्रकृतमे स्वरूपासिद्धता—दृष्टान्त जो साधु सिंह का दिया है उसमे स्वरूपासिद्ध कहा है, ये दोनो धर्म नही है। एक व्यक्ति हो और उसके ये दो धर्म हुए सो बात नही। जैसे एक पदार्थमे नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो धर्म हैं अब उन दो धर्मोका क्या विशेष्य विशेषण भावरूपसे कह देंगे कि नित्यत्व अनित्यत्वका विशेषण हुआ या नित्यत्व अनित्यत्व विशेष हुआ? इन दोनोमे विशेषण रूपसे प्रयोग नहीं किया जा सकता। तो यों ही सिंह और साधु जब दो धर्म नही है तो इसका दृष्टान्त दो धर्मोमे सम्बन्ध बतानेके लिये संयुक्त नही हो सकता। मनुष्य मे सिंहत्व धर्म नही, साधुत्व धर्म नही, फिर भी व्यवहारमे कभी सिंह कहते, कभी साधु कहते। यदि सत् और परिणामको वस्तुमें सिंहपना और साधुपनाकी तरह एक भिन्न मान लिया, क्या होता विशेषण विशेष्य न होनेपर भी विशेषण विशेष्यकी तरह दोनों होता तो कदाचित् दृष्टान्त ठीक समझा जाता लेकिन वस्तु तो सत् परिणामात्मक है, उसमे न सत्त्व अलग है न परिणाम अलग है। तो सत् परिणामात्मक वस्तुमे फिर सत् और परिणाम अलग अलग मान लेना यह युक्तिसङ्गत नही है। जैसे जल सुगन्धित है, है नही सुगन्धित? जलमे जो मिट्टी पडी है उसकी गंध है न्याय-

दर्शनके अनुसार केवल जल ही जल हो और उसमें रजकण जरा भी न हो तो वहाँ गंध नहीं मानी गई। जो जल सड़ गया है, तो वहाँ जलके अतिरिक्त दूसरी चीज समाई हुई है उसके सड़नेसे उसकी गंध बनी है। तो यों जल सुगंधित है, यह कहना स्वरूपासिद्ध है, इसी प्रकार सत् और परिणाममें विशेषण विशेष्य भाव बताना युक्तिसङ्गत नहीं है।

अग्निवैश्वानरं इव नामद्वैतं च नेष्टसिद्धयर्थम्।
साध्यविरुद्धत्वादिह संदृष्टेरथ च साध्य शून्यत्वात्॥३६७॥

अग्नि वैश्वानरकी तरह सत् परिणामको नामद्वय माननेकी शङ्काका समाधान – चौथी जिज्ञासामें जिज्ञासुने यह बात प्रकट की थी कि जैसे अग्निके अग्नि और वैश्वानर ये दो नाम रख दिये जाते हैं और इसको कोई अग्निके नामसे बोल दे तो उस पदार्थका बोध होगा, कभी वैश्वानरके नामसे बोल दिया उस पदार्थके नाम से बोध होगा, इसी प्रकार क्या सत् और परिणाम ये एक वस्तुके दो नाम हैं ? यों उस प्रश्नमें पूछा गया है ? यद्यपि अग्नि और वैश्वानरके प्रयोगमें कुछ घटना भेद अवश्य है। जब सभी काम करते हैं पूजन, जाप मन्त्रादिक तब वहाँ अग्नि शब्दसे नहीं बोलते। कहते हैं वैश्वानर लावो, और जब रसोई बनाने बैठते हैं तो वहाँ कोई यह नहीं कहता कि वैश्वानर लावो। सभी लोग कहते हैं कि अग्नि लावो। यो अग्नि और वैश्वानरमें अन्तर है। जैसे हिन्दीमें अपभ्रंसमें वैसादुर कहने लगते हैं। अग्निका दूसरा नाम है वैश्वानर। तो जिज्ञासुका यह कहना था कि वस्तु एक है, नाम उसके दो हैं। अग्नि और वैश्वानर। इसी तरहसे वस्तु एक ही है उसे दो धर्मोंसे समझाया है सत् और परिणाम कभी सत् कहकर उसी पदार्थका समझाना बनता है कभी परिणाम कहकर उसी वस्तुका समझाना बनता है। प्रयोजन भेद जैसे अग्नि और वैश्वानरके प्रयोगमें है इसी प्रकार प्रयोजन भेद सत् और परिणाममें रहा आया। उसका विरोध न करें मगर वस्तु एक ही कहा गया है, ऐसा उस जिज्ञासुका प्रश्न करना और उसके लिए अग्नि वैश्वानरका दृष्टान्त देना यह भी इष्टका साधन नहीं है। क्योंकि कथन साध्य विरुद्ध है और दृष्टान्तमें भी साध्य शून्यताका दोष है। कैसे साध्य विरुद्ध है दृष्टान्त और साध्य शून्य है उसी बातको अब प्रकट करते हैं।

नामद्वयं किमर्थादुपेक्ष्यधर्मद्वयं च किमपेक्ष्य।
प्रथमे धर्माभावेऽप्यल विचारेण धर्मिणोऽभावात्॥३६८॥

सत् परिणामको मात्र नामद्वय माननेपर धर्मद्वयकी अनपेक्षा व अपेक्षा का विकल्प करके प्रथमपक्षमें दोषारोपण—अग्नि और वैश्वानरके दृष्टान्त द्वारा

जो दो नामकी कल्पना की गई है कि पदार्थ एक है, उसके दो नाम हैं सत् और परिणाम । सो यह बतलाओ कि दो नामकी जो यह कल्पना है सो दो धर्मोंकी अपेक्षा न रखकर नाम कल्पना की गई है याने सत्मे शाश्वतपना नित्य वस्तुका स्वभावभूत स्वरूप वह एक धर्म है पदार्थ चूकि ध्रुव है, सदा काल रहता है तो उसमे यह एक द्रव्यत्व कहकर नित्यत्व कहना धर्म है और परिणाम कहकर यह नजरमे लिया गया कि अवस्था क्षण-क्षणमे दूसरी दूसरी होती रहती है और वह अनित्य है। यो परिणामका धर्म अनित्य है । तो उस अनित्य धर्मको दृष्टिमे रखकर परिणाम नाम रखा गया । यो धर्मकी अपेक्षासे इस नामकी कल्पना है या धर्मकी अपेक्षा न रखकर मानो उसमे कुछ अर्थ ही न भरा हो, केवल नाम रख दिया गया हो क्या इस तरहकी बात है ? जैसे कभी बच्चेका नाम धर्मकी अपेक्षा रखकर रखा गया, कभी धर्म की अपेक्षा नही रखी गई । जैसे अनेक नाम हैं । उनमे धर्मकी कोई बात नही मालूम होती । और अनेक नाम धर्मकी अपेक्षासे हैं । तो यो सत् और परिणाम इन दो नामोकी जो कल्पना की गई है वह कोई धर्मकी अपेक्षासे है या धर्मकी अपेक्षा बिना ? यदि कहो कि धर्मकी अपेक्षा किये बिना ही सत और परिणाम ऐसे दो नाम रखे गए हैं तो जब धर्मकी अपेक्षा हो गई याने धर्म ही न रहा, धर्म दृष्टिमे ही न रखा तो धर्मका भी अभाव हो गया । जब कोई वस्तु ही न रहे तब किसी भी प्रकारका विचार करना व्यर्थ ही हो जाता है । वैसे तो मोटेरूपमे समझ सकते हैं हर एक कोई कि जब पर्याय कहा तो तुरन्त बुद्धिमे अवस्था दशा क्षणिक मिट जाने वाली यह सब बात समझमे आ जाती हैं । इस समझकी अपेक्षा ही न रखे और यो ही परिणाम नाम रख दिया तो लो कुछ धर्म ही न रहा, नाम किसका रखते हो ? यो ही जब सत कहा तो बोध होता है कि यह सदा रहने वाला शाश्वत स्वरूप वस्तु स्वभाव मात्र भानमे रहता है, अब इस धर्मकी अपेक्षा ही न रखें तो वस्तु ही न रहे, फिर नाम ही किसका रखना । तो धर्मोंकी अपेक्षा करके तो कोई इष्ट सिद्धि नही होती । अब द्वितीय पक्षकी बात आगे कहेंगे ।

पृथगेतरपक्षेऽपि च भिन्नमभिन्नं किमन्वयात्तदिति ।
भिन्नं चेदविशेषादुक्तवदसतो हि किं विचारतया ॥ ३६६ ॥

सत् व परिणाम इन दो नामोको धर्मद्वयकी अपेक्षासे माननेपर उनमे भेद अभेदके विकल्प करके भेदपक्षमे दोषारोपण सत् और परिणाम अग्नि और वैश्वानरके समान दो नाम शङ्काकारने बताये थे, उस सम्बन्धमे दोष देकर यह पूछा जा रहा है कि जो दो नामोकी कल्पना की गई है सो दो धर्मोंकी अपेक्षा करके की है या अपेक्षा न करके की है । यदि धर्मोंकी अपेक्षा न करके नामाकन किया है तो इस सम्बन्धमे समाधान उक्त गाथामे दिया था । अब यहाँ द्वितीय पक्षके सम्बन्धमे

कहा जा रहा है कि यदि धर्मकी अपेक्षा रखकर सत् और परिणाम ऐसे दो नाम रखे गए है, तो जिन दो धर्मोंकी अपेक्षा रखकर दो नाम बनाये हैं अर्थात् सत्का धर्म कहकर सत् नाम दिया है, परिणामका धर्म निरखकर परिणाम नाम दिया है, तो वह धर्म द्रव्यसे भिन्न है कि अभिन्न है ? इस प्रकार ये दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं जब इन धर्मोंकी दृष्टिसे नामकरणकी बात कही जा रही है। अब इन दो पक्षोंमे अर्थात् धर्म द्रव्यसे भिन्न है और क्या धर्म द्रव्यसे अभिन्न है ? ऐसे दो पक्षोमे इसका विचार किया जायगा। इनमेसे यदि यह कहा जाता है कि दोनो धर्म द्रव्यसे भिन्न हैं, तो जब धर्म भिन्न हो गए तो कोई विशेषता न रही। धर्मी अलग है, धर्म अलग है। तो जैसे पहले धर्मोंका अभाव कहा आया है उसी प्रकार यहाँ भी धर्मोंका अभाव प्राप्त होता है। इस कारण भिन्न पक्षके विचार करनेमे कोई लाभ नही है। जब धर्म द्रव्यसे भिन्न हो गया तो वह धर्म रहित पदार्थ है, उसकी कोई सत्ता नही रहती, असत् हो सकता है।

अथ चेद्युतसिद्धत्वात्तन्निष्पत्तिर्द्वयोः पृथक्त्वेऽपि ।
सर्वस्य सर्वयोगात् सर्वः सर्वोऽपि दुर्निवारः स्यात् ॥ ३७० ॥

सत् परिणामको व धर्मद्वयको पृथक पृथक मान करके भी सम्बन्धकी बनावट करनेमे सर्वकी सर्वात्मकताका प्रसङ्ग — अब यदि दोनोके भिन्न रहनेपर भी युतसिद्धसे धर्मधर्मी भावकी निष्पत्ति बन जायगी, ऐसा स्वीकार करते हो तो देखिये ! धर्म भिन्न रहे और फिर भी उस धर्ममे धर्मोंकी निष्पत्ति मान ली कि यह धर्मी है, यह इसका धर्म है, तो पृथक होनेपर भी यदि धर्म धर्मीका सम्बन्ध मान लिया जाता है तो पृथक पृथक तो ससारके अनन्त द्रव्य हैं, फिर सभीका सबके सम्बन्धमे सभी बात बन बैठेगी। फिर तो कोई पदार्थ ही न रहेगा। इस कारण यह कथन बिल्कुल असङ्गत है कि धर्म धर्मी अत्यन्त पृथक हैं फिर भी उनमे सम्बन्ध मान लिया जाता है। पृथक पदार्थोंमे सम्बन्ध माननेका कोई सम्बन्ध तो होना चाहिए। किस कारणसे सम्बन्ध माना जा रहा है ? तो कारण ही कुछ ऐसा नही हो सकता कि पृथक पदार्थोंमे धर्म धर्मी सम्बन्ध मान लिया जाय। भले ही पृथक पदार्थोंका सयोग सम्बन्ध हो जाय पर सयोगका अर्थ तो इतना ही है कि एक पदार्थके निकट भिडकर अनन्तर दूसरा पदार्थ आ गया पर धर्मधर्मी भाव तो नही मिटता। अगर पृथक होनेपर भी धर्म धर्मीका सम्बन्ध मान लिया जाता है तो ससारके सारे पदार्थ हैं, सभीके धर्म बन बैठें। फिर कुछ पदार्थ अलगसे रहा ही नहीं, किसीकी स्वतन्त्र सत्ता ही न रही।

चेदन्वयादभिन्नं धर्मद्वैतं किलेति नयपक्षः ।
रूपपटादिवदिति किं किमथ सारद्रव्यवच्चेति ॥ ३७१ ॥

सत् परिणामको व धर्मद्वयको अभिन्न माननेपर अभिन्नताके प्रकारमे दो विकल्पोका उत्थापन—यदि दूसरा पक्ष यह स्वीकार करते हो कि धर्म अन्वयसे अभिन्न है, जिसमे कि धर्म बताते हैं उस अर्थमे धर्म अभिन्न है, एक है। तो इस अभिन्नताके सम्बन्धमे यह बतलाइये कि यह अभिन्नतारूप और पटके समान है, या क्षार और द्रवके समान है ? जैसे कि कपडा और रूप ये दोनो अभिन्न है पटसे अलग रूप नहीं किए जा सकते, रूपसे अलग पट कहाँ है वहाँ ? तो जैसे पट और रूप अभिन्न है रूपको छोडकर पट कोई चीज नही है वहाँपर और पटके अतिरिक्त रूप वहाँ कही नही रखा है। तो जैसे रूप और पट परस्पर अभिन्न हैं क्या इस प्रकारसे सत् और परिणाम जिन धर्मोकी दृष्टिसे नाम बताया गया है उन धर्मोमे क्या इस प्रकार अभिन्न है ? या क्षार और द्रवके समान अभिन्न है ? जैसे कोई नमक खारा भी है द्रव भी है तो जैसे द्रव और क्षारमे अभिन्नता है क्या इस प्रकारकी अभिन्नता मानते हो ? या ये दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं ? यदि धर्मको अन्वयसे अभिन्न माना जाय और ऐसा अभिन्न मानकर फिर सत् और परिणामका नामाङ्कन धर्मकी अपेक्षा करके किया जाय तो बताओ इन दोनोमेंसे किस प्रकारकी अभिन्नता है ?

क्षारद्रव्यवदिद चेदनुपादेय मिथोऽनपेक्षत्वात् ।
वर्णततेरविशेषन्यायान्न नयाः प्रमाणं वा ॥ ३७२ ॥

सत् परिणामको व धर्मद्वयको क्षार द्रवके समान अभेद माननेपर परस्पर अनपेक्ष होनेसे नय व प्रमाणके भी अभावका प्रसङ्ग - यदि धर्म धर्मीकी अभिन्नता जो सत् और परिणामके प्रसङ्गमें कही जा रही है, क्षार द्रवके समान माना जाता है। ऐसी अभिन्नता इस प्रकृतमे उपादेय नही बन सकती, क्योकि विरुद्धता नजर आयी। क्षार और द्रव ये परस्परमे निरपेक्ष है, क्षारका काम रससे सम्बन्धित है खारा हो गया यह रस गुणकी बात है और द्रवकी बात द्रवपने कोई द्रवीला पदार्थ और वह बह रहा है तो यह द्रव जो है वह पदार्थमे रहता है वह प्रदेश परमाणुओसे सम्बन्ध रखता है। क्षारता और द्रवता ये परस्पर विरुद्ध स्वरूप वाले भी हैं। तो जैसे वर्ण और पंक्ति अर्थात् अनेक वर्ण क ख आदिक ये परस्परमे निरपेक्ष हैं कही क की वजहसे ख नही बन गया उनका उच्चारण अलग अलग है, और उन रूपोके वर्णोंकी समझ अलग है। तो जैसे क ख आदिक वर्ण निरपेक्ष हैं, स्वतन्त्र है, इसीप्रकार क्षार और द्रव भी परस्पर निरपेक्ष हैं। सो क्षार द्रवकी भाँति सत् परिणामके धर्मोमे अभिन्नता मानी जाती है और यह अभिन्नता क्षार द्रवके समान है तो वह अभिन्नता क्या रही ? क्षार द्रव निरपेक्ष ही रहे, तब यह दृष्टान्त देना और वर्णोंका दृष्टान्त देना ये दोनो एक समान दृष्टान्त हुए और फिर जो क ख आदिक वर्णोंके दृष्टान्तके सम्बन्धमे दोष दिये गये हैं वे सब दोष यहाँ प्राप्त होंगे। निष्कर्ष यह है कि फिर नय और प्रमाण ये कुछ

न ठहर सकेंगे ।

रूपपटादिवदिति चेत्सत्यं प्रकृतस्य सानुकूलत्वात् ।
एकं नामद्वयाङ्कमिति पक्षस्य स्वयं विपक्षत्वात् ॥ ३७३ ॥

सत् परिणामको व धर्मद्वयको रूप व पटके समान अभेद माननेपर अनुकूलताका निर्णयन – यदि सत् और परिणामके नस्तसे - धर्मोंकी अभिन्नता रूप और पटके समान मानी जाती है तो यह बात प्रकृतिके अनुकूल है । ठीक है ऐसा मानना कि सत् और परिणामकी वस्तुमे अभिन्नता है और ऐसी अभिन्नता है जैसे कि रूप और पट । तो ठीक ही है पदार्थ है और वह पदार्थ ही समग्र द्रव्य दृष्टिमे शाश्वत् नित्य है और पर्याय दृष्टिमे वह पदार्थ क्षणिक विनाशीक है । ठीक है, एकमे नित्यत्व धर्म दीखा, एकमे अनित्यत्व धर्म दीखा और इन दोनो धर्मोंकी दृष्टि रखकर यदि सत् और परिणाम ऐसे दो नाम बता दिए हैं तो पूर्ण वस्तुके वे दो नाम नहीं हुए, किंतु द्वयात्मक वह वस्तु हुई । यो स्वय शङ्काकारके प्रस्तुत किए गए आशयसे विरोध हो जानेसे शङ्काकारके आशयका खण्डन हो जाता है । सत् और परिणामको केवल एक किसी भी नामसे कह देनेकी बातके समर्थनमे जिज्ञासुने अग्नि और वैश्वानरका दृष्टात दिया था । उसके सम्बन्धमे मूलमे यह पूछा गया कि नाम यो ही रख दिया या धर्मों की दृष्टिसे । यदि कहा जाय कि यो ही रख दिया, धर्मकी दृष्टि नही है, तो जब धर्म ही विदित नही हुआ तो धर्मी क्या रहा ? और धर्मकी दृष्टिसे रखे गए तो वह धर्म वस्तुमे भिन्न है या अभिन्न ? भिन्न माननेपर भी कुछ व्यवस्था नही बनती । अलग अलग ही है । किसका कौन धर्म कहलायेगा ? और अगर धर्मोको भिन्न मान लिया जाता तो मूल प्रश्न यह किया गया कि वह अभिन्नता सयोगरूप है या तादात्म्यरूप ? संयोगरूप अभिन्नता तो धर्मधर्मीके किसीने स्वीकार नही की और यो सयोगसे धर्म धर्मी कहलाने लगे तो यो तो सारा विश्व है, सब सर्वात्मक बन जायगा । और, यदि तादात्म्य रूपसे अभिन्न मान लिया जाता है तो कोई हानि नही है । यहाँ वस्तु है और उसका शाश्वत अस्तित्व है और वह निरन्तर परिणमता रहता है । तो परिणमनशीलता और शाश्वत अस्तित्व ये दोनो धर्म एक वस्तुमे निर्बाध रहते हैं । तब शङ्काकारका यह पक्ष कि सत् और परिणाम एक ही वस्तुके दो नाम है, वे नहीं रहते हैं । किंतु सत् परिणामात्मक वस्तु है, वस्तुका नाम कुछ और ही है । भले ही उसे किसी धर्मकी मुख्यतासे सत् कह दिया जाय किसी धर्मकी मुख्यतामे परिणामी कह देनेपर सत् और परिणाम दोनो स्वतन्त्र नही हैं और न ये दोनो निरपेक्षतया पर्यायवाची नाम कर सकते हैं ।

अपि चाकिञ्चित्कर इव सव्येतर गोविषाण दृष्टान्तः ।
सुरभि गगनारविन्दमिवाश्रयासिद्धदृष्टान्तात् ॥३७४॥

बाये दायें सीगकी तरह सत् और परिणामको माननेपर आश्रयासिद्धता का दोष—५ वे जिज्ञासुका यह प्रश्न था कि क्या दायें बायें सीगकी तरह सत् और परिणाम स्वतत्र चीज है। उस सम्बन्धमे यह उत्तर दिया जा रहा है कि यह दृष्टान्त सत् परिणामात्मक वस्तुको समझनेमे अकिञ्चितकर है क्योंकि दृष्टान्तमे जो बात कही गई है वहाँ आश्रय कुछ समझा जाता है। सीग है किसी बछडेके दायें और बाये, उनका आधार तो है बछडेका मस्तक, जिसमे दाये बायें सींग निष्पन्न हैं। तब सत् और परिणामका भी आश्रय मानना चाहिए कुछ, पर सत् और परिणामका आधार है सत् परिणामात्मक वस्तु कोई दो पदार्थ हो सत् और परिणाम, और उसके आधारभूत अलग कोई पदार्थ हो तब तो उसमे आश्रय आश्रयिता बतायी जाय। समझनेके लिए आश्रय आश्रयी बताना यह एक नयकी बात है पर ऐसे कोई तीन पदार्थ हो और उनमे एक पदार्थ कोई अलग हो, एक पदार्थ सत् हो और एक पदार्थ परिणाम हो जैसे यहाँ तीन बाते हैं दृष्टान्तमे, दाँया सीग अलग है बाँया अलग है और इसके आधारभूत मस्तक अलग है तो सत् और परिणामका आधार ही जब नही मान रहे तो आश्रयासिद्ध है अथवा दृष्टान्त भी आश्रयासिद्ध है क्योंकि दृष्टान्तमे भी कोई आधार स्पष्ट नही किया गया और प्रकृतमे तो कोई पृथक आधार है ही नही वस्तु और वह सत् परिणामात्मक है।

न यतः पृथगिति किञ्चित् सत्परिणामातिरिक्तमिह वस्तु ।
दीपप्रकाशयोरिह गुम्फितमिव तद्द्वयोरैक्यात् ॥ ३७५ ॥

सत् और परिणाम दीप व प्रकाशकी तरह गुम्फित होनेसे सत् और परिणामके अवबोधके लिये दायें बाये सीगका दृष्टान्त देनेकी असगतता—दायें और बाये सीगके दृष्टान्तको आश्रय सिद्ध यो कहा गया है कि सत् और परिणाम के अतिरिक्त स्वतत्र अन्य कोई वस्तु नही है जिसके आश्रयमे सत् और परिणाम रहे। जैसे कि दायें और बायें सीगका आधार पशुका मस्तक है इसी प्रकार सत् और परिणामका आधार कोई इन दोनोसे प्रतिकूल आधार हो ऐसा तो नही है, इस कारण आश्रयासिद्ध दोष है और आश्रयासिद्ध दोष होनेसे जैसे कोई कहे कि आकाश कमल सुगन्धित है तो सुगन्धितकी बात दिखाती कहाँ है ? उसका आधार तो कुछ है नही। आकाश कमल तो अदृष्ट हुआ करता है। जैसे आकाश कमल सुगन्धित हैं ऐसे कथनमे आश्रयासिद्ध दोष है। इसी प्रकार सत् और परिणाम दायें बायें सीगके समान है, ऐसा कहनेमे प्रकृतिमे भी आश्रयासिद्ध दोष होते हैं, तो सत्ता और परिणाम बायें और दायें सीगके समान नही है किन्तु जैसे दीपक और प्रकाशमे अभेद होनेसे ये दीप और प्रकाश गुम्फित हैं उसी प्रकार सत् और परिणाममे ऐक्य होनेसे एकता है, इस कारण वह परस्परमे तदात्मकपनेका परिणाम है और दीप प्रकाशकी तरह अभेदरूप

से गुम्फित है।

आमानामविशिष्ट पृथिवीत्वं नेह भवति दृष्टान्तः।
क्रमवर्तित्वादुभयोः स्वेतरपक्षद्वयस्य घातित्वात् ॥३७६॥

कच्चा और पक्का घडेका क्रमवर्तित्व होनेसे सत् और परिणामके सम्बन्धमे आमानामविशिष्ट घटके दृष्टान्तकी अयुक्तता—अब छठवें जिज्ञासुने सत् और परिणामके विषयमे यह जिज्ञासा प्रकटकी थी कि सत् और परिणाम कच्ची और पक्की मिट्टीकी तरह होगा। समाधानमे यह जानना चाहिए कि कच्ची और पक्की मिट्टी क्रमसे हुआ करती है। अब घडा बना तो पहिले कच्ची मिट्टीसे कच्चा ढाचा बनाया गया फिर ढाचा रखकर उसे पकाया गया तो कच्चा घडा पहिले था, बादमें पक्का बनता है, तो कच्चे और पक्के घडेमे क्रमवर्तीपना है और जब क्रमवर्तित्व आयगा दृष्टिमे तो यह दृष्टान्त फिर दोनो ही पक्षका घात करने वाला है। दिया गया था दृष्टान्त इसलिए कि कच्ची और पक्की मिटटीके समान सत् और परिणाम भी स्वतत्र सिद्ध हो जायगा किन्तु उल्टा और दोष आया शङ्काकारके कथनमे कि कच्ची और पक्की मिट्टी क्रमसे होती है। इस कारण यह दृष्टान्त दोनो पक्षोका घातक है। अब इस दृष्टान्तमे दोनो पक्षोका विघात किस तरह होता है इस बातको क्रमश बता रहे हैं।

परपक्षवधस्तावत् क्रमवर्तित्वाच्च स्वतः प्रतिज्ञायाः।
असमर्थसाधनत्वात् स्वयमपि वा बाधकः स्वपक्षस्य ॥३७७॥

सत् और परिणामको कच्चे पक्के घटकी तरह मान लेनेसे स्वपक्ष व परपक्ष दोनोका घात—शङ्काकारने दृष्टान्त द्वारा जो प्रतिज्ञा की है वह स्वभावसे क्रमवर्तीपनेकी समर्थक हो गयी। यद्यपि शङ्काकारका दृष्टान्त देते समय आशय तो यह था कि जैसे कच्चा घडा स्वतत्र अपने आपमे है, पक्का घडा स्वतत्र अपने आपमे है लेकिन कच्ची और पक्की तो अवस्थायें हैं ये पृथक पृथक द्रव्य तो नही हैं तो इस अवस्थापे क्रम पाया जाता है तो क्रमवर्तीपना इस प्रतिज्ञासे सिद्ध हुआ सो परपक्षका घात हो गया। यहाँ पर पक्षसे मतलब है सिद्धान्तकारका आशय। इस समय चूंकि सिद्धान्तकार शङ्काकारको समझा रहा है और उसके ही कथनसे उसके लिए पर पक्ष के निघातकी बात कह रहे हैं तो परपक्ष मायने सिद्धान्तका पक्ष। सिद्धान्त यह नही मानता कि सत् और परिणाममे क्रमवर्तीपना है लेकिन सिद्ध यह हो बैठता है दृष्टान्त द्वारा कि सत् और परिणाम भी क्रमवर्ती है, जैसे मानो सत् पहिले था और फिर परिणाम बना है। तो यो स्वपक्षका अर्थात् सिद्धान्तपक्षका घात होता है। और

शङ्काकारका जो निजपक्ष है कि वह स्वतन्त्र सिद्ध करना चाहता था सत् और परिणाम को भी दृष्टान्त खुद भी दे दिया कि जिससे स्वातंत्र्य सिद्ध न हो सके। कच्ची और पक्की अवस्था ये स्वतन्त्र चीज तो नही है, इनके आश्रयभूत एक घडा है जो घडा पहिले कच्ची अवस्थामे था अब पक्की अवस्थामे आया तो यह अवस्था स्वतन्त्र नही है ऐसे ही सत् और परिणाम भी स्वतन्त्र न ठहरेगे। तो स्वातंत्र्य सिद्ध करनेका शङ्काकारका पक्ष था, सो अब शङ्काकारका पक्ष भी नष्ट हो गया है। तब शङ्काकारका स्वयं कथन उभयपक्षके विघातके लिए बन गया।

तत्साध्यमनित्य वा यदि वा नित्य निसर्गतो वस्तु।
स्यादिह पृथिवीत्वतया नित्यमनित्य ह्यपक्वपक्वतया ॥ ३७८ ॥

एकान्तवादमे सत् और परिणामका स्वरूप बतानेके लिए दृष्टान्तकी असङ्गतता – तीसरी बात यह है कि शङ्काकार जो कुछ भी बतायगा या कि साध्य करेगा वह या तो अनित्य होगा या नित्य होगा। स्याद्वाद शासनका अनुसरण तो शङ्काकार करता नही है तब कुछ भी वस्तु बतायेंगे वह वस्तु या तो अनित्य होगा अथवा नित्य होगा। सो सर्वथा नित्य और अनित्य माननेपर अनेक दोष आते हैं। यदि सर्वथा अपरिणामी है तब उसमे बाहरी अर्थक्रिया ही नहीं हो सकती तब उसका व्यवहार क्या? उस पदार्थसे लाभ क्या? उसकी सत्ता भी न रहेगी। यदि पदार्थको सर्वथा अनित्य माना जा रहा है तो पदार्थ पहिले और पीछे तो होता ही नही। एक ही समयमे हुआ और नष्ट होगया। तो उस पदार्थसे भी अर्थक्रिया व्यवहार बंध मोक्ष ये सब कुछ नही ठहर सकते है। तो सर्वथा नित्य और सर्वथा अनित्य माननेसे अनेक दोष आते हैं, इस कारण सिद्ध यह हो बैठता है शङ्काकारके ही दृष्टातमे कि जैसे कच्चा और पक्का घडा, यह तो धर्म हैं अवस्था है, इस कारण अनित्य है और पृथ्वी सामान्य चूकि घडेकी स्थितिमे भी है और पक्व घडेकी स्थितिमे भी है इस कारण नित्य है। तो यो सुगमतया ही पदार्थ नित्यानित्यात्मक सिद्ध हो गया। इसी तरह सभी पदार्थोंको जानना चाहिए और सत् और परिणामके सम्बन्धमे यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि सत् जिस दृष्टिसे देखा जा रहा है उस दृष्टिसे नित्य सिद्ध होता है और परिणाम जिस दृष्टि से देखा जा रहा है परिणाम अनित्य है तो पदार्थ वहाँ अनित्य सिद्ध होता है। और सत् और परिणाम कोई पृथक–पृथक पदार्थ हैं न कि चलो कोई सत नामका पदार्थ नित्य हो गया और कोई परिणाम नामका पदार्थ अनित्य हो गया। यो निरपेक्ष भी नित्यानित्य नही है किन्तु सत् परिणामात्मक ही वस्तु है और वह नित्यानित्यात्मक है। यो शंकाकारका यह छठवाँ दृष्टान्त भी युक्तिसगत नही है बल्कि स्वयं ही सिद्धान्तका समर्थन करने वाला है।

अपि च सपत्नीयुग्म स्यादिति हास्यास्पदोपमा दृष्टिः ।
इह यदसिद्धविरुद्धानैकान्तिकदोषदुष्टत्वात् ॥३७६॥

सत् और परिणामका अवगम करनेके लिए सपत्नीयुग्मके दृष्टान्तकी अनुचितता ७ वें जिज्ञासुने सत और परिणामके विषयमे सपत्नीयुग्मका दृष्टान्त दिया था कि जैसे दो सपत्नियाँ क्रमसे आयी हुई हैं, क्रमसे उत्पन्न हुई हैं, पर वर्तमान मे एक साथ हैं और दोनो परस्पर विरुद्ध हैं और फिर भी एक जगह रहती हैं, इसी प्रकार सत परिणाम भी क्या क्रमसे उत्पन्न हुआ है और वर्तमानमें एक जगह रह रही हैं और एक दूसरेसे विरुद्ध होकर रह रही हैं, इस प्रकारकी जिज्ञासा प्रकट की थी पर यह दृष्टान्त यह कथन उस स्याद्वादके समान है क्योकि प्रकृतमे इस दृष्टान्तके मानने पर अशुद्ध, विरुद्ध और अनेकान्तात्मक ये तीन दोष उपस्थित होते हैं। ये तीन दोष किस प्रकार इस दृष्टान्तमें आते हैं उनका वर्णन आगे कर रहे हैं।

माता मे वन्ध्या स्यादित्यादिवदपि विरुद्धवाक्यत्वात् ।
कृतकत्वादिति हेतोः क्षणिकैकान्तत्कृतं विचारतया ॥३८०॥

सपत्नीयुग्म दृष्टान्तकी विरुद्धता व अनैकान्तिकता—सत और परिणामके विषयमे जो दृष्टान्त दिया था उस दृष्टान्तमे असिद्ध, विरुद्ध और अनेकान्तिक ये तीन दोष आते हैं। वे किस प्रकार दोष आते हैं सो सुनो। जैसे कोई कहे कि मेरी माता वन्ध्या थी तो उसका कथन विरुद्ध है कि नही ? है। तो जैसे उसमें विरुद्धता आती है इसी प्रकार सत् और परिणामको सपत्नी युगलके समान सिद्ध करना भी विरुद्ध बैठना है एकान्तमे ये दोष आ रहे हैं, जब सत् ही है अर्थात् शाश्वत् नित्य ही है तो परिणामका कथन कैसे युक्त होगा ? जब परिणाम ही है तो शाश्वतपनेकी दृष्टि कैसे सिद्ध होती है? स्वरूप चूंकि दोनो परस्पर विरुद्ध हैं इस कारण सर्वथा एकातवादमे विरुद्धताका दोष आता है। और, जैसे कृतकत्व हेतुमें अनैकान्तिक दोष है, जैसे कोई प्रयोग करे कि घट और पट सर्वथा भिन्न हैं कार्य होनेसे सपत्नीयुग्मके समान। तो यहाँ कृतकत्व हेतुसे घट और पटकी भिन्नता सिद्ध करनेके लिए दिया है लेकिन यही कृतकत्व हेतु तलु और पटमे अभिन्नपनेका भी समर्थन कर देती है। तो कर्तृत्व हेतुने साध्यके विरुद्ध बात सिद्ध कर दी, इस कारण अनेकान्त दोष आता है। यो ही सत् और परिणामको सपत्नीयुग्मके समान सिद्ध करनेमे भी अनेकान्तिक दोष आता है। सिद्ध तो यह करना चाह रहे थे कि कि सत् और परिणाम परस्पर विरुद्ध स्वरूप वाले हैं किन्तु सिद्ध यह हो जाता है कि सत् और परिणाम अविरुद्ध रूपसे एक पदार्थ मे रह रहे हैं, यह भी सिद्ध हो सकता, और एक सामान्य हेतु द्वारा जो साध्य बनाया वह भी सिद्ध हो सके इस कारण यह अनेकान्तिक दोषसे दूषित है।

सत् और परिणामकी तुलनामे सपत्नी युग्म दृष्टान्तकी असिद्धता।— सपत्नीयुग्मके दृष्टान्तमे असिद्ध नामका दोष इस प्रकार आता है कि जैसे प्रयोग किया जाय कि समस्त पदार्थ अनित्य है सर्वथा क्षणिक होनेसे सपत्नीयुग्मके समान। तो इस अनुमानमें जैसे असिद्ध दोष आता है उसी प्रकार सत् और परिणामको सपत्नीयुग्मके समान सिद्ध करनेमे असिद्ध नामका दोष आता है। स्थूलरूपमें समाधानका यह अभिप्राय है कि सत् और परिणाम दो सौत एक घरमे रहे, इस भाँति नही रहती, क्योंकि दृष्टान्त जो दिया गया है उनकी अनेक बातें भिन्न-भिन्न स्वतंत्र सिद्ध होती है। घर दोनो स्त्री पति आदिक बहुतसे पदार्थ भिन्न-भिन्न सिद्ध है और वहाका यह कथन है किंतु प्रकृतिमे कोई दो पदार्थ ही नही हैं अर्थात् सत परिणाम और इनका घर ऐसी कोई तीन चीजे नही हैं। कोई दो भी नही है किंतु पदार्थ वह एक है और वह एक पदार्थ सतपरिणामात्मक है अर्थात् शाश्वत है और क्षण क्षणमे परिणमन करने वाली है। तो ऐसे सत्परिणामात्मक पदार्थ कि सत और परिणाम इन दोनो धर्मोंको सपत्नीयुग्मकी तरह विरुद्ध रहकर एक जगह निवास करनेकी बात सिद्ध करना यह एक हास्यकी तरह बात है। सभी लोग स्पष्ट अनुभव करते है कि प्रत्येक पदार्थ है। वह प्रतिसमय नवीन अवस्थारूपमें प्रकट होता है और पुरानी अवस्थाको विलीन करता है और सब अवस्थाओमे ही बना रहता है। ऐसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक सत्परिणामात्मक प्रत्येक पदार्थमे सिद्ध है, वहाँ विरुद्धरूपसे रहे, स्वतत्र हो यह कोई बात सिद्ध नही।

तद्वाज्ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातृद्वैत विरुद्धदृष्टान्तः।
धर्मिणि चासति तत्वे तथाश्रयासिद्धदोषत्वात्॥ ३८१॥

सत् और परिणामके परिचयमे बडे छोटे भाईका दृष्टात देनेपर विरुद्धता व आश्रयासिद्धताका दोष ८वी जिज्ञासामे पूछा गया था, कि जैसे जेष्ठ और कनिष्ठ ये दो भाई परस्पर मेलसे रहते हैं क्या-इस प्रकार सत् और परिणाम ये परस्पर भिन्नतासे रहते हैं? क्या इसकी ऐसी तुलना है? उसके समाधानमे कहा जा रहा है कि जैसे पिछले दृष्टान्त अनेक दोषसे दूषित बता दिए गए, उसी प्रकार सत् और परिणामके सम्बन्धमे बडे और छोटे भाईका दृष्टान्त भी दूषित है। प्रथम तो बात यह है कि दृष्टान्त रूपसे छोटे बडे भाईको प्रस्तुत करना विरुद्ध है। विरुद्ध यो है कि छोटा भाई और बडा भाई ये दो क्रमसे होते हैं पहिले बडा होता फिर छोटा, किन्तु सत् और परिणामके सम्बन्धमे यह बात नही है। दोनो एक साथ ही हैं ऐसा शङ्काकारको भी इष्ट है और सिद्धान्त भी ऐसा ही है कि सत् और परिणाम दोनो एक साथ ही हैं लेकिन बडे और छोटे भाईका दृष्टान्त देनेसे सत् और परिणाममे भी क्रमवर्तीपना सिद्ध हो जाता है इस कारण छोटे-बडे भाईका दृष्टान्त विरुद्ध है। दूसरा दोष यह है कि सत् और परिणामको यदि बडा छोटा भाईके समान

माना जाता है तो छोटा भाई भी स्वतंत्र है परिपूर्ण है, अपने आपका अस्तित्व स्वतत्र रखता है। बडा भाई भी परिपूर्ण है, स्वतंत्र है, समान हकदार भी है पूर्ण स्वतत्रता है तो अब उन छोटे बडे भाईयोका कोई आश्रय है। माता पिताके आश्रयसे उत्पन्न होता है लेकिन सत् और परिणामका तो कोई तीसरा आश्रय नहीं है। वह तो एक ही वस्तु है और सत् परिणामात्मक है। किसी एक वस्तुसे सत् और परिणाम उत्पन्न हुए हो जैसे कि एक पितासे बडा और छोटा दो भाई उत्पन्न हुए हैं, इस तरह सत् और परिणामका कोई भिन्न आश्रय नही प्रतीत होता इस कारण यह दृष्टान्त आश्रयासिद्ध भी है।

अपि कोऽपि परायतः सोऽपि परः सर्वथा परायत्तात्।
सोऽपि परायतः स्यादित्यनवस्थाप्रसङ्गदोपश्च ॥ ३८२ ॥

सत् और परिणामके परिचयमे दिये गये बडे छोटे भाईके दृष्टान्तसे अनवस्था दोषका प्रसङ्ग— सत् और परिणामके विषयमे बडा छोटा बडे भाईका दृष्टान्त देने वालेके अभिमतमे अनवस्था दोष भी आता है जैसे बडे और छोटे भाईकी उत्पत्ति उनके माता पिताके आधीन है। तो माता पिताकी भी उत्पत्ति उनके माता पिताके आधीन है। अब दिया जा रहा है छोटे बडे भाईका दृष्टान्त, सत् परिणामके विषयमें तो यहां भी यह सिद्ध करना पडेगा कि सत् और परिणामको उत्पन्न करने वाला कोई पदार्थ है। प्रथम तो कोई पदार्थ है नही। कदाचित मान लिए जाए तो वहां भी यह प्रश्न है कि उस उत्पादक कारणको भी उत्पन्न करने वाला कोई पदार्थ होना चाहिए इस तरह अनवस्था दोष आ जायगा उत्पादक कारणकी कहीं भी समाप्ति न हो पायगी। इस तरह सत् और परिणाम तो छोटे बडे भाईके दृष्टान्त के समान यहाँ भी उत्पादक कारणोको ढूंढा जाता रहेगा तो कभी उत्तर समाप्त नही हो सकता इस कारण अनवस्था दोष भी आता है, अत सत् और परिणाम का मर्म समझनेके लिए छोटे बडे भाईका दृष्टान्त विरुद्ध और अनवस्थित एव आश्रयासिद्ध है।

सुन्दोपसुन्दमल्लद्वैतं दृष्टान्ततः प्रतिज्ञातम्।
तदसदसत्त्वापत्तेरितरेतरनियतदोषत्वात् ॥ ३८३ ॥

सत् व परिणामके परिचयमे सुन्द उपसुन्द मल्लका दृष्टान्त देनेकी अयुक्तता—अब ९ वीं जिज्ञासामें शङ्काकारने पूछा है कि सत् और परिणाम क्या सुन्द और उपसुन्द मल्लोकी तरह परस्पर प्रतिपक्ष है और एक दूसरेके आश्रयसे जीवित है। शङ्काकारके इस प्रस्तावमें अनेक दोष हैं। प्रथम तो इतरेतराश्रय दोष आनेसे सत्

और परिणाम दोनोका ही अभाव प्राप्त होता है। जैसे कि सुन्द और उपसुन्दको बताया गया कि सुन्द उपसुन्दके बलपर अस्तित्त्व रख रहे थे और सुन्द उपसुन्दके बल पर सत्त्व रख रहे थे याने पुद्गलमे कोई एक क्या क्रिया करेगा ? किसीकी क्रिया दूसरे पर आश्रित है। तो यो युद्धके प्रसंगमे सुन्द उपसुन्दकी क्रियाके आश्रित है और उपसुन्द सुन्दकी क्रियाके आश्रित है। ऐसे ही सत् और परिणाम जो मान लिए जावेगे तो सत् परिणामके आश्रित हो गया परिणाम सत्के आश्रत हो गया, फिर अस्तित्त्व किसका रहा ? सत् और परिणाम दोनोका अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है।

सत्युपसुन्दे सुन्दो भवति च सुन्दे किलोपसुन्दोऽपि ।
एकस्यापि न सिद्धिः क्रियाफलं वा तदात्मसुखदोपात् ॥३८४॥

सत् और परिणामके परिचयमे प्रस्तुत सुन्द उपसुन्द मल्लके दृष्टान्त से अनेक दोषापत्तियाँ उक्त कथनके विवरणमे कहा जा रहा है कि देखो उपसुन्द के होनेपर सुन्द होता है, और सुन्दके होनेपर उपसुन्द होता है, तो इस इतरेतराश्रय मे एककी भी सिद्धि नही हो सकती और न फिर कोई कार्य बन सकेगा न उसका कोई फल हो सकेगा। सुन्द और उपसुन्द मल्लोकी कथा एक पुराणमे इस प्रकार बतायी गई है कि शङ्कर जीके समयमे सुन्द और उपसुन्द जो बलिष्ट पुरुष थे। उन्होने बडी भक्ति की और उस भक्ति तपश्चरणसे शिव प्रसन्न हुए, जब सुन्द उपसुन्द मल्लोसे पूछा गया कि क्या चाहते हो ? तो उन मल्लोने एकदम पार्वती की माँग करली और पार्वती दे दी गई। अब पार्वतीके प्रति उन दोनोमे विवाद खडा हुआ। सुन्द और उपसुन्द दोनो हर तरहसे अपना अपना अधिकार बतायें, तो उस समय ब्राह्मण का भेष धरकर शङ्कर स्वय आये और उन दो मल्लोसे लडाईकी बात पूछी और तब मध्यस्थता उन्होने स्वीकार करली कि तुम लोगोका हम निर्णय कर देंगे। कुछ बयान लेते गए, और यह निर्णय दिया कि तुम दोनो क्षत्रिय हो इस लिए इसका निर्णय तुम दोनो स्वयं कर सकते हो युद्ध द्वारा। उन दोनोमे युद्ध प्रारम्भ करा दिया अब तो युद्ध द्वारा जो उनकी हालत हुई सो बताया गया कि दोनो ही प्राणरहित हो गए। तो कथानकसे दृष्टान्त यहाँ यह बताया जा रहा है कि जैसे सुन्द और उपसुन्द परस्पर विमुख थे और उनकी क्रियामे विमुखताके कारण एक दूसरेपर निर्भर था और अन्तमे सुन्द और उपसुन्द दोनो ही मृत हो गए तो ऐसा दृष्टान्त देना सत् और परिणामके बारेमे क्या क्या कल्पनायें बनेगी। प्रथम तो सत् और परिणाम परस्पर विमुख हैं, यह सिद्ध करना चाहा, पर विमुख कैसे ? भले ही सत्का स्वरूप द्रव्यरूप है और परिणामका स्वरूप पर्यायरूप है पर द्रव्यसे विमुख पर्याय नही है। पर्यायसे विमुख द्रव्य नही है एक ही वस्तुमे ये दो धर्म हैं और वही पदार्थ सत् परिणामात्मक है। दूसरी बात यह सिद्ध करना चाही कि जैसे सुन्द उपसुन्द एक दूसरेपर निर्भर हैं

इसी प्रकार सत् और परिणाम भी एक दूसरेपर सत् और परिणाम भी एक दूसरेपर निर्भर होगा। सत्के कारण परिणाम है। परिणामके कारण सत् है सो वस्तु तो एक ही है। दो हो तो इतरेतराश्रयकी आधीनता बताई जाय। और यदि युक्तिसे समझना चाहें तो ये कोई दोष नहीं हैं। यदि वस्तु परिणामी नहीं तो इसका अस्तित्व शाश्वत रह ही नहीं सकता। यदि कोई शाश्वत वस्तु न हो तो उसमे परिणाम हो ही नहीं सकता। यह इतरेतराश्रय क्या है ? यह तो पदार्थका स्वरूप है कि पदार्थ सत् परिणामात्मक होता है। तीसरी बात यह जाहिर की, जो चाहे शङ्काकारको इष्ट हो या न हो पर दृष्टान्तसे जाहिर होता है कि जैसे सुन्द और उपसुन्द दोनों परस्पर युद्ध करके मृत हो गए इसी प्रकार सत् और परिणाम दोनों ही परस्पर विमुख होकर लड भिडकर ये भी मृत हो जायेंगे। लो यो तो पदार्थका ही अभाव हो जायगा। तो सुन्द और उपसुन्दका दृष्टान्त देना सत् परिणामके सम्बन्धमें यह भी एक हास्यकी बात है। यह दृष्टान्त घटित नहीं होता।

सत् व परिणामके परिचयमें प्रदत्त परापर व पूर्वपश्चिम दिशाके कथनकी अयुक्तता—अब १० वीं जिज्ञासामें, यह कहा गया था कि सत् परिणाम पूर्व और पश्चिम दिशाकी भांति उनपर ऊपरकी भांति जेठा लहुरा निकट दूर आदिककी भांति उपचारसे है। अथवा जैसे पूर्व और पश्चिम दिशा अपेक्षासे है स्वयं कौनसी पूर्व दिशा है ? कुछ भी नहीं बतायी जा सकती। किन्तु सूर्यकी अपेक्षा लेकर कहा जाता कि यहाँ जिस ओरसे सूर्य उगे वह पूर्व है और पूर्वके जो विरुद्ध हो वह पश्चिम है। तो यो उपचार अथवा अपेक्षासे सत् और परिणामकी सिद्धि है, ऐसा १०वें प्रश्नमें कहा गया था। समाधान उसका यह है कि सत् और परिणामको पूर्वापर अथवा पूर्व पश्चिम दिशाकी भांति उपचारसे या अपेक्षासे मानना विरुद्ध बात है। जैसे पर और अपर जैसी चीजको अभी पर कहा गया है, किसी अपेक्षासे वही चीज अपर भी कही जा सकती है। जैसे बायें हाथकी ओर कोई मन्दिर है और सामने कोई मन्दिर है तो यह कह देते हैं कि सामनेका मन्दिर पर, बायें हाथकी ओरका मन्दिर अपर जब हम उस बायें हाथ वाले मन्दिरपर पहुँचते हैं तो वह पर और दूसरा अपर। तो पर अपर संज्ञा जिसको दी जाती है वह नियत नहीं है। इस कारण वह उपचारसे माना गया है। पर सत् और परिणाममें यह बात नहीं कि कभी सत्का विषयभूत तत्त्व परिणाम बन जाय और परिणामका विषयभूत तत्त्व द्रव्य बन जाय। नित्य और अनित्य धर्म अपने-अपने स्वरूपमें अपने आपको लिए हुए हैं, इस कारण सत् और परिणामका कथन उपचारसे नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार अपेक्षासे भी न कहा जा सकेगा। किसकी अपेक्षासे सत् और परिणाम यह नाम दिया गया अथवा इन दोनोंमें क्या सत्की अपेक्षासे परिणाम है या परिणामकी अपेक्षासे सत् है ? सत् नित्य धर्मको लिए हुए, परिणाम अनित्य धर्मको लिए हुए और फिर भी वह स्वतन्त्र नहीं

है। एक ही वस्तु इस प्रकारकी है कि जो नित्यानित्यात्मक है, तो पूर्व अपर दृष्टान्त एव पूर्व पश्चिमका दृष्टान्त सत और परिणामके स्वरूपको समझानेके लिये युक्ति-सङ्गत नही है। पदार्थ है वह ध्रुव है और परिणमनशील है। मूल बात तो यह है कि पदार्थ स्वत सिद्ध है और स्वत परिणमनशील है। जो सिद्धत्वकी दृष्टि है वह नित्यताको स्वीकार करती है और परिणमशीलताकी जो दृष्टि है वह अनित्यताको स्वीकार करती है। यो वस्तु स्वय ही ऐसा है कि वह अनादि अनन्त है फिर भी प्रतिसमय परिणमन करते हुए ही सत् रह पाता है और अनादि अनन्त अपना अस्तित्व रख सकता है। बस यही स्वरूप किसी भाषामे तो कहा ही जायगा उसे स्याद्वाद भाषामे स्याद्वाद शासनकी प्रणालीमे दर्शाया गया है उन्हे किसी भी एकान्त रूपसे माननेमे वस्तुकी स्वतन्त्रताकी सिद्धि नही हो सकती।

नार्थक्रियासमर्थो दृष्टान्तः कारकादिवद्धि यतः।
सव्यभिचारित्वादिह सपक्षवृत्तिर्विपक्षवृत्तिश्च ॥ ३८५ ॥

सत् और परिणामके सम्बन्धमे कारकद्वैत आधाराधेयके दृष्टान्तकी असङ्गतता—११ वी जिज्ञासामे शङ्काकारने यह कहा था कि सत् और परिणाम इस प्रकारसे हैं जैसे कि कारकाद्वैत होते हैं। घटमे जल है, जलमे घट नही है। जैसे यहाँ एक आधार है एक आधेय है। घट आधार है, जल आधेय है इसी प्रकार सत् और परिणाममे भी एक आधार है और एक आधेय है और इसमे आधार हो सकता है सत् उसमे पर्याये रहती है। यो सत् और परिणाम आधार आधेय न्यायसे घटमे जलकी तरह होगा, ऐसी शङ्काकारने अपनी बात रखी थी। समाधान उसका यह है कि सत् और परिणामके विषयमे कारक युग्मका दृष्टान्त कार्यकारी नही हो सकता, क्योकि यह दृष्टान्त सपक्ष और विपक्ष दोनोमे रहता है। और जो हेतु जो बात सपक्षमे भी रहे और विपक्षमे भी रहे वह सब व्यभिचारी है उससे किसी बातका निर्णय नही हो पाता। अब किसी प्रकारसे सपक्ष और विपक्षमे ये कारक युग्म रहते है, इस बातका वर्णन करते हैं-।

वृक्षे शाखा हि यथा स्यादेकात्मनि तथैव नानात्वे।
स्थाल्यां दधीति हेतोर्व्यभिचारी कारकः कथं न स्यात् ॥३८६॥

भेदपक्ष व अभेदपक्षमें कारकद्वैतके सभव होनेसे दृष्टातकी व्यभिचारिता वृक्षमे शाखा है, यह बात आधार और आधेयके ढङ्गसे कही गई है लेकिन यह बताये कि वृक्ष क्या अलग है और शाखा क्या वृक्षसे अलग है? वृक्ष और शाखा ये भिन्न भिन्न जगह चीज नही है। अगर शाखा न हो और वृक्ष फिर कुछ रह जाय तब तो

समझना चाहिए कि दूस आधार है और अलग वस्तु है पर ऐसा तो नहीं है। तो यह अभेद पक्षमें कारक युग्म रह गया, आधार आधेय भाव अभेदमें रह गया और दूसरा दृष्टान्त लीजिये ! जैसे कहा गया कि बटलोहीमें दही है, घडेमें दही है, तो यह है भेदपक्षका दृष्टान्त। घडा अलग है, दही अलग है फिर उनमें बटलोहीमें बटलोहीको बतलाया आधार और बटलोहीको आधेय, तो यों भेदमें भी आधार आधेयका व्यवहार होता है। तो जब आधार आधेय भेद अभेदमें भी रहता, भेदमें भी रहता तो आधार आधेय भावसे हम भेदको कैसे ग्रहण करलें ? जैसे सत् और परिणाम ये दो तत्त्व स्वतंत्र सिद्ध हो जायें। शङ्काकारका भाव था कि जैसे घटमें जल है तो जल भिन्न वस्तु है, घट भिन्न वस्तु है, फिर भी उनमें आधार आधेय भाव है और बल्कि यह आधार आधेय भाव घट और जलको स्वतन्त्र सिद्ध करते हैं। ऐसे ही सत् और परिणाममें चूंकि आधार आधेय भाव है, द्रव्यमें पर्यायें रहती हैं तो आधार आधेय भाव होनेसे ये दोनो स्वतन्त्र सिद्ध होते हैं, यह शङ्काकारका भाव था। जैसे घटमें जल है, यह दृष्टान्त देकर आधार आधेय सिद्ध करके दोनोको भिन्न भिन्न स्वतन्त्र सिद्ध करना चाहा है लेकिन आधार आधेय भाव भिन्न पदार्थमें ही व्यवहृत होता हो तब तो बात मान ली जाती कि आधार आधेय भाव सपक्षमें ही रहता है, किन्तु आधार आधेय भावमें भी देखा जाता है तो उस पक्षमें भी आधार आधेय भाव बन गया। तो यह विपय स ध्यकी सिद्धि करनेमें व्यभिचारी हेतु होगया। तब आधार आधेय भावको व्यवहार बनाकर सत् और परिणामको स्वतन्त्र सिद्ध नही किया जा सकता।

> अपि सव्यभिचारित्वे यथाकथञ्चित्सपक्षदक्षश्चेत् ।
> न यतः परपक्षरिपुर्यथा तथारिः स्वयं स्वपक्षस्य ॥ ३८७ ॥

सव्यभिचारी कारकद्वैत दृष्टान्तके पक्षमें उभयपक्षका घात – यदि यह कहा जाय कि कारक दृष्टान्त इसमें अव्यभिचारी बन गया अर्थात् आधार आधेयभाव जैसे अभेदमें भी रहता, भेदमें भी रहता, तो भेदमें रहनेकी बात तो सपक्षपनेके साथ और अभेदमें रहने लगे यह हुई विपक्षमें रहने की बात। सो भले ही भेदमें भी रहे आधार आधेय भेद और अभेदमें भी रहे पर भेदमें भी रहा आधार आधेयभाव तो पक्षका तो समर्थन हो ही गया। शङ्काकारका यह तर्क देना असंगत है क्योंकि आधार आधेय भाव भेदमें रह गया पर अभेदमें भी रह जाय, जैसे कि शङ्काकारने अभी स्वीकार कर लिया है तो वहाँ यह निर्णय तो न हो सका कि भेदमें ही आधार आधेय भाव हुआ करता है और जहाँ आधार आधेय भावकी प्रतीति हुई वहाँ भेद ही समझना चाहिए। यह बात तो नहीं बन सकती। और दोनों पक्षोमें रहनेके समान उस हेतुसे सपक्षकी बात कहकर साध्य सिद्ध करनेका जो आग्रह है वह जिस परपक्षका विघात करनेके लिए कदम उठाये वैसे ही स्वयंके पक्षका भी विघात हो जाता है।

आधार आधेय भाव बताकर स्वतत्र और भिन्न सिद्ध करना चाहते हैं तो आधार आधेय बताकर अभेदका दृष्टान्त देकर एक अभेद भी सिद्ध किया जा सकता है, इस कारण कारक युग्मका दृष्टान्त देकर सत् परिणामको स्वतन्त्र सिद्ध करना युक्ति सगत नहीं है।

साध्यं देशांशाद्वा सत्परिणामद्वयस्य सांशत्वम् ।
तत्स्वाम्येकविलोपे कस्यांशा अंशमात्र एवांशः ॥ ३८८ ॥

सत् और परिणामको किसीका अश बतानेकी असगतता –अथवा सत् और परिणाम इनको एक देशाश बताकर सत परिणाम दोनोको अशमात्र यदि सिद्ध करना हो तो कैसे सिद्ध कर सकेंगे क्योंकि उनका कोई आधार ही नहीं है। सत एक अश है, परिणाम एक अंश है, पर किसका अश है वह भी तो कोई तीसरी बात बताओ। तो कोई तीसरी बात विदित नहीं होती। वही वस्तु द्रव्य दृष्टिमे सतरूप दिख रहा है और पर्याय दृष्टिमे वही परिणाम मात्र दिखता है तो पदार्थ तो वह एक ही है। कोई पदार्थ अलग हो और फिर सत और परिणाम उसके अंश होते हो ऐसी बात तो नही है। तो शकाकार देशाशरूपसे सत और परिणाम दोनोंको साश सिद्ध करना चाहते हैं तो उनका आधार जब कुछ नहीं है तब फिर यह किसीमे अंश सिद्ध नही हो सकता। सत और परिणाम, द्रव्य और पर्याय ये किसके अश हैं, किसीके भी अश नहीं बल्कि यह कह कह सकते कि अशमात्र है वही अशी है और उसीके अंशरूप से देखें तो अशमात्र है। जैसे द्रव्य और पर्याय वस्तु द्रव्यात्मक है यह भी कहा जाता है पर वस्तु कोई अलग हो और उसमे द्रव्य रहता हो पर्याय रहती तो ऐसा तो नही है। वास्तवमें वस्तुके दो अश हुए ये द्रव्य और पर्यायें सो भी नही हैं, बल्कि अशरूपसे अगर देखते ही हो तो यो दिखेगा कि यह अशमात्र हैं किसी अशीके अश नही है एक वस्तुको जो कि अवक्तव्य है, अनुभव गम्य है उसे द्रव्यरूपसे कह दिया तो वह अश मात्र वर्णन हुआ। तो स्वय तो अशमात्र बन गए, पर ये किसीके अंश हो यह बात नहीं बनती। शकाकारके अभिप्रायमे इस कारक युग्मका दृष्टान्त देनेका भाव यह रहा कि सत और परिणाममे कोई एक आधार है और कोई दूसरा आधार है याने या तो सतका परिणाम रहता है या आधार है याने या तो सतका परिणाम रहता है या परिणाममें सत रहता है और ऐसा भी न माने कोई तो कोई इन दोनोका तीसरा आधार है। यो आधार आधेय भाव सिद्ध करनेका अभिप्राय शकाकारका है और इस सम्बन्धमे दृष्टान्त भी दिया, ख्याल भी किया, घटमे जल, लेकिन यहाँ आधार आधेय भाव अभेद पक्षमे भी घटित होता, भेदपक्षमे भी घटित होता, इस कारणसे यह प्रकृत मे भी उपयोगी नही है। और यह भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि सत् और परिणाम ये अश हैं और अंशी, इससे कोई पृथक है। तब इस सम्बन्धमें यदि कोई

सिद्धान्त बताते हो तो यह बताया जायगा कि वस्तु सन्मात्र है, अंशमात्र है। जब द्रव्य दृष्टिसे निरखा जा रहा तो पदार्थ द्रव्यात्मामात्र है। जब पर्याय दृष्टिसे पदार्थको निरखा जा रहा तो पदार्थमें अंशमात्र है। यो सत और परिणामको अंशात्मक भले ही सिद्ध करलो पर वस्तु कोई अलग हो और उसके ये अंश हो ऐसी बात यहाँ सिद्ध नही होती।

नाप्युपयोगी क्वचिदपि बीजांकुरवदिहेति दृष्टान्तः।
स्वावसरे स्वावसरे पूर्वापरभावभावित्वात् ॥ ३८९ ॥

बीज और अकुरके पूर्वापरभावी होनेसे दृष्टान्तकी असङ्गतता—अब ११ वी जिज्ञासामे सत् और परिणामके विषयमे बीज और अकुरका दृष्टान्त दिया गया है। वह दृष्टान्त भी सत् और परिणामके रहस्यको जतानेमे असमर्थ है, अनुपयोगी है, बिल्कुल विरुद्ध भी है। क्योंकि बीज और अकुर तो अपने-अपने अवसरमे होते हैं, इस कारण वह पूर्वापर भावाभावी है। पहिले बीज है उससे अकुर हुआ, और अकुर है उससे बीज हुआ। तो ये दोनो पूर्वापर कालमे होते हैं इस कारण यह दृष्टान्त प्रकृत बातके विरुद्ध भी पडता है। सत् और परिणाम एक ही कालमे हैं, उनमे यह विभाग नहीं है कि पहिले सत था बादमे पर्याय हुई है। तो बीज और अकुर का दृष्टान्त सत और परिणामके मर्मको बतानेके लिए अतीव अनुपयोगी है।

बीजावसरे नांकुर इव बीजं नांकुरक्षणे हि यथा।
न तथा सत्परिणामद्वैतस्य तदेककालत्वात् ॥ ३९० ॥

सत् और परिणाममे बिजाकुरके समान पूर्वापर भावित्वका अभाव—बीजके अवसरमे अकुर जैसे नहीं है ऐसे ही अकुरके समयमे बीज भी नहीं है, पर सत और परिणामके सम्बन्धमे यह बात कभी नहीं कही जा सकती कि सतके समयमें परिणाम नही होता और पर्यायके समयमें सत नही होता। द्रव्य और पर्याय सत और परिणाम ये दोनों ही एक समयमे पाये जाते हैं। तो कहाँ तो सत परिणाम एक समय मे अविरोधरूपसे वस्तुका ही स्वरूप बनाने वाला ज्ञान है और किसी बीज अकुरका दृष्टान्त जो कि भिन्न-भिन्न कालमे है, बीजके समय अकुर नहीं, अकुरके समय बीज नहीं ऐसा भिन्न काल वाला दृष्टान्त दिया जाता है। दृष्टान्तमें जो बात स्पष्ट घटित और विदित होती है दृष्टान्तमे वही बात शीघ्रतासे लगायी जाती है। तो बीजांकुरमें पूर्वापर समयमे होनेकी बात स्पष्ट है। उस दृष्टान्तसे तो सत और परिणाममें यही सिद्ध होगा कि यह भी पूर्वापर भावी है। सत पहिले हो, पर्याय बादमे हो या पर्याय पहिले हो सत बादमे हो। लेकिन सत और परिणाममे पूर्वापरभाविता एकदम सिद्ध

है। यदि यह कल्पना की जा सकती है कि इस लोकमें सबसे पहिले शाश्वत द्रव्य था, पर्याय न थी पर्याय तो उसके बाद उत्पन्न हुई है। तो इसका अर्थ यह होगा कि सर्वप्रथम द्रव्य समयमें पर्यायरहित द्रव्य था सो पर्यायरहित द्रव्यका कोई सत्त्व ही नहीं, अथवा यह माना जाय कि सर्वप्रथम पर्याय थी उससे द्रव्य निकला है, तो इस बातको थोड़ा भी विवेकी हो वह भी नहीं मान सकता कि सर्वप्रथम अवस्था थी। उससे फिर द्रव्य शाश्वत तत्त्व प्रकट हुआ। दोनो ही अनादिसे हैं और इसी धारा रूपमें अब तक चलते आये हैं। उन धाराओंमें हम देखते हैं कि मालूम ऐसा पड़नेपर भी कि किसी एक सत द्रव्यसे पर्यायें निकली हैं फिर भी परिणाम सतसे निकला हुआ नहीं कहा जा सकता। सत और परिणाम अनादि कालसे हैं एक ही समयमें हैं और दोनो ही परस्पर गुम्फित हैं। सीधा यों कहो कि वस्तु सतपरिणामात्मक है।

सदभावे परिणामो भवति न सत्ताक आश्रयाभावात्।
दीपाभावे हि यथा तत्क्षणमिव दृश्यते प्रकाशो न ॥ ३६१ ॥

सत् और परिणाममें सत्का अभाव माननेपर परिणामके अभावका प्रसङ्ग- जिस प्रकार दीपकका अभाव होनेपर फिर प्रकाश नहीं दिखाई देता क्योंकि आश्रय नष्ट होगया। तो यों यदि सत्का अभाव होगया तो आश्रयका अभाव होनेसे परिणामका भी सद्भाव नहीं हो सकता। बीजाकुरके दृष्टान्तमें शङ्काकारका यह कहना था कि सत और परिणाम बीज अकुरकी तरह होगए। जिससे ध्वनित यह हुआ कि जैसे बीजके नष्ट होनेपर अकुर होता है और अंकुरके नष्ट होनेपर बीज होता है अथवा ये अपने-अपने समयमें हैं यों ही सत और परिणाम भी पूर्वापर बन गए। तो जब सत न रहा तो परिणाम कहांसे आयगा ? तो सतके अभाव होनेपर परिणामका भी अभाव बन बैठेगा। क्योंकि देखा ही जारहा है कि प्रकाशका आधार दीपक है और दीपक न रहे तो प्रकाश नहीं रहता। यहां भिन्न आधार आधेयकी बात चल रही है। सत और परिणाममें यदि आधार आधेयपना बन सकता है या आश्रय आश्रयीपना पूछा जा सकता है तो वह दीप और प्रकाशकी तरह देखा जा सकता है। जल घटमें है इस भांति परिणाम सतमें है न सोचा जायगा, क्योंकि वहां पृथक पृथक दो पदार्थ हैं, जल और घट तो जल घटकी तरह सत और परिणाममें आश्रयकी बात नहीं निरखी जा सकती। हां दीपक और प्रकाश ये दो अलग पदार्थ नहीं हैं इस कारण दीप और प्रकाशकी भांति सत और परिणाममें आश्रय आश्रयीकी बात निरखी जा सकती है। सो जैसे दीपकके बुझनेपर प्रकाश नहीं रहता यों ही सत्का अभाव होनेपर परिणाम भी न रह सकेगा।

परिणामोभावेऽपि च सीदति च नालम्बते हि सत्तान्ताम्।
स यथा प्रकाशनाशे प्रदीपनाशोऽप्यवश्यमध्यक्षात् ॥ ३६२ ॥

परिणामका अभाव होनेपर सत्‌के अभावका प्रसङ्ग — परिणामके अभाव होनेपर भी तो सत् सत्ताका परिणाम प्राप्त नहीं रह सकता। जैसे कि दीपकका नाश होनेपर प्रदीपका नाश आवश्यक है यह बात अब अभिन्न आश्रयके अभावमें ही बिना आधारके बात बतला रहे हैं। जैसे ज्ञान न हो तो आत्मा नहीं रह सकता, जैसे प्रकाश न हो तो दीप नहीं रह सकता। दीप और प्रकाशका दृष्टान्त यहाँ उपयोगी है क्योंकि देखा जाता है कि जहाँ प्रकाश नहीं है वहाँ दीपक नहीं। तो इसी प्रकार परिणामका अभाव होनेपर सत् भी नहीं रह सकता। शंकाकारकी शङ्कामें यह बात थी कि बीज अंकुर जैसा सत् परिणाम होता है। कहनेको तो सीधा शीघ्र कह दिया पर उसका धर्म देखा जाय तब तुलनामें अन्तरात्मा होता है। बीज और वृक्ष ये अपने-अपने समयमें होते हैं। बीजके कालमें वृक्ष नहीं अंकुर नहीं। अंकुरके कालमें बीज नहीं। तो यों ही सत् परिणाममें बात आ जाती कि जब सत है तब परिणाम न होगा, जब परिणाम है तब सत् न होगा। और दूसरी रीतिसे इसे यों समझें कि सत्‌का अभाव होनेपर परिणाम होगा, परिणामके अभाव होनेपर सत् होगा लेकिन बात यहाँ ऐसी होती ही नहीं, बल्कि सतका अभाव होनेपर परिणामका भी अभाव है और परिणामका अभाव होनेपर सतका भी अभाव, और उसके लिए दीप, प्रकाशका दृष्टान्त है, क्योंकि सत् परिणाम भी अभेद एक वस्तुरूप हैं और दीप प्रकाश भी अभेद एक पदार्थरूप है। तो ऊपरकी गाथामें कहा गया था कि सतका अभाव होनेपर परिणाम क्यों नहीं रहता? यहाँ कह रहे हैं कि परिणामके अभावमें सत् भी नहीं ठहर सकता।

अपि च क्षणभेदः किल भवतु यदीहेष्टसिद्धिरनायासात् ।
सापि न यतस्तथा सति सतो विनाशोऽसतश्च सर्गः स्यात् ।३६३।

सत् और परिणाममें क्षणभेद माननेपर सत्‌के विनाश और असत्‌के उत्पादका प्रसङ्ग—यदि शंकाकार यहाँ यह कहे कि कालभेद मान लेनेपर तो अनायास ही इष्ट सिद्धि बन जायगी। जैसे बीजांकुरमें कालभेद है ऐसे ही सत और परिणाममें कालभेद है। तब भाव अभावके विकल्पकी बात कुछ न रहेगी, ऐसा कथन भी युक्त नहीं है, क्योंकि सत और परिणाममें कालभेद नहीं है। यदि सत परिणाममें कालभेद माना जाता है तो सतका विनाश और असतका उत्पाद सिद्ध हो जायगा। और सतका विनाश नहीं, असतका उत्पाद नहीं। बीज और अंकुरमें समयभेद है पर बीजांकुरके समयभेदकी तरह सत परिणाममें समयभेद नहीं कहा जा सकता। सत परिणामात्मक पदार्थ उसी समय सद्भूत वस्तु है और वही उसी समय परिणाम रहा है। परिणमता हुआ रहकर ही वह शाश्वत रह सकता है और जो शाश्वत होगा वही तो परिणमता रहेगा। तो वस्तु सत परिणामात्मक है और सत एवं परिणाम दोनों ही एक समयके धर्म हैं, इस कारण सत और परिणामको बीजांकुरकी तरह मानना युक्त

नहीं। न तो बीजांकुरकी भांति सत परिणाम पूर्वापरभावी है और न सत परिणाम बीजांकुरकी भांति समयभेदमें है और बीजांकुरकी भांति एकसे दूसरा निकला हो, यह भी बात नहीं है किंतु वस्तु ही सदैव सतपरिणामात्मक हुआ करती है। अतः बीजांकुरका दृष्टांत सतपरिणामके स्वरूपको जाननेके लिए अनुपयुक्त है।

कनकोपलवदिहैषः क्षमते न परीक्षितः क्षणं स्थातुम्।
गुणगुणिभावाभावाद्यतः स्वयमसिद्धदोषात्मा ॥ ३९४ ॥

सत् और परिणामके परिचयके सम्बन्धमें कनकोपल दृष्टांतकी असङ्गतता—सत् और परिणामके विषयमें कनकोपलका दृष्टान्त भी परीक्षा करनेपर क्षणमात्र नहीं ठहर सकता। कनकोपलमें गुण गुणी भाव नहीं है। इस कारण वहां स्वयं असिद्ध नामका दोष आता है। इस प्रसङ्गमें सत् परिणामात्मक वस्तु सिद्ध की जाना योग्य है। उसकी सिद्धिमें कनकोपलका दृष्टान्त यों युक्ति सगत नहीं होता कि वहां कनक और पाषाण दो द्रव्य सम्मिलित हैं। सत् और परिणाम ये दो द्रव्य नहीं हैं, इसका सम्मेलन है किन्तु वस्तु ही स्वयं सत् परिणामात्मक है। स्वर्ण जिन अणुओं मे है, जिन रूपोंमें है वह स्वर्ण है और वह पाषाण मिट जाना अणुओं मे है व उनमें है। खानमेंसे जो स्वर्ण पाषाण बनता है विधिसे तपानेपर समझिये कि १० मनके पत्थरपर एक तोला स्वर्ण निकला पर जो विधिपूर्वक एक तोला सोना निकला उसे अगर व्यक्तरूपसे रखा गया, उसके अणु अणुमें १० मनके पाषाणमें यत्र तत्र पडा हुआ था और इतने अव्यक्तरूपमें पडा था कि उसे सस्कृत किए विना वह स्वर्ण अणु प्रकट नहीं हो सकता था। तो कनक और अपल ये दोनों द्रव्य जो स्वतत्र हैं। मिले हुए हैं एक पिण्डमें यों सत् और परिणाम स्वतत्र हो, द्रव्य हो और फिर मिले हुए हो, एक पदार्थमें ऐसा नहीं है।

हेयादेयविचारो भवति हि कनकोपलद्वयोरेव।
तदनेकद्रव्यत्वान्न स्यात्साध्ये तदेकद्रव्यत्वात् ॥ ३९५ ॥

कनकोपलमें हेयादेय विचारकी तरह सत् और परिणाममें हेयादेय विचारका अनवकाश—कनक और पाषाणमें यह विचार चलता है कि कोई एक हेय है कोई एक उपादेय है, कौन हेय और कौन उपादेय है, ये दोनो स्वतत्र द्रव्य हैं ना। यद्यपि लौकिक इच्छाके हिसाबसे उपलका अंश हेय है और स्वर्ण अंश उपादेय है, किन्तु यहां इस लौकिक हेय उपादेयकी बात नहीं कही जा रही, उसमें कोई स्वार्थ का कारण है। पर यहां न्यायके अनुसार यह बात कही जा रही कि स्वरूप दृष्टिसे जब दोनोकी समानता है कनक भी स्वतत्र है, पाषाण भी स्वतंत्र है तो जब दोनोकी

स्वतन्त्रता है तो उसमें अब कौन हेय और कौन उपादेय होगा ? किसी एकको हेय बतानेपर यह प्रश्न रहेगा कि वह क्यो नही हेय रहा ? तो कनक और पाषाणमें यह विचार चलेगा, कि कौन हेय है कौन उपादेय है, क्योंकि वह स्वतंत्र द्रव्य है, परन्तु ऐसा विचार इस प्रगतिसे न चल सकेगा, क्योंकि सत् परिणामात्मक एक द्रव्य है। वहाँ दो स्वतंत्र चीजे नही हैं–सत् और परिणाम जिससे कि वहाँ यह विचार चल सके कि परिणाम हेय है सत् उपादेय है या सत् हेय है परिणाम उपादेय है। नीतिके अनुसार बात कही जा रही है, वहाँ जो लौकिक प्रयोजनमें उपलको हेय और कनकको उपादेय मान लिया जा सकता है। तो यहाँ भी अलौकिक प्रयोजनकी सिद्धिमे जिस पुरुषको विनश्वर तत्त्वमे रुचि नही किन्तु अविनाशी सहजतत्त्वमें रुचि है, वह पर्याय को हेय समझेगा और द्रव्यको उपादेय समझेगा। पर्यायको हेय न समझेगा किन्तु पर्यायपर दृष्टि करनेको हेय समझेगा और द्रव्यपर, स्वरूपपर दृष्टि करना उपादेय समझेगा। तो यह भी उसके प्रयोजनकी ही बात है, किन्तु स्वतन्त्रताके नातेसे सत् और परिणाममें कौन हेय होगा कौन उपादेय होगा यह निर्णय न किया जा सकेगा सो सत् और परिणाम इस तरहके स्वतन्त्र हैं ही नहीं। एक ही वस्तु सत् परिणामात्मक है। अतः कनक पाषाणका दृष्टान्त सत् परिणामात्मक वस्तुका समर्थक नहीं बन सकता इस कारण यह दृष्टान्त असिद्ध है।

वागर्थद्वयमिति वा दृष्टान्तो न स्वसाधनायालम्।
घट इति वर्णद्वैतात् कम्बुग्रीवादिमानिहास्त्यपरः ॥३६६॥

सत् और परिणामके परिचयके सम्बन्धमे वचन व अर्थके दृष्टान्तकी असगतता १४ वी जिज्ञासामें वचन और अर्थका दृष्टान्त बताया गया था कि सत् और परिणाम वचन और अर्थकी तरह होगा। सो वह दृष्टान्त साध्यकी सिद्धि करने में समर्थ नही है, क्योकि घट इन दो वर्णोंमे वह पदार्थ घट जो मिट्टीका बना हुआ है वे दोनो चीजें हैं। पर सत् और परिणाममें ऐसा नही है कि सत्से भिन्न चीज परिणाम हो। दृष्टान्तमे वचन और अर्थकी बात कही जा रही थी। वचन हुआ वह शब्द जो अर्थका सकेत करता है और अर्थ हुआ वह मृत घट सो वचनसे घट भिन्न है, यो सत्से परिणाम भिन्न नही है अतएव वचन और अर्थका दृष्टान्त साध्यकी सिद्धि करने में समर्थ नहीं है।

यदि वा निःसारतया वागेवार्थः समस्यते सिद्धयै।
न तथापीष्टसिद्धिः शब्दवदर्थस्याप्यनित्यत्वात् ॥३६७॥

वचन और अर्थ कर्मधारय समास करके दृष्टान्त बनानेमे शब्दकी अर्थ

की अनित्यता सिद्ध हो जानेसे इष्टसिद्धिका अभाव–जो दृष्टान्त निसार बताया गया उक्त गाथामे उस वचन अर्थके दृष्टान्तसे सत् और परिणामका मर्म नही समझा जा सकता है। अब यदि शङ्काकार वचन और अर्थ इन दोनोमे वचन ही अर्थ है ऐसा समास करके बोले और वचन और अर्थ दोनोको अभेद करले तब भी इष्टकी सिद्धि नही होती। यदि यो कह दिया कि वचन ही अर्थ है तो जैसे वचन अनित्य है वैसे ही अर्थ भी अनित्य बन बैठेगा। यहाँ वचन और अर्थके दृष्टान्तको दो प्रकारसे रखा गया है। एक भेद पक्षकी पद्धतिसे, दूसरा अभेद पक्षकी पद्धतिसे। सो वचन और अर्थ यदि भेद पद्धतिमे लिए जायें तो सत् परिणाम चूकि भिन्न भिन्न नही है इसलिए वह दृष्टान्त उसका समर्थक नही बन सकता और वचन ही अर्थ है ऐसा कहकर वचन और अर्थका दृष्टान्त सत् परिणामको सिद्ध करनेके लिए बनाया जाय तो यह भी युक्ति सगत नही बनता क्योकि ऐसा माननेपर जैसे वचन अनित्य है इसी प्रकार पदार्थ भी अनित्य हो जायगा। यो १४ वी जिज्ञासामे सत और परिणामको वचनार्थकी तरह बतानेका प्रयास किया था वह युक्तिसङ्गत नही है किंतु ऐसा ही मानना होगा कि कोई वस्तु सत् है वह स्वय ही सत् परिणामात्मक है, क्योकि सत् स्वत सिद्ध होता है और स्वत. परिणामी होता है। ऐसा माने बिना भेद दृष्टि करके शक्ति पर्याय द्रव्य सब त्रुटित करके स्वतन्त्र द्रव्य मान लेना जैसा एकान्त प्राप्त हो जायगा, इससे वस्तु को स्वत सिद्ध मानना और स्वतः परिणामी मानना ही युक्त है।

स्यादविचारितरम्या भेरीदण्डवदिहेति सदृष्टिः।
पक्षाधर्मत्वेपि च व्याप्यासिद्धत्वदोषदुष्टत्वात्॥ ३९८॥

सत् और परिणामके परिचयमे भेरीदण्डके दृष्टान्तकी अयुक्तता-१५ वें जिज्ञासुने भेरी दण्डका दृष्टान्त दिया था कि जैसे भेरी और दण्ड दोनोके सयोगसे विवक्षित कार्यसिद्धि होती है इसी प्रकार सत और परिणामके सयोगसे ही विवक्षित सिद्धि होती है, यह दृष्टात भी बिना विचारे ही कहा गया है क्योकि पक्ष धर्मका अभाव होनेसे यह स्वयं व्याप्य असिद्ध दोषसे दूषित है। भेरी और दण्ड जिस प्रकार सयोग होकर कार्यकारी हैं, हैं अलग-अलग पर अलग-अलग रहकर न भेरीसे कषाय बनती है न दण्डसे, किंतु भेरी और दण्डका संयोग होनेपर ध्वनि होना, ध्वस होना, जो कि विवक्षित कार्य हो वह सिद्ध होता है। इस तरह सत और परिणाममे नही कह सकते। सत और परिणाम जुदे-जुदे पदार्थ हो फिर उनका सयोग हो और उससे फिर कोई अर्थक्रिया हो, ऐसा यहाँ है ही नही, क्योकि सत और परिणामका परस्परमे तादात्म्य सम्बन्ध है। जब कोई दण्डके समान सत परिणामको सिद्ध करने चलेगा तो व्याप्यमे सिद्ध दोष आता है याने जो बात भेरी दण्डामें बता रहे हैं वह प्रकृतमें है ही नहीं, इस कारण भेरी डण्डाका दृष्टान्त अयुक्ति सङ्गत है।

युतसिद्धत्वं स्यादिति सत्परिणामद्वयस्य यदि पक्षः ।
एकस्यापि न सिद्धिर्यदि वा सर्वोऽपि सर्वधर्मः स्यात् ॥३९९॥

भेरीदण्डकी तरह सत् और परिणामको युतसिद्ध माननेपर विडम्बना का वर्णन - अब सत् और परिणामके सम्बन्धमें भेरी दण्डका दृष्टान्त देने वाले यदि यों कहते हैं कि दोनों पृथक्-पृथक् सिद्ध हैं, सो जैसे भेरी और दंड न्यारे-न्यारे दो पदार्थ हैं इसी प्रकार सत् और परिणाम ये भी न्यारे-न्यारे दो पदार्थ स्वीकार किए जाते हैं। उस तरहसे भी सिद्धि नहीं होती। परिणामस्वरूप हुए बिना है क्या, सत्-स्वरूप हुए बिना परिणाम किसका ? सो दोनोंको पृथक् सिद्ध माननेपर सत् और परिणाम इनमेंसे एककी भी सिद्धि नहीं होती। और यदि युतसिद्ध होनेपर भी सत् परिणामको एक जगह मानकर अर्थक्रियाकी बात कही जाय और कुछ सम्बन्ध लिया जाय तो सभी पदार्थ समस्त धर्म वाले सिद्ध हो जायेंगे क्योंकि जब पृथक् सिद्ध हैं उनमें यह विभाग तो नहीं बनता कि कौन किसका धर्म है, कौन किसका धर्मी है ? यदि कहोगे कि सत्में परिणाम रहता सो कोई यह नहीं कह सकता कि परिणाममें सत् रहता और सत् और परिणामके अतिरिक्त जो कुछ भी हो उसमें भी सत रहता, तो पृथक् सिद्ध माननेपर वस्तु स्वरूपकी व्यवस्था नहीं बन सकती और पृथक् सिद्ध होनेपर भी फिर भी स्वरूप व्यवस्था बनानेका यत्न करेंगे तो सभी पदार्थ सभी धर्म वाले सिद्ध हो जायेंगे, इस कारण प्रकृतमें जो भेरी दण्डका दृष्टान्त दिया गया है वह उपयोगी नहीं है। तब भेरी दंडके समान सत् परिणामको पृथक् पृथक् मानना असंगत है और भेरी दण्डसे जिसका कार्य हुआ मानो इस तरह सत् और परिणामके संयोगसे कार्य होना है ऐसा मानना भी गलत है।

इह पदपूर्णन्यायादस्ति परिक्षाक्षमो न दृष्टान्तः ।
अविशेषत्वापत्तौ द्वैताभावस्य दुर्निवारत्वात् ॥४००॥

पदपूर्णन्यायवत् सत् और परिणामको माननेपर द्वैताभावका प्रसङ्ग - सत् और परिणामके परिचयमें पदपूर्ण न्यायका दृष्टान्त भी अयुक्त है इस कारण कि तब तो दोनोंमें ही अविशेषताकी आपत्ति आती है, और अविशेषता होनेपर द्वैतका अभाव दुर्निवार होता है अर्थात् वहाँ फिर दो चीजें ही नहीं रहती। पदपूर्ण न्यायमें यह बताया गया था कि जिस किसी वाक्यमें कोई पद उदासीनरूपसे कहा जाता है जैसे कि रुचि हो और उस एकके कहनेसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है, इस तरह सत् और परिणाममें भी यदि एकको उदासीन मानकर कार्यकी सिद्धि मानते हैं तो उदासीनताके मायने यह है चाहे यह कहलो, चाहे दूसरेको कहलो, याने चाहे सत्

कहलो, चाहे परिणाम कहलो दोनोंमें समानता आ जाती है और जब दोनोंमें कोई विशेष न रहा तो वे दो क्यों रहे वे सब एक ही बन गए। दूसरी बात दोषकी यह उपस्थित होती है जिसे कि अगली गाथामें कह रहे हैं।

अपि चान्यतरेणविना यथेष्टसिद्धिस्तथा तदितरेण।
भवतु विनापि च सिद्धिः स्यादेवं कारणाभावश्च ॥४०१॥

पदपूर्णन्यायवत् किसी एकसे इष्टसिद्धि माननेपर कार्यकारणके अभावका प्रसङ्ग—दूसरा दोष यह है कि जिस प्रकार किसी एकके विना इष्टकी सिद्धि हो जाती है उसी प्रकार उससे भिन्न दूसरेके विना भी इष्टकी सिद्धि हो जाना चाहिए और कार्य कारणका अभाव ही जायगा। पदपूर्ण न्यायमें यह बताया गया था कि किसी एक पदके देनेसे काम बन जाता है दोनोंकी आवश्यकता नहीं रहती। यदि ऐसे सत् और परिणामको माना जायगा तो दोमेंसे कोई भी शेष न रहेगा। अथवा दोमेंसे कोई एक शेष रहेगा। बात ऐसी नहीं है, सत् और परिणाम इन दोनोंमेंसे किसी एकका भी त्याग नहीं किया जा सकता। वह तो तादात्म्य सम्बन्धसे रहता है, सत् न माननेपर परिणाम कुछ भी नहीं रहता। परिणाम न माननेपर सत् कुछ भी नहीं रहता। सत् परिणामात्मक ही पदार्थ है इस कारण पदपूर्ण न्यायसे दृष्टान्त देना सत् परिणामके परिचयके लिए बिल्कुल निसार बात है, क्योंकि यहाँ ऐसा नहीं है कि सत् और परिणाममें किसी एकको उदासीन कर देवे तो विवक्षित कार्य बन जाय। वस्तु सत् परिणामात्मक है, द्रव्य पर्याय स्वरूप है।

मित्रद्वैतवदित्यपि दृष्टान्तः स्वप्नसन्निभोहि यतः।
स्याद्गौरवप्रसङ्गाद्धेतोरपि हेतुहेतुरनवस्था ॥४०२॥

सत् और परिणामको मित्रद्वैतके समान एकको प्रधान व दूसरेको सहकारी माननेपर अनवस्था—पंच १७ वीं जिज्ञासामें शङ्काकारने यह प्रकट किया था कि सत् और परिणाम दो मित्रके समान हैं। जैसे दोनों मित्रोंमें एक मुख्य होता है दूसरा सहकारी होता है ऐसे ही सत् और परिणाममें कोई एक मुख्य है और दूसरा सहकारी है। यह दृष्टान्त भी स्वप्नके समान केवल प्रलापमात्र है क्योंकि प्रथम तो इसमें गौरव दोष आता है। दूसरा अनवस्था दोष आता है। जैसे सत् और परिणाममें किसी एकको प्रधान मान लिया, दूसरेको सहकारी कारण माना तो प्रधानमें कार्य करनेकी जो क्षमता आयी है वह सहकारी कारणके क्षमतासे आयी है। तब सहकारी कारणमें यह क्षमता कैसे आ गई कि वह प्रधान कारणमें कार्यकी योग्यता ला देवे। उसके लिए फिर दूसरा हेतु मानना होगा। फिर उस हेतुमें भी यह प्रश्न होगा कि

इसमें भी दूसरेमें भी कार्य क्षमता लानेकी योग्यता कैसे आयी उसके लिए अन्य कारण मानना इस तरह उत्तरोत्तर हेतुकी कल्पना करते चले जायेंगे, कहीं भी समाप्ति नहीं हो सकती है। अतः भिन्नाद्वैतके समान सत् परिणामको समझनेमें गौरव और अनवस्था दोष आता है।

तदुदाहरणं कश्चित् स्वार्थं सृजतीति मूलहेतुतया ।
अपरः सहकारितया तमनु तदन्योऽपि दुर्निवारः स्यात् ॥४०३॥

भिन्नाद्वैतवत् परिणामको माननेपर आने वाले अनवस्था दोषका विवरण — उक्त अनवस्था दोषका विवरण इस प्रकार है कि भिन्नाद्वैतमें यह ही कल्पना की गई थी कि कार्य करने वाला एक है दूसरा भिन्न सहकारी है। तो जो कार्य करने वाला है वह कहलाया उपादान कारणके समान, और जो दूसरा सहकारी है वह हो गया सहकारी तो कोई उपादान कारण बनकर कार्यको उत्पन्न करे और दूसरा सहकारी बनकर उस कार्य क्षमताको उत्पन्न करे तो इसके बाद उस द्वितीय सहकारी कारणमें जो कार्यक्षमता उत्पन्न करनेकी योग्यता हुई वह किसके द्वारा हुई? उससे भिन्न और कोई कारण मानना होगा। यों उत्तरोत्तर कारणोंकी कल्पना करने पर अनवस्था दोष आता है।

कार्यं प्रतिनियतत्वाद्धेतुद्वैतं न ततोऽतिरिक्तं चेत् ।
तन्न यतस्तन्नियमग्राहकमिव न प्रमाणमिह ॥ ४०४ ॥

उक्त अनवस्थादोष मेटनेके लिए कार्यके प्रति दो ही हेतुओंका नियम बनानेका शंकाकारका व्यर्थ प्रयास — अब शंकाकार उक्त अनवस्था दोषको मिटानेके लिए कह रहा है कि प्रत्येक कार्यके एक उपादान और दूसरा सहकारी ऐसे दो हेतु हुआ करते हैं और उन दोके सिवाय अन्य हेतुओंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। समाधानमें कहते हैं कि इस बातको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है कि कार्यमें एक उपादान और एक सहकारी दो ही हेतुकी आवश्यकता होती है। प्रकृतमें जो प्रसङ्ग चल रहा है उस वातावरणमें इस नियमका ग्राहक कोई प्रमाण नहीं हो सकता। इस कारण भिन्नाद्वैतके समान एक उपादान और दूसरे सहकारी कारणकी भाँति सत और परिणामको मानना युक्त नहीं है। यद्यपि यह बात युक्तिसङ्गत है कुछ कि हाँ प्रत्येक कार्यमें उपादान कारण और सहकारी कारण होता है लेकिन यहाँ जो विवरण बनाया है भिन्नाद्वैतकी तरह सत परिणामको माननेके लिये उन भिन्न पदार्थोंमें उपादान सहकारी भाव माननेमें तो बात बन जाती है। पर सत और परिणाम जहाँ एक ही तादात्म्यरूपसे वस्तुमें रह रहे हैं उसमें जब यह विभाग कर दिया गया कि सत उपा-

दान है और सत् सहकारी है तो वहाँ फिर अनवस्था दोष दूर करनेका कोई अवसर नही रहता। इसमे वस्तुको क्षत् परिणात्मक मानना चाहिए, और जैसे वस्तु स्वत सिद्ध है उसी प्रकार स्वत परिणाम है यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए।

एवं मिथो विपक्षद्वैतवदित्यपि न साधुदृष्टान्तः ।
अनवस्थादोषत्वाद्यथारिरस्यापरारिरपि यस्मात् ॥ ४०५ ॥

शत्रुद्वैतकी तरह सत् और परिणामको परस्पर विपक्ष माननेमे अनवस्थानोपापत्ति—इसी प्रकार सत और परिणामके सम्बन्धमे जो शत्रुद्वैतका दृष्टान्त दिया गया है वह भी अनवस्था दोषसे मुक्त नही है। जैसे कि कोई विवक्षित एक पुरुष दूसरेका शत्रु है तो उस दूसरेका तीसरा भी शत्रु होता है इस तरह उत्तरोत्तर शत्रुमे परम्परा चालू रहेगी। तब अनवस्था दोष आता है। वस्तुके जिस कालमे जैसी पर्याय प्रकट होनेकी योग्यता है उस अनुसार कार्य होता है यह सामान्य नियम है, पर इस नियमके रहते हुए सत और परिणामको शत्रुद्वैतके समान माने तो वह युक्तिसगत नही। शत्रुद्वैत यह ही तो बताया गया था कि एक शत्रु दूसरेसे विमुख है तो इस प्रकार सत् और परिणाम यदि परस्पर एक दूसरेसे विमुख है तो विमुख हुए दोनो धर्म एक पदार्थमे कार्य कर नही हो सकते। सत और परिणाम तो वस्तुस्वरूपमे है और जैसे जहाँ निमित्त उपादान पूर्वक किसी अन्य पदार्थका कारण पाकर कार्य होता है। तत्त्व वहाँ इतना ही है कि जैसे पदार्थ कोई स्वत सिद्ध है तो वह स्वत सिद्ध परिणामी भी है। तो शत्रुकी तरह सत परिणामको माननेपर उसमे तीसरी चीजकी कल्पना करनी पडेगी और तीसरा कुछ शत्रु माना गया तो फिर अन्य भी माना जाना चाहिए। यो शत्रुकी परम्परा पूर्ण न हो सकेगी। और यो सत् परिणाम मूलकी भी सिद्धि न हो सकेगी।

कार्यं प्रतिनियतत्वाच्छत्रुद्वैत न ततोऽतिरिक्तं चेत् ।
तन्न यतस्तन्नियमाग्राहकमिव न प्रमाणमिह ॥ ४०६ ॥

शत्रुद्वैतवत् सत परिणामको माननेपर आपन्न अनवस्था दोषको मेटनेके लिए कार्यके प्रति दो ही शत्रुको प्रतिनियत माननेका शङ्काकारका प्रयास—यदि उत्तरोत्तर-शत्रुकी परम्परा चालू रहनी कि अनवस्था दोष मिटानेको यह कहा जाय कि प्रत्येक कार्यमे दो शत्रु नियत होते है। दोसे अधिक शत्रु नही होते हैं तो यह कहना भी ठीक नही है क्योकि कार्यमे दो ही शत्रु हुए। इस नियमका ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नही पाया जाता। तब सत् और परिणाम शत्रुद्वैतके समान न माने, किंतु वस्तु है और उसमें परिणमनका स्वभाव है शाश्वत रहनेकी द्रव्यरूपता है,

वस्तु एक है, अवक्तव्य है। उस वस्तुको समझानेके लिए भेददृष्टिसे भेद करके सत् और परिणामरूपमे ऋषि-सतोने जिज्ञासुको समझाया है। वस्तुत पदार्थ स्वय ही सत्-परिणामात्मक है।

नेतरकरवर्तितरज्जूयुग्म न चेह दृष्टान्तः।
बाधितविषयत्वाद्वा दोषात् कालात्ययापदिष्टत्वात् ॥४०७॥

सत और परिणामके परिचयमे प्रस्तुत वामेतरवर्ति रज्जुयुग्म दृष्टात की बाधितविषयता सत और परिणामके परिचयके लिए १६ वें जिज्ञासुने दायें और बायें हाथमे रहने वाली दो रस्सियोका दृष्टान्त दिया था कि जैसे दो रस्सियाँ परस्पर एक दूसरेकी विरुद्ध दिशाकी ओर चलती हैं और वहाँ गोरससे घीकी सिद्धि हो जाती है। दही मथते समय जो मथानी मथी जाती है उसकी रस्सी यदि एक मथने वालेकी ओर आती है तो दूसरी छोर उसके विमुख जाती है और ऐसी स्थितिमे वहाँ घीकी सिद्धि होती है। ऐसे ही क्या सत् और परिणाम है कि दोनोका मुख विमुख हो, सत् किसी ओर जाय, परिणाम किसी ओर जाय तब जाकर सिद्ध हुआ। ऐसा दृष्टान्त युक्तिसङ्गत नही है, क्योकि इसके दृष्टान्तमे दो दोष आते हैं—एक बाधित विषय, दूसरा कालात्ययापदिष्ट बाधित विषय होनेमे ही कालात्ययापदिष्ट ही दृढ हो जाता है। बाधित विषय इस प्रकार है कि दृष्टान्तमे तो उन रस्सियोके परस्पर विमुख गमन द्वारा वहाँ रससे भिन्न किसी गोरसकी सिद्धि की गई है, पर यह सत परिणामसे भिन्न किसी तीसरी बातकी सिद्धि तो नहीं होती ? पदार्थ ही वह एक है और सत् परिणामात्मक है। जैसे मथानीको दो रस्सियोसे घुमाया मथा गया तो चीज क्या बनी ? मथानीसे भिन्न, रस्सियोसे भिन्न, मथने वालेसे भिन्न कोई गोरसमें दही परिणमनकी सिद्धि होनेसे तो यह सत और परिणामको यो ही मथा जाय तो उससे तीसरी क्या चीज सिद्ध होनेको है ? इस कारण यह दृष्ट बाधित विषय है। और इसी कारण कालात्ययापदिष्ट है।

तद्वाक्यमुपादानकारणसदृशं हि कार्यमेकत्वात्।
अस्त्यनतिगोरसत्व दधिदुग्धावस्थयोर्यथाव्यक्तत्वात् ॥ ४०८ ॥

रज्जुयुग्म दृष्टान्तमे बाधित विषय दोषका विवरण—उक्त गाथामे कहे गये दोषका ही विवरण इस गाथामे किया जा रहा है कि प्रत्येक कार्य अभेद होनेसे अपने उपादानकारणके समान होते हैं। गोरसमे जो कुछ भी प्रकट होगा वह गोरसके अनुरूप होगा। मिट्टीसे जो कार्य बनेंगे घडा अथवा और और प्रकारके बर्तन या घडा होगा तो सब मिट्टीरूप ही तो प्रत्येक कार्य उपादानकारणके सदृश ही हुआ

करते हैं। उदाहरणमें जो रस्सियोंका दृष्टांत लिया है और दही-दूधके मन्थनकी बात कही है तो वहाँ होता क्या है कि जो भी दूधमें पर्याय बनेगी वही बने तो गोरसमें अनुरूप घी बने तो गोरसके अनुरूप कोई भी अवस्था गोरसका उल्लघन नहीं कर सकती, यह बात प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है। तो दृष्टांतमें जैसे यह बात स्पष्ट है उसकी दृष्टान्तमें कोई तुलना नहीं है। दृष्टान्तसे तो यह विदित होता है कि शङ्काकारने सत और परिणामको निमित्त कारणरूपमें पेश किया है। जैसे वे दोनों दायी बायी रस्सियां निमित्त कारण ही तो हैं, वे रस्सियाँ खुद गोरसकी अवस्थायें तो नहीं बन जाती। तो इसी तरह जब सत् और परिणामको निमित्त कारण रूपसे इस दृष्टान्त द्वारा ध्वनित किया है तो अब यह बतलाओ कि कार्यसिद्धि होना क्या है? उस सत परिणामसे भिन्न किसी अन्य वस्तुमें कोई कार्य बताना है क्या? इसी कारण जो दृष्टान्तसे इस प्रकृत बातका मेल नहीं है, विषय ही बाधित है। दही और दूध ये दोनों कार्य हैं और वे गोरसमय हैं। गोरस जुदा न तत्त्व है न दही है। तो यहाँ दो रस्सियोंमें भिन्न गोरसकी बात सिद्ध की है लेकिन प्रकृतमें तो सत् परिणामसे भिन्न कोई कार्य नहीं मालूम होता है। इस कारण प्रत्यक्षबाधित यह दृष्टान्त है। जो बाधित होता है उसीका नाम कालात्ययापदिष्ट है। तब सत् और परिणामका परिचय देनेमें दो रस्सियोंका दृष्टान्त युक्तिपङ्क्त नहीं होता।

अथचेत्नादिसिद्धं कृतकत्वापन्हवात्तदेवेह ।
तदपि न तद्‌द्वैत किल स्यक्तदोपास्पदं यदद्वैतत् ॥ ४०६ ॥

उभोसो दृष्टान्तोंकी सदोषतासे बचनेका अनवकाश-सत् और परिणाम के परिचयमें १९ प्रकारकी जिज्ञासायें जिज्ञासुओंने प्रकट की थी, उन सबका समाधान दिया गया। उन दृष्टान्तोंमें दोष पाये गए। अब यदि उन दोषोंसे बचनेके लिए यह स्वीकार किया जाता है कि सत् और परिणाम तो अनादि सिद्ध हैं, क्योंकि उनमें कृतकपना नहीं पाया जाता। वे किसीके कार्य नहीं है और उन पदार्थोंमें ऐसी प्रतीति होती है कि यह वही है। तो यों सत् और परिणाम दोनोंको सर्वथा नित्य मान लेने पर फिर युक्त कोई दोष न आयगा, क्योंकि सत् और परिणामका कोई स्पष्ट कार्य नहीं दिखाई दे रहा तो उन्हें अनादि अनन्त मान लेना चाहिए। और ऐसा अनादि सिद्ध मान लेना कोई असङ्गत बात नहीं है क्योंकि प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें लोगोंकी यह प्रतीति रहा ही करती है कि यह वही है। उक्त शङ्काके समाधानमें यहाँ केवल इतना ही संकेत किया जा रहा है कि उन दोषोंसे बचनेके लिए सत् और परिणामको सर्वथा नित्य माननेकी जो बात कही जा रही है वहाँ भी अनेक दोष उपस्थित होते हैं। वे क्या दोष उपस्थित होते हैं उनका वर्णन अब इस प्रकरणमें आयगा।

दृष्टान्ताभासा इति निक्षिप्ताः स्वेष्टसाध्यशून्यत्वात् ।
लक्ष्योन्मुखेषव इव दृष्टान्तास्त्वथ यथा प्रशस्यन्ते ॥ ४१० ॥

सत् और परिणामके परिचयमें शंकाकार द्वारा प्रस्तुत उन्नामो दृष्टान्तोकी दृष्टान्ताभासता — अभी सत् और परिणामकी नित्यताके सूचक भी अनेक दृष्टान्त अपने साध्यकी सिद्धि करनेमें असफल रहे अतएव वे दृष्टान्त नही किन्तु दृष्टान्ताभास हैं। जो लक्ष्यके अनुसार फेंके गए बाणोकी तरह अपने साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ हो। जैसे कोई धनुधारी पुरुष लक्ष्य लेकर कोई बाण चलाता है तो उसका वह बाण जहाँ अपना निशाना बनाता है तो बाण जैसे अपने निशाने पर पहुच ही जाता है इस तरह जो जो भी दृष्टान्त सच्ची जैसी बातको सिद्ध करनेके लिए पूरे तौरसे उस दृष्टान्तके धर्ममें आ ही जायें ऐसा दृष्टान्त हो, तो वह प्रशंसनीय है। किन्तु जो दृष्टान्त विरोधका साधन कर दे अथवा कुछ साधन न कर सके अथवा दृष्टान्तमें तो कुछ और ही बात है, दृष्टान्त किसी और ही प्रकरणको लिए हुए है तो वह सब प्रकृत बातको सिद्ध करनेमे असमर्थ होनेसे दृष्टान्ताभास कहा जायगा। यों समझिये कि अब तक जिज्ञासुओने सत् और परिणामका परिचय देनेके लिए जो जो दृष्टान्त दिए हैं वे सब दृष्टान्ताभास हैं।

सत्परिणामाद्वैतं स्यादभिन्नप्रदेशवत्त्वाद्वै ।
सत्परिणामद्वैतं स्यादपि दीपप्रकाशयोरेव ॥ ४११ ॥

सत् और परिणामकी दीप और प्रकाशकी तरह अभिन्न प्रदेशवत्ता — जैसे कि दीप और प्रकाश ये अभिन्न प्रदेशवान हैं दीप कही अलग रहता हो, प्रकाश कही अलग हो ऐसा तो नही पाया जाता। तो दीप और प्रकाश जैसे अभिन्न प्रदेशी होनेसे जिस प्रकार इसमें अद्वैत है सो अद्वैत है दीप और प्रकाश एक बात है, लेकिन संज्ञा अलग है, लक्षण अलग है आदिक अपेक्षाओंसे इनमें कथंचित द्वैत भी तो है। इसी प्रकार सत् और परिणाम ये भिन्न प्रदेशमे नही पाये जाते, जैसे कि द्रव्यस्वरूप तो कहीं अन्य प्रदेशोंमें हो और परिणमनकी बात किन्हीं अन्य प्रदेशोमे हो। वही एक पदार्थ सत्परिणामात्मक है इस कारण तो अद्वैत है लेकिन द्रव्यस्वरूप द्रव्यदृष्टिसे निरखा जाता है, वहाँ नित्यत्व धर्म विदित होता है। परिणाम स्वरूप पर्याय दृष्टिमे देखा जाता है और वहाँ अनित्यत्व विदित होता है। तो यो सत् और परिणाममें संज्ञा लक्षण प्रयोजन दृष्टि आदिक अपेक्षासे परस्पर भेद भी तो है। इस कारण जैसे सत्मे नित्यत्वकी दृष्टि मुख्य है उस प्रकार परिणामको नित्य नही कहा जा सकता। और चू कि उस पदार्थमे सत् और परिणाम दोनो बातें रखी जा रही हैं, इस कारण

पदार्थ नित्यानित्यात्मक है, सर्वथा नित्य नहीं है। सर्वथा नित्य अपरिणामी तो कोई सत् ही नहीं हुआ करता।

अथवा जडकल्लोलवदद्वैतं द्वैतमपि च तद् द्वैतम्।
उन्मज्जच्च निमज्जच्चाप्युन्मज्जदेयेति ॥ ४१२ ॥

सत् और परिणामके परिचयमे जल कल्लोलका दृष्टान्त—उक्त गाथामे यह बताया गया था कि जैसे दीप और प्रकाश अभिन्न प्रदेशी है अतएव भिन्न भिन्न चीजें नही हैं फिर भी संज्ञा लक्षण आदिकके भेदमे इनमे परस्पर द्वैतपना नही है कि सत् कही अलग पडा रहता है, पर्यायें कही अलग बनी रहा करती है इतने पर भी सत् शब्दसे कुछ अन्य धर्मका बोध होता है परिणाम शब्दसे अन्य धर्मका बोध होता है अथवा द्रव्य दृष्टिसे जो विषय ध्यानमे आता है उससे भिन्न ही प्रत्येक पर्याय दृष्टिमे प्रतीत होती है, इस कारण संज्ञा लक्षण आदिक अपेक्षासे भेद है। अब इस ही बातको दूसरे दृष्टान्त द्वारा बताया जा रहा है। जैसे जल और लहर इनमें बतलाओ अद्वैत भाव है या द्वैत भाव है। कोई एक महान विशाल समुद्र है उसमे लहरें भी बहुत चल रही हैं, वही पूछा जाय कि इन लहरोंमे और इस समुद्रमे अद्वैत भाव है या द्वैत ? तो वहाँ सर्वथा कोई एक उत्तर न आयगा। जल और लहरें सर्वथा अद्वैत है, यह कथन भी असगत हो गया। यह कथन भी असगत हो गया। जल और लहरे सर्वथा द्वैत है, यह कथन भी असगत हो गया। यदि जल और लहर एक ही चीज है तो इसके मायने है कि लहर मात्र जल है या जलमात्र लहर है ? लेकिन लहरे भिन्न भिन्न विदित होती हैं। लहरोकी कुछ सीमायें नजर आती हैं, एक ओरसे गया दूसरी ओर जकडा, वहाँ नष्ट हो गयी कितनी ही बातें नजर आती है पर समुद्र तो एक विशाल है, एकरूप है, लहर नानारूप हैं। अद्वैतपना कैसे समझा जायगा ? यदि कोई कहे कि समुद्र और लहर इनमे सर्वथा द्वैत है भिन्न ही चीज है तो फिर जलकी लहर क्या कहलायगी? जलमे ही लहर क्यो हो गई है ? लहर कोई भिन्न पदार्थ हो गया। समुद्र कोई भिन्न पदार्थ हो गया इस प्रकार तो वहाँ प्रतीत भी नहीं। तो जैसे जल और लहरमे कथञ्चित् अद्वैतभाव है और कथञ्चित द्वैतभाव है, इसी प्रकार भेद अपेक्षा से विचार करते है तो सत् और परिणाममे द्वैतभाव है। भिन्न अपेक्षासे विचार करते है तो सत् और परिणाममें द्वैतपना नही है कही प्रथक प्रदेशमे सत् और परिणाम नही रहा करते हैं, जैसे कि जल और लहरमे बात निरखी गई, भेद अपेक्षासे विचार किया जाय तो वहाँ कल्लोलें उठती है और कल्लोले अस्त भी हो जाती है, पर जब एक अभेद दृष्टिसे देखते है सारे समुद्रको तो उसमे लहर अंशकी दृष्टि नही रहती। यद्यपि वह लहर ज्ञानमे है किन्तु ऐसे साधारण तरीकेसे वे लहरें ज्ञानमे है किन्तु ऐसे साधारण तरीकेसे वे लहरे ज्ञानमे आ रही हैं कि वहाँ व्यक्तियाँ मुख्य नही

बन पाती। जो जब अभेद अपेक्षामे वहाँ निरखा करते हैं तो वे लहरें न उदित होती हैं और न अस्त होती हैं, ठीक इसी प्रकार जब भेद विवक्षासे देखते हैं तो सद्भूत पदार्थमे लहरें व्यक्त होती और विलीन होती हैं, किन्तु जब अभेद विवक्षामे पदार्थको निरखते हैं तो देखो कोई यद्यपि वैसा ही पदार्थ किन्तु वहाँ लहरोकी व्यक्तियाँ प्रधान नही हो पाती और उस अभेद दृष्टिमे वे भेद व्यक्तियाँ न उचित होती हैं और न अस्त होती हैं। तात्पर्य यह है कि सत् और परिणाम अद्वैतरूप भी हैं और सज्ञा आदिक भेदमे द्वैतरूप भी है।

घटमृत्तिकयोरिव वा द्वैत तद्द्वैतवदद्वैतम्।
नित्यं मृण्मात्रतया यदनित्यं घटत्वमात्रतया ॥४१३॥

मृण्मात्र व घटत्वमात्रकी तरह सत् और परिणाममे अद्वैत व द्वैतपने की सिद्धि—जैसे की घट और मिट्टीमें अद्वैत भी है और द्वैत भी है मिट्टी सामान्य की अपेक्षा तो जितनी भी घट आदिक अवस्थायें बनेगी वे सब एक मृतरूप ही हैं, इस कारण तो अद्वैत है पर घट और मिट्टी ये दो चीजे जो घट हैं उतने ही मात्र घट नहीं। घटमे पहिले भी मिट्टी, बादमे मिट्टी। मिट्टी व्यापक है, घट व्याप्य है। घट और मिट्टी इन दोनोको एक नही कहा जा सकता। जैसे जीव और मनुष्य इनने इस समय अद्वैत है, कोई मनुष्य जीवमे निराला नही है लेकिन जीव और मनुष्य इन दोनोको एक भी नही कहा जा सकता। मनुष्य तो अवस्था है जीव शाश्वत है। तो व्याप्य और व्यापकके भेदसे अद्वैत है। अब उनमे नित्यत्व अनित्यत्वकी भी बात इसी तरह घटित होती है कि मिट्टी मात्रकी दृष्टिसे तो नित्य है और घटत्व मात्रकी दृष्टि से अनित्य है। जैसे जीवत्वकी दृष्टिमे नित्य है और कुछ मनुष्यत्वकी दृष्टिसे अनित्य है तो यही बात सब सत् और परिणाममें समझना चाहिए। यह प्रसग चल रहा है सत् और परिणामका। अनेक जिज्ञासुओने अनेक दृष्टान्त देकर सत् और परिणामका परिचय कराना चाहा था किन्तु वे सभी दृष्टान्त अनुपयोगी सिद्ध हुए। सत् और परिणामका सम्बन्ध क्या है? ये दो जीजे अलग-अलग नही हैं कि सत् कोई एक अलग पदार्थ हो और पर्याय कोई अलग पदार्थ हो, किन्तु वस्तु ही सत् परिणामात्मक है। जो द्रव्यरूप है उसे यहाँ सत् कहा है, जो पर्यायरूप है उसे यहाँ परिणाम कहा है तो सत्की दृष्टिसे नित्य है, पर्यायकी दृष्टिसे अनित्य है, सत् और परिणाम चूंकि प्रथक प्रथक प्रदेशमे नही हैं इस कारण अद्वैत हैं किन्तु सत् व्यापक है, परिणाम व्याप्य है, इस कारण अद्वैत है। इस प्रसङ्गमें बहुत पहिले यह पूछा गया था कि वस्तु अद्वैत रूप है या द्वैतरूप? नित्य है या अनित्य समस्त है या व्यस्त? क्रमवर्ती है या अक्रमवर्ती? उन्हीका समाधान इस कथनमे दिया गया है कि सत् और परिणाम कथंचित् अद्वैतरूप हैं, कथचित द्वैतरूप हैं और सत् दृष्टिसे वह वस्तु नित्य है और

पर्याय दृष्टिसे वह वस्तु अनित्य है। यही बात समस्त सत् और परिणामके सम्बन्ध में जानना

अयमर्थः सन्नित्यं सदभिज्ञप्तेर्यथा तदेवेदम् ।
न तदेवेद नियमादिति प्रतीतेश्च सन्न नित्यं स्यात् ॥४१४॥

सत् और परिणाममें नित्यता व अनित्यताकी प्रतीतिका आधार—नित्य और अनित्यके सम्बन्धमें उक्त गाथामें सकेत किया है उसका आशय यह है कि यह वही है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होनेसे तो सत् नित्य विदित होता है। जैसे किसी पुरुषको १ वर्ष पहिले देखा था और आज देखकर कहते हैं कि यह वही पुरुष था तो यह प्रत्यभिज्ञान यह सिद्ध करता है कि जो वर्ष भर पहिले देखा था तबसे लेकर अब तक यह वही वही है अन्य नहीं हुआ है तो इस प्रत्यभिज्ञानसे नित्यताकी प्रतीति होती है और इस प्रतीति से कि यह वह नहीं है, ज्ञान होता है । कि परिणाम है, अनित्य है, अवस्थाओंको निरख करके कहा जाता है । यह मनुष्य कोई बचपनमें कुछ था, जवानीमें कुछ है बुढ़ापेमें कुछ है। तो बुढ़ापेकी अवस्थामें यह कहा जायगा कि अब नहीं है वह न तो बच्चेकी तरह दौड़ लगाना चाहता, न जवानो की तरह फुर्तीसे काम करना चाहता तो मालूम होता है कि अब वह न रहा यह तो परिणाम की दृष्टिसे अनित्यता विदित होती है। सो सत् और परिणाममें ये दोनों बातें निरखी जाती हैं कि द्रव्यरूपसे तो सत् दिखता है। सदा सत् है अतएव नित्य है और उसमें प्रतीति होती है यह वही है जीव यह वही है जो अनादिसे है अनन्त काल तक रहेगा और जब पर्याय दृष्टिसे देखते है तो वहाँ यह विदित होता है कि यह वह नहीं है तो यह वह नहीं है इस ज्ञानसे अनित्यताका भान होता है। यों वस्तु सत् परिणामात्मक है, नित्यानित्यात्मक है।

अप्युभय युक्तिवशादेक सच्चैककालमेकोक्तेः ।
अप्यनुभय सदेतन्नयप्रमाणादिवादशून्यत्वात् ॥४१५ ॥

सत् और परिणाममें अनित्यत्व धर्मकी उभयता व अनुभयता वही तत्त्व सत् युक्तिके वश से उभयरूप है द्रव्य दृष्टिसे नित्य देखा पर्याय दृष्टिसे अनित्य देखा और परमाणु दृष्टिसे नित्यानित्यात्मक परखा गया। यों तो यह उभयरूप है और जब नय प्रमाणादिक किन्हीं वादोंका आश्रय नहीं किया जाता तो उस समयमें वह अनुभयरूप है। जैसे जीवके बारेमें जब द्रव्य दृष्टिसे देखा तो नित्य विदित हुआ और पर्याय दृष्टिसे देखा अनित्य विदित हुआ। जब परमाणुका आलम्बन करके निरखा तो यह नित्यानित्यात्मक ज्ञात हुआ। और जिस समय कोई ज्ञानी पुरुष नय प्रमाणका

सारा आलम्बन छोड़कर उठे विश्राम और निर्विकल्पमे रहे तो उसकी दृष्टिमे तो अनुभय है तो इसी तरह जब द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतासे देखा तो सत् दीखा। वह नित्य नजर आया। पर्याय दृष्टिकी प्रधानतासे देखा तो अनित्य देखा। वहाँ परिणाम विदित हुआ, पर प्रमाणसे जब परीक्षा करते हैं तो चूंकि वस्तु न केवल नित्यरूप हैं न केवल अनित्यरूप है तो प्रमाण नित्यानित्यात्मक परखा, जिसे उभयरूप कहेंगे और जब नय प्रमाण दोनोका आश्रय न करेंगे तब वे अनुभयरूप हैं। यह एक अनुभूतिके ढङ्गसे अनुभयकी बात कही गई है और अवक्तव्यताके नातेसे भी उसे अनुभय कह सकते हैं। जैसे जीव स्यात् नित्य है यह द्रव्यदृष्टिसे देखा, जीव स्यात् अनित्य है वह पर्याय दृष्टिसे देखा। जीव नित्यानित्य है यह पर्याय दृष्टिसे देखा और जीव अवक्तव्य है उसे दोनो रूपसे एक साथ नही कहा जा सकता, इस कारण वह अवक्तव्य रूप है। यो सत् और परिणाममें यह विवरण किया जा रहा कि पदार्थ भी सत् परिणामात्मक है। सत्की दृष्टिमे नित्य है पर्यायकी दृष्टिमे अनित्य है। परिणाममें उभय है और अनुभयमे या नय और प्रमाणकी दृष्टि न रखकर देखा तो अनुभय है, अनुभयका अर्थ है अवक्तव्य और अनुभवकी दृष्टिमे अनुभयका अर्थ है कि मेरे अनुभव मे वस्तु तो आ रही है परन्तु न नित्यरूपसे और न अनित्यरूपसे विकल्प है।

व्यस्तं सन्नययोगान्नित्यं नित्यत्वमात्रतस्तस्य।
अपि च समस्तं सदिति प्रमाणसापेक्षतो विवक्षायाः॥ ४१६ ॥

सत्की व्यस्तता व समस्तताका दर्शन—अब नित्य और अनित्यके सम्बन्ध मे जिस तरह स्याद्वाद पद्धतिसे वर्णन किया है इसी प्रकार वस्तुको व्यस्त और समस्त के बारेमे भी स्याद्वाद विधिसे जानना चाहिए। नयकी विवक्षा करनेसे वह सत् व्यस्त है, पृथक पृथक है। उसमे पर्यायें अनेक शक्तियाँ सभी कुछ नजर आती हैं और उनका स्वरूप पृथक पृथक है। जैसे जीवमें ज्ञान है, दर्शन है, जब भेद दृष्टिसे ज्ञान दर्शन, सुख आनन्द सभी बातोको मान लिया तो उनका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न ही तो है। जाननेका नाम ज्ञान, आल्हादका नाम आनन्द तो स्वरूप मिल न जायगा। स्वरूप इनका जुदा-जुदा है, और इसपर भी कि वहाँ गुण कोई जुदा-जुदा नही है। वस्तु जीव एक है और जैसा है सो ही है। एक सत्मे जो है सो है, और प्रतिसमयके परिणमनमे जो एक परिणमन है सो है। वहाँ ज्ञान है दर्शन है, आनन्द है यह बात नहीं पायी जाती, किन्तु समझानेके लिए भेद दृष्टिसे परम्परा अनुसार जो कि समझनेमे सत्य उतरती है गुण भेद करके समझा जाता है। तो जब भेद करके समझाया तो वह नयोंका ही तो आलम्बन हुआ तब वहाँ सत् व्यस्त नजर आया, पृथक पृथक विदित हुआ। और जब प्रमाणकी अपेक्षासे विचार करते हैं तो वह वस्तु समस्त रूप है, जो है सो ही है, उसमे पृथक पृथक पर्यायें हैं यह कुछ भी बात विदित न होगी।

तो वस्तु व्यस्त रूप है या समस्तरूप है यह जो प्रश्न पहिले किया गया था उसका उत्तर इस गाथामे है। वह नय विवक्षासे व्यस्त रूप है और प्रमाण विवक्षासे समस्त रूप है।

सत्की व्यस्तता व समस्तताके एकान्तमें दोषापत्ति—सत्की व्यस्तता व समस्तताके सम्बन्धमें यहाँ जब एकान्त कर लिया जाता है तब वस्तु स्वरूपसे बाहर सिद्धान्त बन जाता है। जैसे व्यस्तताका एकान्त क्षणिकवादियोने किया। क्षणिकवाद सिद्धान्तमे केवल कालकी व्यस्तता नही बताया, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव इन चारोकी बतायी। नाम यद्यपि क्षणिकवाद शब्दसे प्रसिद्ध है पर क्षणिकवादका अर्थ है कालसे निरश तकना। लेकिन यह सिद्धान्त तो निरशवाद है। द्रव्यसे निरश देखना अर्थात अश कर करके जो निरश हो उसे दखना, क्षेत्रसे निरंश निरखना, क्षेत्रके अश कर करके जो निरश हो उसे देखना। कालका निरंश देखना, मायने एक एक समयके परिणमन जो निरश है उसे देखना, याने स्वरूपमे सुलक्षण मात्र कह करके एक निरश भावको तकें तो यो निरश पदमे द्रव्य क्षेत्र, काल भाव इन चारो दृष्टियोसे व्यस्तता बतायी गई। तो जब एकान्त हो जाता है तो वस्तु स्वरूपसे बाहरी बात बन जाती है। समस्तका भी एकान्त जब किन्हीने किया अद्वैतवादने तो इतना एकान्त किया कि सब कुछ पदार्थ केवल एक ब्रह्म स्वरूप है, एक ही है अनेक है ही नही। और उस ही एकको ये सब पर्याये हैं। यह समस्तका एकान्त है और नयवादसे जाति अपेक्षा यह समस्त है एक और अर्थक्रियाकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न पदार्थ अपनेमे व्यस्त रूप हैं और एक ही पदार्थ न नयविवक्षासे आकाश पर्यायका बोध होनेसे व्यस्तरूप है। किन्तु वह अखण्ड सत् है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे अखुण्ड सत् है इस कारण वह समस्तरूप है। यो विवक्षामे पदार्थ व्यस्तरूप भी है और समस्त रूप भी है। अब इन प्रश्नोमे एक अतिम प्रश्न था कि पदार्थ क्रमवर्ती है या अक्रमवर्ती ? इस प्रश्नका अब उत्तर देते हैं।

न विरुद्ध क्रमवर्ति च सदिति तथानादितोऽपि परिणामि।
अक्रमवर्ति सदित्यपि न विरुद्ध सदैकरूपत्वात् ॥ ४१७ ॥

सत्की क्रमवर्तिता व अक्रमवर्तिताका विचार—सत् क्रमवर्ती है क्योकि अनादि कालसे सत् परिणमन करता हुआ है। हम किसी भी सत्को परखेंगे तो किसी पर्यायमे ही परख सकेंगे और वे पर्यायें क्रमवर्ती हैं। तो यो सत् क्रमवर्ती हुए फिर भी सत् अक्रमवर्ती है यह बात विरुद्ध नही है क्योकि वह सत् सदा एकरूप ही पाया जाता है। किसी भी पदार्थमे ये दो प्रश्न किये जाये बताओ कि जीव क्रमवर्ती है या अक्रमवर्ती है ? एक जीवकी बात, एक पदार्थकी बात पूछते हैं। कोई भी एक जीव

अपनी अवस्थाओंको क्रमसे रचता है और अवस्थामय ही जीव पाया जायगा। जब जिस अवस्थामें रहता है वह जीव उस अवस्थामय है। जीवके समस्त गुण जिस प्रकार परिणमन रूप हो रहे हैं तब उस समय वह जीव तन्मय है। सो और वे पर्यायें इसी क्रमसे और जीवने देखा तन्मय तो यह जीव सत्क्रमवर्ती सिद्ध हुआ। यह पर्याय दृष्टि का कथन है। जब द्रव्य दृष्टिसे निरखा तो यह जीव सदा एक सा ही पाया गया। सो जीव सदा अक्रमवर्ती है, सदा वही एक है। वहां पर्यायोंकी दृष्टि नहीं और गुण भेद की दृष्टि नहीं। केवल एक द्रव्य स्वरूप देख करके कहा गया है तो वह पदार्थ अक्रमवर्ती भी है।

सत्परिणामात्मक पदार्थके यथार्थ बोधसे कल्याण लाभ—पदार्थ सत्-परिणामात्मक है। सत् और परिणाम पृथक्-पृथक् प्रदेशोंमें नहीं हैं। सत् और परि-णाम परस्पर अविनाभावी धर्म हैं। सत्का अभाव माननेपर परिणाम (पर्याय) का भी अभाव हो जावेगा और परिणामका अभाव माननेपर सत्का भी अभाव हो जायगा। सत् और परिणाम जल और तरङ्गकी भांति अद्वैत हैं फिर भी संज्ञा, लक्षण, समय आदिकी अपेक्षासे ये द्वैतरूप हैं। पदार्थकी सत्परिणामात्मकता विदित होनेपर ये सभी समस्यायें सुलझ जाती हैं कि सत् नित्य है या अनित्य सत् एक है या अनेक, सत व्यस्तरूप है या समस्तरूप सत् क्रमवर्ती है या अक्रमवर्ती। पदार्थको स्व-भावतः सत्परिणामात्मक माननेपर प्रत्येक वस्तुका स्वातन्त्र्य व निरालापन स्पष्ट समझ में आजाता है। इस सम्यक् बोधमें मोह विलीन होता है और मोहके विलीन हो जानेमें विशुद्धि प्रकट होती है। विशुद्धिके पूर्ण विकासका नाम निःश्रेयस है परम कल्याण है सो कल्याण लाभके लिये वस्तुस्वरूपका सावधानी पूर्वक मनन करना चाहिये।

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[भाग ५]

प्रवक्ता

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज"

ननु किमिह जगदशरणं विरुद्धधर्मद्वयाधिरोपत्वात् ।
स्वयमपि संशयदोलान्दोलित इव चलितप्रतीतिः स्यात् ॥४१८॥

विरुद्ध दो धर्मोंके अधिरोपित होनेसे शंकाकारके आशयसे सारे जहान के अशरण हो जानेकी आशंका सत् और परिणामको दृष्टिमे रखकर जो उक्त प्रकरणोंमे अनेकान्तमय पदार्थोंकी सिद्धि की है और स्याद्वाद शासन पद्धतिसे जिनका विशेष विवरण किया गया है उन सब बातोंको सुनकर यहाँ शङ्काकार यह पूछ रहा है—जब एक ही वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्मोंको अधिरोपित किया गया है तो इस तरह तो सारा ससार अशरण हो जायगा, क्योंकि स्वय ही यह मानव संशयके झूलेमे झूलता हुआ चलित प्रतीति बनेगा अर्थात् उसे कही विश्वास न जम पायगा। किसी वस्तुको नित्य कहा जाता तो उसीको अनित्य कहा जाय तो सुनने वाला किस विश्वास मे रह सकेगा ? तो जब कोई एक विश्वासकी स्थिरता न रही तो ऐसे संशयके झूलेमे झूला हुआ पुरुष अपने धर्मको खो देगा और न कुछ अपना कल्याण ही कर सकेगा। अत यह अनेकान्तवाद तो अशरण बनायेगा, इसका आलम्बन जो लेगा वह खुद संशय के झूलेमे झूलता हुआ अपना जीवन बितायेगा हितका मार्ग नही पा सकता। धर्म पालनके लिए तो दृढ़ताकी आवश्यकता होती है। जो पदार्थमे वास्तविक स्वरूप परिज्ञात हो उस स्वरूपपर दृढ रह जाय, ऐसी जिसकी प्रतीति निस्कम्प हो वह ही पुरुष धर्म पालनमे आगे बढ सकता है लेकिन जहाँ क्षण क्षणमे संशय ही संशय पड़ा हुआ है तो वहाँ न श्रद्धान दृढ रह सकता है और न धर्म पालनके लिए अपनी कोई करतूत बना सकता है। तो इस प्रतिपक्ष धर्मकी मान्यतामे कैसे प्रतीति चलित होती है कैसे संशयके झूलेमे झूलना बनता है और किस तरह इसकी अशरणता होती है इस बातके विवरणमे कहते है।

इह कश्चिज्जिज्ञासुर्नित्यं सदिति प्रतीयमानोऽपि ।
सदनित्यमिति विपक्षे सति शल्येस्यात्कथं हि निःशल्यः ।४१९।

नित्यताकी प्रतीतिमें अनित्यताकी मान्यताका प्रवेश होनेपर जिज्ञासुकी सशल्यताकी आरेका—कोई जिज्ञासु ऐसी प्रतीति कर रहा हो कि सत् नित्य है तब उसके सामने जब यह विपक्षकी बात आती है कि सत् अनित्य भी है तो इस विपक्षकी बात सुनकर उसका शल्य उपस्थित हो जायगा। बात क्या है ? अभी पदार्थ नित्य दिख रहा था, नित्य समझमें आ रहा था। एकदम विपरीत बात कह दी गई कि सत् अनित्य भी है, तो जो सत्की नित्यताका दर्शन हो रहा था उसका परिगम हो रहा था उस ज्ञानमें भी धक्का लगा, अब नई बात सोचनेके लिए चला सो जिस बात के परिज्ञानमें कुछ समय लगाया, अब उसे स्थगित करके नई दूसरी बातके ज्ञान करने में चलने लगा तो उसे अब शल्य हो गयी कि तत्त्व क्या है ? तत्त्व बताया जा रहा था उसका लोप करके अब दूसरा तत्त्व कहा जा रहा है तो उसके चित्तमें शल्य हो गई और शल्य होनेपर उसे निशल्य कैसे कहा जा सकता है ? जो निशल्य नहीं है वह शरणभूत भी नहीं है, अशरण है निशल्यता हुए बिना सम्यक्त्व भी नहीं माना गया है। जो सम्यग्दृष्टि पुरुष होते हैं वे माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्योंसे रहित हुआ करते हैं पर यहाँ तो अभी मिथ्यात्व शल्य भी नहीं छूट सका। वस्तुके किसी परमार्थ स्वरूपका अवधारण भी नहीं किया जा सकता। तो शल्यवान पुरुष सम्यग्दृष्टि ही नहीं हो सकता। वह व्रतपालन क्या करेगा और मोक्षमार्गमें अपना कदम भी क्या बढ़ायेगा ? सत् नित्य है समझ रहा था और इस श्रद्धामें दृढ होनेको ही था कि एकदम प्रतिकूल बात सामने उपस्थित हो गई। यह उपदेश होने लगा कि सत् अनित्य भी है तो ऐसे संशयके झूलेमें झूलता हुआ प्राणी स्वयके लिए शरणभूत नहीं कहा जा सकता। अब और भी शल्यकी बात सुनो।

इच्छन्नपि सदनित्यं भवति न निश्चितमना जनः कश्चित् ।
जीवदवस्थत्वादिह सन्नित्य तद्विरोधिनोऽप्यत्वात् ॥४२०॥

अनित्यताकी प्रतीतिमें नित्यत्वकी मान्यता होनेपर जिज्ञासुकी अनिश्चित मनस्कताकी आरेका—कोई पुरुष ऐसा समझ रहा था कि सत् अनित्य है तो ऐसे सत्को अनित्य समझनेकी सारी दृष्टियाँ लगानेमें व्याप्त हो रहा था, पर्याय निरख रहा था। हाँ अब यह जीव मनुष्य न रहा, देव हो गया, देव न रहा अब मनुष्य हो गया आदिक रूपसे वह निरख रहा था, विश्वास कर रहा था कि सत् अनित्य है, इसका अभी पूरे तौरसे मनमें निश्चय नहीं कर पाया, इसको समझ ही रहा था और निश्चयतः कुछ सम्यक्त्व ही होनेको था कि एकदम उसके सामने प्रतिकूल बात आयी

कि सत् नित्य है। तो जब इस प्रकार सत् नित्यताकी बात सामने फिर आयी अथवा समझिये कि जो बात पहिले सोच रहा था उसी बातको अब फिर दुहराया तो बीचमे अब अनित्यताकी जो प्रतीति कहनेका था वह चलित हो गई। अब यहाँ संशयके झूले मे फिर झूलने लगा कि दूसरा फिर भी जो बताया जा रहा था वह भी दृढ नही रह सकता तो इसमे वास्तविकता क्या है,? फिर उसकी पुरानी बात आयी जिसका कि अभी निषेध किया जा रहा था तो वह चलित हो गया अपने श्रद्धानसे संशयके झूलेमे फिर पूर्ववत् झूलने लगा। उसे फिर तत्त्वके अवगमके बारेमें शल्य उत्पन्न हो गयी, वह निःशल्य न रह सका और जो निशल्य नहीं है उसको धीरता गम्भीरता धर्ममार्गमें प्रगति करना, यह कुछ भी बात नहीं बन सकती, इस कारण अनेकान्तवादमे तो जो प्रवेश करेगा वह उलझनमे ही पडा रहेगा, किसी एक तत्त्वके निर्णयमे नही पहुचता, इस कारण अनेकान्तवादका शरण करने वाला पुरुष अशरण है।

तत एव दुरधिगम्यो न श्रेयान् श्रेयसे ह्यनेकान्तः।
अप्यात्मसुखदोषात् सव्यभिचारो यतोऽचिरादिति चेत्। ४२१।

उक्त आशङ्काओसे अनेकान्तकी अकल्याणरूपताका कथन - उक्त प्रकारसे जब यह बात निश्चित् हो गयी कि अनेकान्तवादका आश्रय लेने वाले पुरुष संशयके झूलेमें झूलते हैं तब यह अनेकान्त अब दुरभिगम्य हो गया यह जाना भी न जा सका। तो कठिनतासे अधिगम्य होनेसे और संशयके झूलेके झूलनेका साधन होने से यह अनेकान्तवाद स्वय श्रेयरूप नहीं है, स्वय अमङ्गल हैं। इस जीवको उलझनके जङ्गलमें छोड देना है और इसी कारण यह अनेकान्त कल्याणकारी भी नही है इसका सहारा लेने वाला क्षण-क्षणमे नये-नये विकल्पोमे झूलता है तो वह किसी निश्चित पथ न होनेके कारण वह अपनी रक्षा ही क्या बना सकेगा ? इस अनेकान्तवादके माननेसे तो अपने मुखसे अपना ही विघात होता है जिसे वह तो आत्मघात दोष कहते हैं। स्वय ही कहते हैं और स्वय ही अपने आपका घात कर रहे जिसे कभी नित्य कहा था अब उस पक्षको छोडकर अनित्य कहने लगे। तो लो जो बात पहिले कही थी उसको खुद ही मेट दिया और इस तरह यह अनेकान्त सव्यभिचारी दोष होता है, यह निर्दोष नही कहा जा सकता। तब ऐसे अनेकान्तवादका शरण लेनेसे यह जगत अशरण बन जाता है। इस प्रकार यहाँ तक उक्त चार गाथाओमे शङ्काकारका अनेकान्त दोष मिथ्या और अकल्याणकारी सिद्ध करनेका संशय किया। अब उसके समाधानमे कहते है

तन्न यदस्तदभावे बलवानस्तीह सर्वथैकान्तः।
सोऽपि च सदनित्य वा सन्नित्य वा न साधनायालम्। ४२२।

अनेकान्त न माननेपर कुछ भी सिद्ध न कर सकनेका वर्णन करते हुए शङ्काकारकी उक्त शङ्काका समाधान - शङ्काकारने अनेकान्तके निजुद स्वरूपको न समझकर जो कुछ भी अनेकान्तमे दोष प्रदर्शित किया है, वे सब प्रयास उनके ठीक नही है, क्योंकि स्पष्ट बात है कि अनेकान्तका अगर अभाव होगया तो सर्वथा एकान्त बन जायगा। अर्थात वस्तुमे जिस किसी भी धर्मको निरखा बस उस धर्मका एकान्त हो जायगा। यह तो एक शब्दश भी सिद्ध बात है, अनेकान्त नही है। इसका अर्थ है कि एकान्त है और वह एकान्त हो जायगा सर्वथा तो सर्वथा एकान्तमे बात क्या बनी कि पदार्थके सम्बन्धमें यह आग्रह बन बैठेगा कि सत नित्य ही है अथवा कोई दूसरा पुरुष एकान्तका आग्रही यह निर्णय कर बैठेगा कि सत अनित्य ही है, किन्तु विचार करनेपर किसी भी एकान्तमें निर्दोषता सिद्ध नही हो सकती और सत् नित्य ही है, सर्वथा नित्य है इस विकल्पके माननेमे कैसे दोष आता है ? और कैसे कल्याणका मार्ग रुक जाता है ? यह बात अभी आगे बतावेंगे और इस प्रकार सत् सर्वथा अनित्य है, ऐसा कहनेमे भी किसी प्रकारकी दोषापत्तियाँ आती हैं और यह सब धर्ममार्ग रुक जाता है, इस बातका भी वर्णन करेंगे। इस गाथामे यह सकेत दिया गया है कि अनेकान्त अगर न माना जाय तो सर्वथा एकान्त पुष्ट हो जायगा और सर्वथा एकान्त मे जो कुछ भी कहा जायगा वह अपनी ही खुदकी सिद्धि करनेमे समर्थ न हो सकेगा। सर्वथा एकान्तवादमे न यह सिद्ध हो सकेगा कि सत् नित्य है और न यह सिद्ध हो सकेगा कि सत् अनित्य है।

सन्नित्यं सर्वस्मादिति पक्षे विक्रिया कुतो न्यायात् ।
तदभावेऽपि न तत्त्वं क्रियाफलं कारकाणि यावदिति ॥ ४२३ ॥

नित्यत्वैकान्तमे तत्त्व क्रिया, फल, कारक आदिकी अनुपपत्तिका दोष वह सर्वथा नित्य है, ऐसा पक्ष स्वीकार करनेमें क्या दोष आता है ? इसका वर्णन इस गाथामे किया गया है। सत् सर्वथा नित्य है, सब प्रकारसे अपरिणामी है उसमे रंचमात्र भी परिणमन अवस्था दशा व्यक्तरूप नही होता, यही तो उस पक्षका अर्थ है। यदि किसी भी प्रकारका परिणमन मान लिया जाय तो वह सर्वथा नित्य नो न कहला सकेगा। उसमे कुछ भी व्यक्तरूप समझा जाय तो व्यक्तरूपके निरखनेपर उन व्यक्तरूपोमें पूर्वापर समयमें विभिन्नता भी समझमे आयगी, तब वह सर्वथा नित्य तो न कहा जा सका। तो जो पुरुष सर्वथा नित्य कहते हैं उसका अर्थ है कि पदार्थ सर्वथा अपरिणामी है। तो सर्वथा अपरिणामी है तो उसमे विक्रिया तो किसी भी प्रकारका परिणमन, किसी युक्तिसे घटित नही किया जा सकता, और जब पदार्थमे कोई विक्रिया ही नही मानी गई बनी ही नही तब फिर न तत्त्व रहेगा, न क्रिया, न फलका कारक, कुछ भी सिद्ध नही हो सकता। किसी प्रकारका कार्य ही न हो तब

तो इससे दूसरे पदार्थोंका अभाव हो जाय, यह नियम न बनेगा ? जैसे—यहाँ घड़ा नही है, तो कपड़ा भी नही है क्या ? कपड़ा जुदी वस्तु है, घड़ा जुदी वस्तु है, लेकिन घडेमें ही कह बात कही कि इसमे रूप नही, रस नही, गध नहीं, स्पर्श नही । तो फिर घड़ा ही क्या रहेगा ? तो पदार्थका व्यक्तरूप पदार्थसे भिन्न हुआ करता है तो ततु सयोग न हो तो पट कोई चीज नही कहलाती । ऐसे ही व्यक्त रूप न हो तो पदार्थ कुछ भी सत नहीं रह सकता है । इससे सिद्ध है कि प्रत्येक सत् परिणामसे बँधा हुआ है । परिणाम बिना सत्त्व ठहर नही सकता और इसी कारणसे सत् और परिणाम इन दोनोका अविनाभाव सिद्ध कर आये हैं कि सत्के बिना परिणाम नही ठहरता और परिणामके बिना सत् नही ठहरता ।

अपि साधनं क्रिया स्यादपवर्गस्तत्फलं प्रमाणत्वात् ।
तत्कर्ता न कारकमेतत्सर्वं न विक्रियाभावात् ॥ ४२६ ॥

परिणामका अभाव माननेपर कर्ता, फल, कारकादिका अभावप्रसंग दूसरी बात यह है सत् और परिणामके सम्बन्धमे कि क्रिया तो साधन है और मोक्ष उसका फल है, यह बात प्रमाणसे सिद्ध है और इसीलिए लोग धर्ममार्गमे प्रवृत्त होते हैं कि हमको ससारके सङ्कटोसे सदाके लिए मुक्ति प्राप्त हो और इस मुक्तिके लिए धर्मपालन कर रहे हैं तो धर्मपालनमे जो कुछ भी क्रिया हो रही है अतरङ्गमे वह मोक्षके लिए हो रही है । तो क्रियाका फल क्या मिलता है कि मुक्ति प्राप्त होती है, किंतु अब यदि विचार ही नही माना जाता, वस्तुमे परिरमण नही माना जाता, हम आप सब जीवोमे अज्ञान परिणति हटे, ज्ञान परिणति आये, ऐसी कोई परिणति ही नहीं मानी जाती तो इसका अपवर्ग कैसे होगा ? और कर्ता और कारक आदिक भी सब कुछ नही बन सकते, क्योकि वहां परिणमन ही कुछ नही माना जा रहा । तो परिरमण तो वस्तुके सत्में बँधा हुआ है प्रत्येक पदार्थ स्वभावत उत्पन्न होता है, विलीन होता है और बना रहता है । उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनो ही प्रत्येक पदार्थमें प्रति समय होते हैं, तो मानना होगा कि प्रत्येक सत् परिणमनशील है । यह वस्तुका स्वरूप है और सच्चा स्वरूप ज्ञानमे आ जाये तो आत्माका स्वरूप भी ज्ञानमे आये । तो वहाँ यह समझमे आयगा कि प्रत्येक पदार्थ जब अपने स्वभावसे उत्पन्न होता है विलीन होता है और बना रहता है तो फिर किसी पदार्थका दूसरा पदार्थ क्या लगा ? प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है । किसी पदार्थका कोई अन्य स्वामी नहीं है मैं आत्मा हू, सत् हू इसी कारण स्वतन्त्र हू और स्वतन्त्रतया परिणमता रहता हू । मैं अपनेमे अपनी अवस्था बनाता हू और पहिली अवस्था विलीन करता हू और सदा बना रहता हू इसके आगे मेरा कही बाहर लेनदेन नही है तो जब मेरा सब कुछ भविष्य मुझपर ही निर्भर है और मैं अपने परिणमन से परिणमता ही रहूगा । जब ऐसी मेरी बात

मेरेमे ही पायी जाती है तब मेरा बाहरमे कुछ भी क्या रहा ? अज्ञानी जन मोह करके दुखी होते हैं । जब ज्ञानका उदय होता है तो मोह मिटा कि समस्त दुःख तुरत ही दूर हो जाते है । दुःख तो हम अपने अज्ञानके बलपर लाद लिया है । जहाँ अज्ञान दूर हुआ कि सकट भी सब दूर हो जाया करते हैं । अज्ञान दूर होनेका उपाय है वस्तुके स्वरूपका ज्ञान । वस्तु स्वय सत् है और स्वय परिणमशील है । अपने ही प्रदेशमे रहने वाला है, अपनेमे अलग-अलग अद्वैतरूप है । इस प्रकार वस्तु स्वरूपका बोध होनेमे मोह दूर होता है । मोह दूर होनेसे अपवर्गकी प्राप्ति होती है । तो यह धर्मपालक भी इसी आधारपर है । यदि विक्रिया नही मानी जाती, पदार्थका परिणमन स्वीकार नही किया जाता तो पदार्थकी सत्ता ही नहीं रहती और न कोई शान्तिका मार्ग ही बनाया जा सकता है ।

ननु का नो हानिः स्याद्भवतु तथा कारकाद्यभावश्च ।
अर्थात् सन्नित्य किल न ह्यौषधमातुरे तमनुवर्ति ॥ ४२७ ॥

अनेक प्रसङ्ग आनेपर भी परिणामका अभाव माननेमे कुछ हानि न समझनेकी आशंका—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि पदार्थमे विक्रिया न माननेसे यदि कारक कर्ता आदिकका अभाव होता है तो हो, इसमे कोई हानि नही है वस्तु तो शाश्वत नित्य ही है । माना कि औषधि रोगीके लिये होती है परन्तु रोगीकी इच्छापर औषधि नही चलती । इसी प्रकार विक्रियाके न माननेपर यदि कारक आदिका अभाव होता है तो हो, उन कारकादिकको बनानेके लिए हम वस्तुमे परिणाम मानें, विकार मानें इसकी आवश्यकता नही है । वस्तु तो केवल परिणामी और शाश्वत नित्य ही होती है । यहाँ अद्वैतवादमें अपरिणामी एक ब्रह्म तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए माना गया है, और जो प्राणी ऐसे अपरिणामी शाश्वत नित्य सह स्वरूपपर दृष्टि करते हैं वे ससार सङ्कटोसे मुक्त होकर ब्रह्मम लीन हो जाते हैं । तो वहाँ यदि कर्ता कारक नहीं बनता तो मत बनो, किंतु वस्तु तो शाश्वत नित्य ही मानी जानी चाहिए । वहाँ परिणाम कुछ भी नहीं है । यह विकार परिणाम अवस्था ये सब तत्त्वसे बाहरकी बाते हैं, और इनमे जो फसता है बस उसीका नाम मोही है । तो विक्रिया नही है चाहे कारक आदिक बने अथवा न बने वस्तु शाश्वत अपरिणामी ही है, इस प्रकार अद्वैतवादीने एक अपरिणामी ब्रह्म तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए अपना मतव्य रखा है ।

सत्यं सर्वमनीषित मेतत्तदभाववादिनस्तावत् ।
यत्सत्तत् क्षणिकादिति यावन्नोदेति जलदहृष्टान्तः ॥४२८॥

सर्वथा नित्यत्वके मन्तव्यका निराकरण - अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकार ने शाश्वत नित्य मानकर कारक कर्ता विकार आदिका अभाव सिद्ध करना चाहा है लेकिन उसकी मनचाही यह बात तब ही तक बन सकती है जब तक कि पदार्थको क्षणिक सिद्ध करनेका अनुमान और उसकी पुष्टिमे मेघका दृष्टान्त सामने नही आता। जो सत् है वह क्षणिक है जैसे कि मेघ आया मेघ देखते देखते ही विलीन हो जाता है, आखिर कोई सत् तो है ही जो दिख रहा है वह असत् तो नही है फिर भी उसका व्यय विनाश देखा जा रहा है और उन मेघोका परिणमन प्रतिसमय कैसा-कैसा विलक्षण चलता है यह भी दृष्टिमे आरहा है, तो मेघका ऐसा व्यक्त परिणमन देखकर भी यह शंका रखना कि जो सत् है वह सर्वथा नित्य ही है, यह मतव्य कैसे सिद्ध हो सकता है तात्पर्य यह है कि सत् है तो शाश्वत जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं होता, लेकिन प्रत्येक सत् परिणाममे परिणमनशील है। प्रत्येक सत् का यह स्वभाव ही है कि वह निरन्तर परिणमन करता ही रहे। अब वहाँ सम्भावनायें बनाना कि परिणमन नही होता, परिणमन माया है, परिणमन किसी परके सयोगसे है ये सब कल्पनायें मात्र हैं। भले ही किसी अन्य पदार्थके सम्बन्धमे विकार आये लेकिन विकार रूप होता तो नही कोई परिणमनको मना नही किया जा सकता। प्रत्येक वस्तु है और वह परिणमनशील है। विक्रिया न माननेपर सत्का अभाव हो जाता है, यह बात जो सिद्धान्तमें रखी गई है वह पूर्णतया युक्तिसगत है।

अयमप्यात्मरिपुः स्यात् सदनित्यं सर्वथेति किल पक्षः।
प्रागेव सतो नाशादपि प्रमाणं क तत्फलं यस्मात् ॥४२६॥

सर्वथा अनित्यत्वके मन्तव्यमे भी प्रमाणकी, फलकी व स्वपक्ष साधन की अनुपपत्ति—जिस प्रकार वस्तुको सर्वथा नित्य कहकर शंकाकार ने अपने ही पक्ष का विघात किया इसी प्रकार जो सत् को सर्वथा अनित्य कहते हैं वे भी स्वय अपने पक्ष के शत्रु हैं, क्योकि सर्वथा अनित्य माननेमे यह बात आई कि सत्का पहिले ही नाश हो गया। उत्पन्न होते ही सत् नष्ट हो जाता है। तो जब सत्का नाश ही हो गया तब प्रमाण और उसका फल कैसे बन सकता है ? प्रमाण माने विना सिद्धान्तकी व्यवस्था नही बन सकती। मानो किसीका यह ही सिद्धान्त हो कि सत् सर्वथा क्षणिक है, पर इसकी सिद्धि तो करनी पडेगी। तो सिद्धि करने वाला भी कुछ समय टिकता है कि नही और जिसको समझाया जा रहा है वह भी कुछ समय टिकता है कि नहीं ? और इतने पदार्थ समागममें आ रहे हैं ये पदार्थ भी टिकते हैं या नही? यदि सभी कोई क्षणवर्ती मान लिया जाय तो समझाने वाला भी कौन समझाया जाने योग्य भी कौन और क्या समझाना ? यह व्यवहार भी न बनेगा और प्रमाण भी न बनेगा। तो जब न प्रमाण है, न ज्ञान है तब फिर उसका फल कैसे बन सकता है ? वहाँ मुक्ति शान्ति

तत्वज्ञान प्रसन्नता आदि फल भी कुछ न हो सकेंगे। तो सर्वथा नित्यकी तरह सत् को सर्वथा अनित्य माननेमे भी स्वय शकाकारके पक्षका घात हो जाता है।

अपि यत्सत्तदिति वचो भवति न निगृहकृतेस्वतस्तस्य।
यस्मात् सदिति कुतः स्यात् सिद्धं तत्सन्यवादिनामिह हि ॥४३०॥

सत् को अनित्य माननेका एकान्त करनेपर सत्की वचनागोचरताका प्रसङ्ग जिस प्रकार सत्को सर्वथा नित्य माननेमे दोष आना था उसी प्रकार सत्को सर्वथा अनित्य माननेमे भी आपत्ति है। जो पुरुष ऐसा विकल्प करता है कि सत् सर्वथा अनित्य है तो वह स्वय अपना शत्रु है। जब सत् को सर्वथा नित्य कहा तो इसका अर्थ है कि सतका पहिले ही नाश होगया अथवा उत्पन्न होना न ट होगया तब प्रमाण और उसका फल कैसे बन सकता है? किसी भी ज्ञानने प्रमाणता स्वीकार करनेमे द्वितीय क्षणकी अपेक्षा तो होनी ही है और उसका फल छोडने योग्यको छोड देना और ग्रहण करने योग्यको ग्रहण करना यह भर तो उस ज्ञानके बाद ही बन सकेगा। अतएव जो पुरुष सत् को सर्वथा अनित्य मा ते हैं वे स्वय अपनी मान्यता को कायम नही रख सकते।

अपि च सदमन्यमानः कथमिव तदभावसाधनायालम्।
वन्ध्यासुत हिनस्मीत्यध्यवसायादिवद् व्यलीकत्वात् ॥४३१॥

सत्का अभाव स्वीकार करनेपर सत्मे नित्यत्वका अभाव सिद्ध करने की असगतता--दूसरी बात यह है कि जो सत् है वह इतना कहदेने मात्रसे स्वय उसका अभाव कर देते हैं क्योंकि जो सत् है उसे ऐसा कहनेमें एकता आती है और नित्यता आती है। तो इस वचनसे ही स्वय अनित्यपनेका निराकरण हो जाता है। यदि सत् सर्वथा नही है ऐसा माना जाय अर्थात् सत् है वह वही है ऐसा न माननेमे सत्का अभाव ही बनता है तब सत्की सिद्धि वहाँ कैसे की जा सकती है? यो सत्को अनित्य माननेमे द्वितीय आपत्ति यह है कि सत्का अभाव मानने वालोने अथवा विनाश मानने वालोने सत्की सिद्धि करनेमे क्षमता नही प्राप्त किया है, अत पहिली आपत्ति तो यह थी कि प्रमाण और फल न बनेगा। दूसरी आपत्ति यह है कि सत्का जब विनाश हो गया तो उस सत्की सिद्धि नही की जा सकती। सत् तो क्षणमे हुआ था। समझाने वालो का प्रयास द्वितीय क्षणमे है, जिसे समझा रहे वह सत् ही न रहा तो सत्का समझाना क्या है? इस कारण सत्को सर्वथा अनित्य माननेमे समझने समझानेका व्यवहार समाप्त हो जाता है।

अपि यत्सत्तन्नित्यं तत्साधनमिह यथा तदेवेदम् ।
तदभिज्ञानंसमक्षात् क्षणिकैकान्तस्य बाधकं च स्यात् ॥४३२॥

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे क्षणिकैकान्तका विघात—सत्को सर्वथा अनित्य माननेमे तीसरी आपत्ति यह आती है कि जो सत्को नही मान रहा है वह सत्का अभाव सिद्ध करनेके लिए कैसे समर्थ है ? जैसे कोई कहे कि मैं वन्ध्यापुत्रको मारता हू, तो उसको यह कहना झूठ है । जब वन्ध्यापुत्र है ही नहीं, तो उसके मारनेका आश्रय कौन होगा ? इसी प्रकार जब सत् ही नहीं है तो सत्का आश्रय भी सिद्ध कैसे किया जा सकता है ? जैसे सत्का विनाश माननेपर सत्की सिद्धि नही बन सकती उसी प्रकार सत्का विनाश माननेपर सत्के अभावकी भी सिद्धि नहीं बन सकती । तब सत् को सर्वथा क्षणिक मानने वाले जो कुछ सत्के बारेमे कहेगे वह वन्ध्यासुतके मारनेके वचनकी तरह समझिये । वह असत्य ही है । उसमे स्ववचनबाधित दोष आता है । चौथी बात यह है कि सभी लौकिक जनोको भी सतके बारेमे प्रत्यभिज्ञान होता है । जो सत है वह नित्य है । इसकी सिद्धि एकत्व प्रत्यभिज्ञानमे जिसका विषय है वही यह है । इस प्रत्यभिज्ञान प्रमाणमे उसकी सिद्धि होती है जो कि क्षणिक एकान्तमें बाधक है जिससे क्षणिक एकान्तकी सिद्धि होती है । सभी पुरुष किसी भी पदार्थको निरखकर जिससे कि उनका व्यवहार बनना है उसमें वही वह है, इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न करता है । लेन-देनमे, घर-गृहस्थीमे, या शासन पार्टी आदिकमे सर्वत्र एकत्व प्रत्यभिज्ञान पाया जाता है । एकत्वके ज्ञान बिना किसी भी प्रकारको व्यवहार व्यवस्था बनना असम्भव है । अत अपने-अपने अनुभवसे भी यह बात प्रसिद्ध है कि सब सत सर्वथा क्षणिक नही हैं ।

क्षणिकैकान्तवदित्यपि नित्यैकान्ते न तत्त्वसिद्धिः स्यात् ।
तस्मान्न्यायादागतमिति नित्यानित्यात्मक स्वतस्तत्त्वम् ॥४३३॥

सर्वथा नित्य एकान्तमे भी पदार्थकी सिद्धिका अभाव—जिस प्रकार क्षणिक एकान्तके माननेपर पदार्थकी सिद्धि नही होती है उसी प्रकार नित्य एकान्तके माननेपर भी पदार्थकी सिद्धि नही होती । वस्तुको सर्वथा नित्य माननेपर जब उसमे परिणमन ही नही होता तब क्रिया कारक फल ये सिद्ध नहीं हो सकते । इसी प्रकार वस्तुको सर्वथा क्षणिक माननेपर भी उसमे प्रमाणफल कारक ये सिद्ध नही होसकते । अतएव न्यायसिद्ध यह बात है कि पदार्थ स्वभावसे ही नित्यानित्यात्मक है । पदार्थके नित्यानित्यात्मक पदार्थके सत्त्वके ही कारण हैं । यदि कोई सत है तो नियमसे वह नित्यानित्यात्मक है क्योकि जब वह है तो उसका मूलत. नाश कभी नही हो सकता । नाश कैसे हो ? नाश होकर सर्वथा उपहार कैसे हो सकेगा ? उसका सत्त्व जो कुछ

उनका सर्वस्व है वह चाहे किसी भी रूपमे बदल जाय मगर सर्वथा उसका लोप नही हो सकता। अतएव सत नित्य है। नित्य होकर यदि वह सर्वथा अपरिणामी बन जाय उसका किसी भी रूपमे व्यक्त रूप न आये तो उसका भी सत्त्व क्या है? जैसे नित्य एकान्तवादियोने एक अपरिणामी अविकारी ब्रह्म माना है तो वह केवल शब्द की बात रह गई। वहाँ न तो ब्रह्मकी चर्चा करने वालेको लाभ है और न किसीके अनुभवमे बात उतर सकती है। हाँ यदि परम शुद्ध निश्चयनयको विषयभूत तत्त्वको ब्रह्म शब्दसे कहा जाय तो वहाँ समझने वाले की दृष्टि जम सकती है। लेकिन परम शुद्ध निश्चय नयका विषयभूत ब्रह्मतत्त्व केवल ऐसा ही हो सर्वथा तो बात नही है। एक पदार्थ है उस पदार्थमे परम शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे निरखनेपर एक त्रैकालिक अविकार स्वरूप दीखा। तो यो अगर नय विभागपूर्वक बात कही जाय तो अपरिणामित्व सिद्ध होता है। पर सर्वथा पदार्थ अपरिणामी हो यह बात सिद्ध नही होती, यदि वस्तुमे परिणमन नही है, उसकी कोई व्यक्त मुद्रा नही है तो वस्तु ही सत नही हो सकती।

ननु चैक सदिति स्यात् किमनेक स्यादथोभय चैतत् ।
अनुभयमिति कि तत्त्व शेष पूर्ववदथान्यथा किमिति ॥४३४॥

सत्के एकत्व अनेकत्वसे सम्बन्धित शङ्काकारके प्रश्न—अब यहाँ नित्य अनित्य पक्षकी शङ्का समाधानके बाद शङ्काकार कहता है कि सत क्या एक है अथवा अनेक? उभयरूप है या अनुभयरूप है? या अन्य प्रकारसे है? शङ्काकार कुछ दृष्टियोसे कुछ पहिचान रहा है तब तो ऐसी शङ्का कर रहा है, परन्तु वह अपनी दृष्टियोमे अविरुद्ध रूपसे नही रह पा रहा, इस कारण शङ्का कर रहा, न तो दृष्टियो की सही पहिचान करने वाले शङ्का कर सकते हैं और न दृष्टियोमे अनभिज्ञ पुरुष इस प्रकारकी शङ्का कर सकते है। अनभिज्ञ पुरुष किस आधारपर यह प्रश्न करेंगे कि सत एक है अथवा अनेक? प्रश्न करते हुएमे कुछ तो उसने भापा कुछ तो समझा। उस आधारपर यह प्रश्न किया जा रहा। समझने वाला सुनने वाला शङ्काकारके ही प्रश्नका उत्तर समझते हुए समाधान कर सकता है। पर जिसको दृष्टियोका कुछ सहारा मिला, परन्तु अविरुद्ध रूपसे समझनेकी बात नही जगी उसके चित्तमे ऐसी शङ्का होना प्राकृतिक है। शङ्काकार यहाँ सतके विषयमे पूछ रहा है कि वह एक है अथवा अनेक है? अनेक पुरुष सतको अनेक भिन्न-भिन्न मानते हैं। और प्रत्यक्षसे ऐसे ही नजर आते है। तो कुछ दार्शनिक समग्र सतको एक ही सत समझते है। यो अनेक पक्षोको सुनते हुए यह शङ्काकार पूछ रहा है कि सत एक है अथवा अनेक है? लेकिन इस शङ्कासे सम्बन्धित जितने विकल्प हो सकते हैं उन विकल्पोको भी प्रश्नमे रख रहा है कि क्या उभयरूप है अथवा अनुभयरूप? या पहिलेके विकल्पोकी तरह किसी अन्य प्रकारसे भी है? यो जिन चतुष्टयोंसे गुम्फित वस्तुको बताया गया था

उनमेसे प्रथम पक्षका तो वर्णन हो चुका था, अब यह द्वितीय प्रसङ्ग चल रहा है कि सत एक है अथवा अनेक ?

सत्य सदेकमिति वा सदनेक चोभय च नययोगात् ।
न च सर्वथा तदेक सदनेक वा सदप्रमाणत्वात् ॥ ४३५ ॥

नययोगसे सत्के कथंचित् एकत्व आदिकी सिद्धिका समाधान--शङ्काकारका कहना यद्यपि कुछ सत्य है लेकिन युक्तिसे अपेक्षासे सत एक भी है अनेक भी है और उभयरूप भी है, किंतु अपेक्षाको छोडकर सतके बारेमे सर्वथा कुछ भी कहना अप्रमाण है। जैसे कोई कहे कि सर्वथा एक है तो ऐसा मानना अप्रमाण है अथवा अनेक ही बताया, सर्वथा अनेक बताया। यहाँ तक अनेकपर पहुंच जाय कि बुद्धमे कोई स्वरूप यदि भिन्न-भिन्न जच रहा है तो उसे भी अनेक कह डालो। जैसे एक ही पदार्थमे गुण कर्म सामान्य विशेष ये भिन्न भिन्न स्वरूपमें जचते हैं तो इन्हें भी भिन्न भिन्न सत कह डाला कुछ दार्शनिकोंने। इस प्रकार सतको सर्वथा अनेक कहना यह भी अप्रमाण है।

अथ तद्यथा सदेकं स्यादभिन्नप्रदेशवत्त्वाद्वा ।
गुणपर्यायांशैरपि निरंशदेशादखण्डसामान्यात् ॥ ४३६ ॥

नयकी विवक्षासे सत्के एकत्वका प्रतिपादन—जैसे द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सत् एक है, इस गाथामें सत्का एकत्व सिद्ध किया जा रहा है। जब द्रव्य दृष्टिसे पदार्थको निहारते हैं तो प्रत्येक पदार्थ अभिन्न प्रदेशी है, उसमें गुण पर्याय कोई पृथक प्रदेशमें नहीं पाये जाते, अतएव वे निरंश हैं। किसी भी पदार्थमें गुण भेद नहीं पडे हुए हैं, जैसे कि समझानेके लिए गुण भेद अवस्थित रूपसे बताये जाते हैं कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति आदिक आत्माके गुण हैं अथवा रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलके गुण हैं। प्रतीत जरूर होता है और सत्य भी विदित होता है कि जब पुद्गल पदार्थका घ्राणेन्द्रिय द्वारा ज्ञान किया जाता तो गंधरूपसे जिन जिन चक्षु इन्द्रिय द्वारा रूप देखा जाता भले ही प्रतिभास भेद भी है, लेकिन वस्तु मूलमे स्वयं किस रूप है ? वह जिस रूप है उस ही रूप है वह अखण्ड एक है, उनमे गुण भेद किन्हीं अपेक्षाओसे किया जाता है। तो जहाँ गुणका भेद नहीं, पर्यायरूप अंशका भी भेद नहीं अतएव वह सत् एक है। यहाँ यदि विश्वके समस्त पदार्थोंको सत् स्वरूपसे देखा जाय तो सत् एक है यह कहा जा सकता है, पर यह जाति अपेक्षा कथन है। पदार्थको निरखकर कथन नहीं होता। जो वास्तवमे सद्भूत है, अर्थ क्रियावान है, असाधारण स्वरूप है, ऐसे सत्की बात इस गाथामें कही गई है। जाति अपेक्षा एकत्वकी कल्पना करना ही

तो कल्पना है। जैसे मनुष्य सब एक हैं यह कथन कल्पनासे और जाति अपेक्षासे तो कहा जा सकता है, पर सत्का काम है अर्थक्रिया होना, अपने स्वरूपमे सत् होना पर रूपसे असत् होना, यह सब बात जातिमे नही हुआ करती। जब किसी भी एक पदार्थ को निरखकर उसमे सत् एक है यह बात बताते हैं चूंकि गुण पर्यायका भेद नही है, निरंश है अखण्ड है, इस कारणसे सत् एक है।

द्रव्येण क्षेत्रेण च कालेनापीह चाथ भावेन।
सदखण्ड नियमादिति यथाधुना वक्ष्यते हि तल्लक्ष्म ॥४३७॥

द्रव्य क्षेत्र काल भावसे सत्के एकत्वके प्रतिपादनकी घोषणा—वस्तुके स्वरूपका निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षा मे किया जाता है। वस्तुमे किसी भी धर्मका निर्णय करना हो तो वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे किया जायगा यहाँ शंकाकारकी जिज्ञासाके अनुसार प्रथम यह बताते हैं कि सत् एक है या अनेक ? अनेकान्तवादमे ये दोनों ही उत्तर सही हैं किसी अपेक्षासे सत् एक हैं और किसी अपेक्षा सत अनेक हैं। इसमे परमार्थ सत् एक है। यह सभी पदार्थोंका मिलकर सत् नही बताया जा रहा किन्तु विशिष्ट विशिष्ट सत् प्रत्येक सत् अपने आपमे एक अखण्ड हैं। यो सत एक है यह बताया जायगा। फिर व्यवहार दृष्टिसे सत अनेक हैं। चूंकि उस एक सतको उस ही रूपमे समझानेकी कोई पद्धति नही है। वह तो ज्ञानमे आगया उसे किसी न किसी प्रकार भेद करके कहा जायगा। जब उसमे गुण पर्याय आदिकका भेद करके समझानेमे व्यवहार पद्धति आती है और वहाँ तब सत गुण रूप है, पर्याय रूप है, यो नानारूप विदित होनेकी सतमे अनेकता विदित होती है। क्षेत्र अपेक्षासे सत एक है अथवा अनेक है यह बताया जायगा, जो कि सक्षेपत. अखण्ड स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे एक है, किन्तु उसमे प्रदेश अनेक होनेपर वे प्रदेशकी अपेक्षामे अनेक हैं, काल की अपेक्षा भी एक अनेकका वर्णन होगा, जिसमे इस पद्धतिमे बताया जायगा कि सामान्यकालकी अपेक्षामे याने परिणमन मात्रकी दृष्टिसे वह काल एक है, सभी परिणाम मात्र है, और विशिष्ट कालकी अपेक्षासे काल अनेक हैं अर्थात प्रतिसमयके परिणमन भिन्न-भिन्न हैं। यो ही भावकी अपेक्षासे भी एक और अनेक बताये जायेंगे। एक सामान्य स्वभावकी दृष्टिसे सत एक है उस अखण्ड भावको समझाके लिए जो भेद किया जाता है, गुणा जाता है वह गुण कहलाता है और उन गुणोकी दृष्टिसे सत अनेक हैं इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सतकी एक अनेकताका वर्णन किया जायगा। जिसमेसे यहाँ सत एक है इस बातका पहिले वर्णन करते हैं।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं तद्गुणपर्ययवपुः सदेकं स्यात्।
न हि किञ्चिद्गुणरूपं पर्ययरूपं च किञ्चिदंशांशैः ॥४३८॥

द्रव्यदृष्टिसे सत्‌के एकत्वका विचार - द्रव्य गुणपर्यायवान है ऐसा द्रव्यका लक्षण बताया गया है, तो गुण पर्यायवान द्रव्य कोई भिन्न गुण पर्यायसे युक्त नही है किन्तु गुण पर्याय ही द्रव्यका कलेवर है शरीर है अर्थात वह द्रव्य है, वही गुण और पर्यायरूपमे विदित होता है। तो गुण और पर्याय ही जिसका एक शरीर है ऐसा यह द्रव्य एक है। यह द्रव्य दृष्टिसे द्रव्यकी एकताका कथन किया जा रहा है। द्रव्य दृष्टि मे वह द्रव्य एक अखण्ड है, वहाँ यह भेद नहीं है कि कुछ अश गुणरूप हो और कुछ अश पर्यायरूप हो। किन्तु वह समूचा ही द्रव्य गुणरूप है, पर्यायरूप है। वहाँ गुण और पर्याय प्रथक प्रथक नहीं हैं, अतएव गुणपर्यायमय जिसका शरीर है उसको द्रव्य कहते हैं। और, वह अखण्ड एक है, इस कारण द्रव्य दृष्टिमे द्रव्य एकरूप है इसी बात को समझानेके लिए दृष्टान्त देते हैं।

रूपादितन्तुमानिह यथा पटः स्यात्स्वय हि तदद्वैतम्।
न हि किञ्चिद्रूपमय तन्तुमय स्यात्तदशगर्भांशैः ॥४३६॥

सत्‌के एकत्वकी सिद्धिमे दृष्टान्त—जैसे कपडा रूपादिक वाला है, ततु वाला है ऐसा जो कहा जाता है इसमे यह बात नही है कि कपडा अलग है, रूप अलग है, और ततु अलग है, किन्तु वह स्वय ही रूपादिमान और ततुमय है। दोनों ही रूप स्वय है। अथवा यह कहो कि रूपादि और तंतु अर्थात उसके प्रदेश और गुण परिणमन, वही जिसका शरीर है ऐसा वह ततु है। तो जैसे द्रव्यदृष्टिसे अर्थात सामान्य दृष्टिसे वह कपडा एक अखण्ड वस्तु है उसमें यह विभाग न होगा कि कुछ अश ता रूपमय हैं और कुछ अश ततुमय हैं अथवा उन्हींमें कुछ अशोकी दृष्टिसे यह न बनेगा कि किन्हीं अशोकी अपेक्षा रूपमय है और किन्हीं अशोकी अपेक्षा तंतुमय है, क्योंकि साराका सारा रूपवान और ततुवान है। जैसे पटको द्रव्य दृष्टिसे अखण्ड बताया गया है इसी प्रकार द्रव्य भी द्रव्य दृष्टिसे अखण्ड है, वहाँ विभाग नही है। जो कुछ भी है वह सब एक अखण्ड है।

न पुनर्गोरसवदिद नाना सत्त्वैकसत्त्वसामान्यम्।
सम्मिलितावस्थायामपि घृतरूप च जलमय किञ्चित् ।४४०।

गोरसवत् सत्‌के एकत्वकी सिद्धिका अप्रसङ्ग—गोरसकी तरह नाना सत्त्वका समूहरूप एक सत्त्व सामान्यरूप नही है। द्रव्य जैसे कि गोरसमे वहाँ नाना तत्त्वोका समूह है, वहाँ घृत भी है जल भी है। तो जैसे गोरसकी सम्मिलित अवस्थामे भी कुछ अश घृतरूप होता कुछ अश जलमय होता, वहाँ यद्यपि घृत अलग नहीं पडा हुआ है दूध या दही अवस्थामें, फिर भी जो जल अंश वाले अणु हैं उनमे कभी घी न

प्रकट होगा, घी अंश अपने अंशोमे है। जैसे स्वर्णपाषाण जो कि जमीनमे शुरूसे ही है वह पूरा स्वर्णमय नही है। मानो १० मन स्वर्णपाषाण हुआ तो उसमे अनेक विधियोसे निकाला जानपर कोई तोला दो तोला शुद्ध स्वर्ण निकलता है। तो वह तोला दो तोला शुद्ध स्वर्ण जितना है उतनेमे ही पाया जाता, कही पूरी मिट्टीमे वह नही पाया जाता। वहाँ स्वर्ण अलग है मिट्टी अलग है। लेकिन इतना सूक्ष्म रूप है कि वह स्वर्ण सारी मिट्टीपर छाया है उसको विधिपूर्वक निकालनेसे वे दोनो अलग अलग अशोमे निकल आते हैं। तो ऐसे ही गोरसमे भी जल, घी ये अपने अपने अंशो मे हैं तो यहाँ अनेक अशोका टूकका समुदाय गोरस कहलाया, स्वर्णपना कहलाया। इस तरह द्रव्य नही है कि द्रव्यमे गुणपना और पर्याय अश ऐसे अनेक सत्त्व पडे हुए हो और उन गुण और पर्याय सत्त्वोका समूहरूप एक सत्व सामान्य द्रव्य कहलाता हो ऐसी स्थिति नही है किंतु पट और रूपादिमान और ततुमानकी तरह द्रव्यकी स्थिति है, वह समूचा द्रव्य गुणमय है, समूचा ही पर्यायमय है। जब द्रव्य दृष्टिसे निरखते है तो पर्याय और भेद ये दृष्टिमे नही रहते हैं उस स्थितिमे वह समूचा अखण्ड जो है वह ही है। इस तरह द्रव्य दृष्टिसे द्रव्य अखण्ड एक होता है।

अपि यदशक्यविवेचनमिह न स्याद्वा प्रयोजकं यस्मात् ।
क्वचिदश्मनि तद्भावान्माभूत कनकोपलद्वयाद्वैतम् ॥४४१॥

अशक्यविवेचनत्वसे भी सत्के एकत्वका अप्रसङ्ग— द्रव्यके सम्बंधमें जो अनेकता बतायी जा रही है उसके कारण यह नही कहा जा सकता कि चूंकि उसमे गुण और पर्यायका अलग कारण नही होता, वे प्रथक नही किये जा सकते, उनका विवेक करना, उनको प्रथक प्रथक रखना अशक्य है इस कारण द्रव्य एक है और द्रव्य की एकताका सही हेतु नही है, ऐसा तो कनक पाषाण मे भी सम्भव है। कनक पाषाणमें जैसे मिट्टीमे स्वर्ण निकलता हो उसमे यह विवेचन नही किया जा सकता, विवेक भेदकरण प्रथक प्रथक नही किया जा सकता कि लो स्वर्ण तो यह है और मिट्टी यह है, न तो आँखो देखकर बताया जा सकता और न उस समय उन्हे अलग किया जा सकता है। तो अशक्य विवेचनके नाते से द्रव्यको यदि एक माना जाय तब तो स्वर्ण पाषाणमे भी एकता मान ली जानी चाहिए। जो स्वर्ण है वह मिट्टी है, जो मिट्टी है वह स्वर्ण है, तो इस शक्य विवेचनकी वजहसे वहाँ एकता नही मानी गई है, किन्तु वह द्रव्य ही स्वय अपने आपमे एक सत् है। जो एक सत् है वह स्वय अपने आपमे अखण्ड है। यदि खण्ड हो जाय तो वहाँ भिन्न सत् है ऐसा समझना होगा। जैसे दिखने वाले चौकी आदिक पदार्थोमें चौकी के खण्ड-खण्ड हो जाते हैं टुकडे कर दिए जाते हैं तो इससे मालूम होता है कि वह चौकी स्वय एक सत् नहीं है किन्तु उस चौकीमे अनेक परमाणु हैं और वे सब परमाणु मिलकर चौकी स्कधमे आये हुए थे तो वह चौकी स्कध

अनेक सत्का समूह है। अब अनेक सत्का समूह था उस चौकीमेंसे कुछ सत् अलग हो गए कुछ दूसरी ओर पड गए। जो एक सत् हो उसके कभी खण्ड नहीं किए जा सकते। तो द्रव्यमें ऐसी एकता है, कि जिसका कभी खण्डन नही हो सकता, अतएव द्रव्यका जो यह लक्षण कहा है—गुण पर्याय ही जिसका काय है उसको द्रव्य कहते है, यह पूर्णतया युक्तिसंगत है।

तस्मादेवकत्वं प्रति प्रयोजकं स्यादखण्डवस्तुत्वम्।
प्रकृत यथा सदेक द्रव्येणाखण्डित मत तावत् ॥४४२॥

अखण्डवस्तुत्व हेतुसे सत्के एकत्वकी सिद्धि—इस कारण पदार्थमें जो एकत्व है उसका हेतु यह है कि वह अखण्ड वस्तु है। अखण्ड वस्तु होनेके कारण ही पदार्थ मे एकता सिद्ध होती है, अर्थात पदार्थ द्रव्यकी अपेक्षासे अखण्डित हैं। यहाँ दृष्टि मे जितने भी पदार्थ आते हैं उन पदार्थोंमे यदि परमार्थ द्रव्य निरखना है समझना है, तो उसे युक्ति द्वारा अणुरूपमे समझा जा सकेगा। इस पदार्थमे जो एक एक अणु हैं वे प्रत्येक एक-एक पदार्थ हैं और उन एक-एक अनेक पदार्थोंका समूह यह स्कंध है तभी इसके टुकडे हो सकते हैं। एक सत्के त्रिकालमेभी कभी खण्ड नही होसकते ये पुद्गल स्कध अनेक परमाणुओंके समूह हैं, अनेक पिण्ड के सहित हैं अत विभाजन हो जाता है, एक प्रदेश रूप रसगंध स्पर्शमय हैं लेकिन अणु एक प्रदेशी है और वही एक प्रदेश रूपरस गध स्पर्शमय है, उनके रूप रसगधस्पर्शको प्रथक नही किया जा सकता। भले ही कुछ दार्शनिकोने ऐसा माना है कि अणुमे यह एक द्रव्य नहीं है किन्तु रूपलक्षण, रसलक्षण, गधलक्षण यो,अनेक पदार्थोंका समूह है और वह कल्प इसे माना गया है वस्तुत जो निरशभाव है, निरश क्षेत्र है निरश द्रव्य है, निरश काल है वही तत्व कहलाता है, लेकिन विचार करनेपर एक पदार्थमे जितने धर्म विदित होते हैं उन धर्मोंका प्रथक-प्रथक द्रव्य सज्ञाकारूप नही दिया जा सकता है तो एकत्व है पदार्थमें इसको सिद्धकरने वाला हेतु है अखण्डवस्तुपना। चूंकि वह अधर्म वस्तु है इस कारण वह एक हैं। उसका द्रव्य दृष्टिसे द्रव्य अपेक्षासे खण्डन कभी नही किया जा सकता।

ननु यदि सदेव तत्त्व स्वय गुणः पर्यय स्वयं सदिति।
शेषः स्यादन्यतरस्तदितरलोपस्य दुर्निवारत्वात् ॥४४३॥
न च भवति तथावश्यम्भावात्तत्समुदयस्य निर्देशात्
तस्मादनवद्यमिदं छायादर्शवदनेकहेतुः स्यात् ॥४४४॥

सत्को ही तत्त्व, गुण, पर्याय माननेसे अन्यतर ही शेष रह जानेके

प्रपञ्चको दूर करनेके लिये सत्की अनेकहेतुता व अनेकता छायादर्शवत् माननेकी आशंका—शङ्काकार यहाँ शङ्का रख रहा है कि ऊपर यह बताया गया कि सत् ही स्वय तत्त्व है, वह ही स्वय गुण है और वह ही स्वय पर्याय है। तो यदि स्वय सत् ही द्रव्य कहा जाय और वही स्वय गुण कहा जाय और वही स्वय पर्याय कहा जाय तब तो एक बात कोई रहना चाहिए, शेष तो बातोंका लोप हो जाना चाहिए, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि द्रव्य गुण पर्यायके समुदायको यहाँ सत् रूपसे बताया गया है, इस कारण यह ही बात अब मान लेना चाहिए कि सत् गुण द्रव्य पर्यायरूप है और उनका समुदाय ही सत् कहलाता है। तो यों सत् अनेक हो गया। जब सत् अनेक हो गया तो उसका कारण भी अनेक होना चाहिए। सो जैसे छाया प्रतिबिम्ब अनेक हेतुवोंसे होते हैं इसी प्रकार यह सत् भी जो एक बना वह अनेक हेतुओंसे बना मानना होगा। जैसे छाया दर्पणके कारण हुई है और हाथके कारण हुई है। यदि सामने हाथ आदिक पदार्थ न आयें तो छाया नहीं आती। और दर्पण न हो तो छाया कहाँ से होगी ? तो जैसे छाया प्रतिबिम्बमे कारण अनेक हैं, दर्पण भी कारण है, हाथ भी कारण है, इसी प्रकार सत् जो एक माना गया है उसमे अनेक कारण हैं। द्रव्य गुण पर्याय ये सभी सत् होनेके कारण ही तो है अत. सत्को अनेक ही मानना चहिए और उसमे अनेक हेतु भी मान लेना चाहिए।

सत्य सदनेकं स्यादपि तद्धेतुश्च यथा प्रतीतत्वात्।
न च भवति यथेच्छं तच्छायादर्शवदसिद्धदृष्टान्तात् ॥४४५॥

प्रतीतिके अनुसार सत्मे कथचित् अनेकत्वका विधान बताते हुए उक्त आशंकाका समाधान उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि शङ्काकारका कहना सत्य भी है क्योंकि सत् कथचित् अनेक भी है और जब सत् अनेक है। उसको अनेक निरखा जा रहा है तो उसकी अनेकताका परिज्ञान करनेके लिए हेतु भी अनेक होंगे। सो कथचित् सत् अनेक हैं और उसने यथायोग्य अनेक हेतु भी है। परन्तु उसके अनेक होनेमे अनेक हेतु इस तरह बताना जैसे छाया और दर्पणकी तरह नही है, किन्तु प्रतीतिके अनुसार है। वस्तु एक है, उस वस्तुमे द्रव्यरूपसे प्रतीति हो वहाँ तब गुण हैं, पर्यायरूपसे प्रतीति हो तब वह पर्याय है। उस सत्की अनेकताको छाया और दर्पणके समान नही कहा जा सकता। इस विषयमे बात तो उचित कही गई है मगर कथचित की दृष्टिसे और छायादर्शका जो दृष्टान्त दिया है वह तो बिल्कुल ही असिद्ध है। वह दृष्टान्त क्यो असिद्ध है उसके उत्तरमे कहते है।

प्रतिबिम्बः किल छाया वदनादर्शादिसन्निकर्षाद्वै।
आदर्शस्य सा स्यादिति पक्षे सदसदिव वान्वय.भावः ॥४४६॥

यदि वा सा वदनस्य स्यादिति पक्षोऽपमीच्यकारित्वात् ।
व्यतिरेकाभावः किल भवति तदाश्रयस्य सतोऽप्यछायत्वात् ४४७

छायाको आदर्शकी माननेसे अन्वयाभाव होनेसे सत्की अनेकताके लिये दृष्टान्तकी अयुक्तता छाया नाम प्रतिबिम्बका है । दर्पणमे जो छाया आती है वह एक प्रतिबिम्बका ही तो है और वह छाया मुख और दर्पणके सम्बन्धसे आती है । यदि कोई दर्पणमे मुख देख रहा है तो वह छायाका उपादान कारण तो दर्पण है और निमित्त कारण मुख है । तो मुखके निमित्तसे दर्पणका छायारूप परिणमन हुआ है, उस छायामे हेतु यहाँ दोनो हैं, अनेक हैं । उस छायाको यदि केवल दर्पणकी ही कहा जाय तो सत् असत्के समान हो जायगा । अर्थात् जब उसका अन्वय न बनेगा, छायाको दर्पणकी ही कहा जानेपर यह व्याप्ति बनाना चाहिए कि जहाँ-जहाँ दर्पण हो वहाँ-वहाँ छाया होना चाहिये परन्तु यह व्याप्ति सही नहीं है ऐसा देखनेमे आता है । बिना छायाके ही दर्पण रहा करता है । तो छाया और दर्पणका दृष्टान्त देना प्रकृतमे असिद्ध है ऐसा द्रव्य गुण पर्यायमे अन्वयका अभाव तो नही है छाया और दर्पणमे अविनाभाव नहीं देखा जाता, किन्तु द्रव्य गुण, पर्याय ये तीनो ही सहभावी हैं और कोई भी क्षण ऐसा नही कि तीनोमे किसी एकका अभाव हो । सभीके सभी सदैव रहते हैं, वस्तु तो वहाँ एक ही है उस वस्तुको जिस दृष्टिसे देखा वहाँ वैसा प्रतीत होता है । तो छाया दर्पणके दृष्टान्तमे अन्वय नही बनता, वह दृष्टान्त असिद्ध है ।

छायाको मुखकी माननेपर व्यतिरेकका अभाव होनेसे सत्की अनेकता के लिये छायादर्श दृष्टान्तकी अयुक्तता—और, भी सुनो उस छायाको यदि मुखकी छाया कही जाय तो यह पक्ष भी अयुक्त है क्योकि मुखकी छाया मानी जानेसे वहाँ व्यतिरेक नहीं बनता । मुखकी ही छाया मानी जाय तो यह व्याप्ति बनना चाहिये कि जहाँ-जहाँ छाया नही है वहाँ-वहाँ मुख भी नही है किन्तु क्या ऐसा पाया जाता है ? मुख तो दिखनेमें आता है पर छाया नही है वहाँ । तो छाया दर्पणके दृष्टान्तमे अन्वय भी नही बनता इस कारण यह दृष्टान्त अयुक्त है । प्रकृतमें दो दर्पण गुण पर्यायमे व्यतिरेकका व्यभिचार नही हैं । वहाँ व्यभिचार नही है, वहाँ द्रव्य नही है, वहाँ गुण पर्याय भी नही है और जहाँ गुण पर्याय नहीं है वहाँ द्रव्य भी नही है । तो द्रव्य गुण पर्यायमे तो यह बात बन जाती है वहाँ परस्पर अविनाभाव बनता है, लेकिन मुख और छायामे अविनाभाव नहीं बनता । द्रव्य गुण पर्याय ऐसा अविनाभावी है कि जैसे रूप रस गध स्पर्श, इनकी अभिन्नता है । जहाँ रूप नहीं है वहाँ रस गध स्पर्श भी नही है । जहाँ रस नही है वहाँ शेष तीनो नहीं हैं, इसी तरह गधके अभावमे शेष तीन नही, और स्पर्शके अभावमें शेष तीन नहीं रह सकते । तो रूप, रस,

गंध स्पर्शकी तरह द्रव्य गुण पर्यायमे भेद आया, अतएव सत्के विषयमे छाया दर्पण का दृष्टान्त देना सगत नही है । भले ही सत् कथंचित अनेक हैं मगर वे प्रतीति की अपेक्षा अनेक है । कोई छाया दर्पणकी तरह भिन्न भिन्न अनेक द्रव्योके कारण भी सत् मे अनेकता नही आती । दृष्टान्त जो दिया गया है वह भिन्न-भिन्न द्रव्योका दिया गया है अत मानना होगा कि सत् द्रव्य दृष्टिसे एक है, पर्याय दृष्टिसे अनेक है ।

एतेन निरस्तोऽभूननानासत्त्वैकसत्त्व वादीति ।

प्रत्येकमनेक प्रति सद्द्रव्य सन् गुणो यथेत्यादि ॥४४८॥

अखण्डवस्तुत्व होनेके कारण सत्के सम्बन्धमे नानासत्त्वैक सत्त्व-वादिताका निराकरण—अब उक्त कथनसे यह बात निराकृत हो जाती है कि नाना सत्त्वोका एक सत्त्व मानना । कुछ दार्शनिक ऐसे हैं कि जो नाना सत् मानते हैं परन्तु उन सब नाना सतोमे एक महासत्ता उन नाना सतोसे भिन्न कोई एक है और उसका प्रकाश उसका व्यापना प्रत्येक आवान्तर सत्मे है । जैसे वैशेषिक सिद्धान्तमे ७ पदार्थ माने गए द्रव्य, गुण कम, सामान्य विशेष समवाय और अभाव । नैयायिकने कुछ और पदार्थ बढाकर १६ पदार्थ माने हैं । तो ७ मानें अथवा १६ माने, वे सब आवान्तर सत् है । उनके ऊपर कोई एक महासत्ता भी आती है । तो नाना सत्त्वोके ऊपर एक सत्त्व माननेका मतव्य सही नही है कारण यह है कि जब वे सब आवान्तर सत् है तो अब महासत्ताकी क्या जरूरत रही ? वे अपने-अपने सत्के कारण सत् है । और, दूसरी बात यह है कि जैसे वे ७ अथवा १६ प्रकारके पदार्थ माने हैं वह सब एकान्त आग्रह रखने वाली बात है । जैसे कोई भी पदार्थ लो वह एक अखण्ड सत् है । एक जीव ही ले लो वह एक जीव द्रव्य है । अब उस जीव द्रव्यमे भावका भेद जब किया जाता है तो वह नाना गुणके रूपमे प्रतीत होता है तो वह गुण उस द्रव्यसे निराला नहीं है उनका प्रदेश अलग नही है उनका उत्पाद व्यय अलग नही है । केवल भेद दृष्टिसे समझनेके लिए गुण बताये गए हैं । तो वे गुण अलग आवान्तर सत् नही है । कर्म जो एक अलग सत् बनाया गया है विशेषवादमे वह कर्म भी क्या चीज है ? द्रव्य भावात्मक और क्रियात्मक हुआ करता है । अर्थात् द्रव्यमे कुछ गुण तो भावस्वरूप ही है और कुछ एक क्रियात्मक गुण है । क्रियात्मक गुणका ही नाम कर्म है । उसकी जो क्रिया होती, चलन हलन, चलन फिरन वे सब कर्म कहलाते हैं । तो ये कर्म द्रव्यसे कुछ अलग नही कहलाते हैं और सामान्य विशेष भी कोई अलग वस्तु नही है । वह द्रव्य ही जाति दृष्टिसे अथवा सतको एक सामान्य भावसे निरखनेकी दृष्टिसे सामान्य रूप हुआ और जब उसमे भेद दृष्टि से निरखते हैं तो विशेषरूप बनता है । तो सामान्य विशेष भी कोई अलग वस्तु नही है । जब यह अलग ही नही है तो समवाय किसका कराना है ? यह सब तादात्म्यरूपसे है और भावस्वरूप हुआ करता है, वह

भी कोई अलग पदार्थ नही है। तो यो सत् एक अखण्ड है, पर प्रतीति की दृष्टिसे सत् द्रव्य गुण पर्याय सामान्य विशेष अनेक रूप कहा जा सकता है।

क्षेत्रं प्रदेश इति वा सदधिष्ठानं च भूर्निवासश्च ।
तदपि स्वयं सदेव स्यादपि यावन्न सत्प्रदेशस्थम् ॥४४९॥

क्षेत्रविचारमे सत् और सत्के क्षेत्रका अभेद—सत्त्वको द्रव्य दृष्टिसे एक अनेक सिद्ध किया गया है अब उस ही सत्को क्षेत्र दृष्टिसे जब विचारते हैं तो वह एक है अथवा अनेक है इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान कर रहे हैं। क्षेत्र कहो, प्रदेश अथवा उसे सत्का निवास कहो या सत्की पृथ्वी या सतका निवास कहो ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। सबका ही नाम है क्षेत्र, ये सब स्वयं सत स्वरूप हैं। ऐसा नहीं है कि जब यह बोला गया कि सतमे प्रदेश होते हैं तो प्रदेश कोई अलग पदार्थ हो, सत अलग पदार्थ हो ऐसा नहीं है। जहाँ यह कहा जाय कि सतका आधार क्षेत्र है प्रदशमे ही तो वह वस्तु रहा करती है, इतना कहे जानेपर भी यह न समझना कि प्रदेश कोई अलग चीज है, सत कोई अलग चीज है और फिर उनका आधार आधेय भाव बना हो, सतका निवास कहा गया तो यह नही है कि सतका निवास स्थान अलग चीज है किन्तु सत् और प्रदेश दोनो ही एक वस्तु हैं सत्का क्षेत्र स्वयं सत्स्वरूप ही है। यहाँ क्षेत्र कहनेसे आकाश प्रदेशकी बात न समझना कि जिन आकाश प्रदेशोमे सत् पदार्थ ठहरा हुआ हो वह सत्का क्षेत्र हो उसे नही कहा गया। उस क्षेत्रमे और भी अनेक द्रव्य हैं। तो आकाश प्रदेशको सत्का क्षेत्र न समझना किन्तु समग्र सत् ये ही समस्त द्रव्य अपने जिन प्रदेशोंसे अपना स्वरूप पा रहे हैं वे ही सत्के प्रदेश कहे जाते हैं। अर्थात् प्रदेश समझनेके लिए प्रदेश नया है, किस प्रकार बताया जाय कि सत् इतने फैलावमे व्याप्त है। जीव एक कितना महान् है, कितने फैलावमे है या एक पुद्गल अथवा अन्य द्रव्य अपने कितने फैलावमे है कितना महान है, यह बात समझानेका ढङ्ग प्रदेशको ही बताया गया है। सत्में प्रदेश कल्पना सब क्षेत्र प्रदेशकी तुलना करके की गई है, परन्तु यह प्रदेश उस सत्से जुदा नही है ? वह उस हीके अपने रूप हैं।

अथ ते त्रिधा प्रदेशाः क्वचिन्निरंशैकदेशमात्रं सत् ।
क्वचिदपि च पुनरसंख्यदेशमयं पुनरनन्तदेशवपुः ॥४५०॥

सत्की निरंशैकदेशमात्रता असंख्यात प्रदेशिता व अनन्त-प्रदेशिता—वह प्रदेश तीन प्रकारसे होता है। कोई सत् तो निरंश एक प्रदेश मात्र होता है और किन्ही द्रव्योमे असंख्यात प्रदेश होते हैं और कोई द्रव्य अनन्त प्रदेश वाला है। एक

परमाणु और काल द्रव्य ये एक प्रदेशी हैं परमाणु अनन्तानन्त हैं। प्रत्येक परमाणु एक देशी ही है। कालद्रव्य असख्यात है। प्रत्येक काल द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है। धर्म द्रव्य तो एक ही है अधर्म द्रव्य भी एक ही है जीव द्रव्य अनन्तानन्त है। सो प्रत्येक जीव पदार्थ असंख्यात प्रदेशी है। आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है। आकाश द्रव्य भी एक अखण्ड है। प्रदेश भेदकी अपेक्षासे द्रव्योका तीन प्रकारसे विभाग होता है। कोई है एक प्रदेशी कोई है असख्यात प्रदेशी और कोई है अनन्त प्रदेशी।

ननु च द्वयणुकादि यथा स्यादपि सख्यातदेशि सत्त्विति चेत्।
न यतः शुद्धादेशैरूप चारस्याविवक्षितत्वाद्वा ॥४५१॥

उपचारकी अविवक्षा होनेसे सत्मे सख्यात प्रदेशवत्त्वका प्रतिषेध - यहा शङ्काकार कहता है कि द्वयणुक अर्थात दो परमाणु वाला, स्कध ३-४ लाख करोड आदिक परमाणुओका पिण्ड यह तो सख्यात प्रदेशी है। असंख्यातसे कम और एकसे ज्यादह उसे बोलते है सख्यात। तो जब द्वयणुक आदिक स्कध सख्यात प्रदेशी हैं तो इनका वर्णन क्यो नही किया गया? जैसे कि एक प्रदेशी असख्यात प्रदेशी और अनन्त देशी द्रव्य बताये हैं उसी प्रकार सख्यात प्रदेशी द्रव्य भी बताया जाना चाहिये समाधान इसका यह है कि यहा वर्णन शुद्ध नयकी अपेक्षासे शुद्ध द्रव्यका वर्णन है अर्थात इकहरे एक एक द्रव्यका वर्णन है। दो अणु तीन अणु आदिकका समूहरूप जो स्कध है वह परमार्थत. एक द्रव्य नही है, किन्तु जितने अणुओका वह पिण्ड है उस पिण्डमे उतने द्रव्य है तो उनमे एक एक द्रव्यकी बात, परमाणु एक प्रदेशी है, इस रूप मे बताया गया है। द्वयणुक त्र्यणुक आदिकका जो सिद्धान्त ग्रन्थोमे अस्तिकाय कहा गया है और पुद्गल द्रव्यके दो भेद है परमाणु और स्कध इस तरहसे उन्हे पुद्गल द्रव्य कहा गया है सो वह उपचारमे है अर्थात उन दो चार आदिक परमाणुओमे स्कध होनेपर ऐसी एक पिण्डता हो जाती है कि उसके विभाग करना अशक्य हो जाता है, इस कारण उन सब स्कधोको उपचारसे द्रव्य कहना चाहिए। वास्तवमें द्रव्य तो एक एक परमाणु करके अनन्तानन्त परमाणु हैं, एक एक जीव करके अनन्तानन्त जीव हैं एक धर्म द्रव्य एक अधर्म द्रव्य, असख्यात काल द्रव्य और एक आकाश द्रव्य, ये शुद्ध अर्थात इकहरे परके सयोगमे रहित द्रव्य कहलाते है और उन्ही द्रव्योको देखकर यहाँ प्रदेशका वर्णन किया गया है।

अयमर्थः सद्द्वेधा यथैकदेशीत्यनेकदेशीति।
एकमनेक च स्यात्प्रत्येक तन्नयद्वयान्न्यायात् ॥४५२॥

एक प्रदेशी व अनेक प्रदेशीके भेदसे क्षेत्रापेक्षया सत्की द्विविधता —

यहाँ इसी बातको इस रूपसे निरखियेगा कि सत दो प्रकारके होते हैं कोई एक प्रदेश मे कोई अनेक प्रदेशमे, जिसमे केवल एक ही प्रदेश है वह एक प्रदेशी कहलाता है और जिसमे एक से ज्यदाह प्रदेश हैं उन्हे अनेक प्रदेशी कहते हैं। जो एक प्रदेशी है वह द्रव्य भी नय सामान्यकी अपेक्षासे एक प्रकार है और नय विशेषकी अपेक्षासे अनेक प्रकार है। जैसे एक प्रदेशी परमाणु है तो परमाणु अपने अखण्ड द्रव्यकी दृष्टिसे वह एक ही प्रकार का है, पर किस किस तरहके परमाणु होते हैं परमाणुओ मे कैसी कैसी गुण पर्यायें होती हैं आदिक दृष्टियो से निरखनेपर वही एक प्रदेशी अनेक प्रकारसे जचता है इसी प्रकार अनेक प्रदेशी द्रव्य भी नय सामान्यकी अपेक्षासे एक है और नय विशेषकी अपेक्षा से अनेक प्रकार है। अनेक प्रदेशी द्रव्योंमे दो ही प्रकारके द्रव्य हैं—कोई असख्यात प्रदेशी और कोई अनन्त प्रदेशी। अनन्त प्रदेशी द्रव्य तो एक ही है आकाश, और असख्यात प्रदेशी धर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्य है सो जब नय सामान्यसे निरखा जाता है तो प्रत्येक द्रव्य एक प्रकारका है और नय विशेषसे देखनेपर अनेक प्रदेश भेदसे निरखनेपर गुण पर्यायके भेदसे निरखनेपर वे अनेक प्रकार विदित होते हैं।

अथ यस्य यदा यावद्यनेकदेशे यथास्थित सदिति।
तत्तावत्तस्य यदा तथा समुदित च सर्वदेशेषु ॥४५३॥

प्रत्येक द्रव्यके सर्वप्रदेशोमे एक सत्त्व—जिस समय जिस द्रव्यमे एक देशमे जैसे सत् रहता है उस ही प्रकार उस द्रव्यमे उस समय सर्व देशमें सत् बना रहता है। अर्थात जो द्रव्य है वह अखण्ड है, उसके एक प्रदेशमें जो सत् है वही उसके सर्वप्रदेशमें है, अनेक द्रव्य असख्यात प्रदेशी हैं, आकाश अनन्त प्रदेशी हैं तो इतने अनेक प्रदेश होनेपर कही कोई यह ध्यान न करे कि अनेक प्रदेशीमें सत् भिन्न-भिन्न रूपसे रह रहा है। द्रव्य वही एक है वहाँ खण्ड नहीं है, किन्तु एक तिर्यक अशकी कल्पना करके उसमे प्रदेशका विचार किया गया है जैसे कोई वस्तु मानो दो अंगुल चौडी चार अंगुल लम्बी और दो अगुल मोटी है तो उस वस्तुमे जब हम निर्तक अशंकी कल्पनासे देखेंगे तो प्रदेशका विभाग बनेगा और इतनी लम्बी, चौडी, मोटी समझी जायेगी, उसके प्रदेश उतनेही क्षेत्रमे माने जायेंगे जितना कि उसका माप माना गया है, ऐसे ही प्रत्येक द्रव्य अपने आपमे कितने विस्तारमें रहता है इसको बताना यह प्रदेश कल्पना है एक प्रदेश कहते हैं उतने हिस्से को कि जितने हिस्सेपर एक परमाणु के द्वारा रोका गया क्षेत्र एक प्रदेश कहलाता है। यद्यपि एक प्रदेशमे असख्यात प्रदेशी वस्तु रह सकता है। लेकिन नियम यहाँसे लगाना है कि वह एक परमाणु एक प्रदेशसे ज्यादह जगहको नही रोक सकता। तो उस प्रदेशके माप भी फिर इन सब पदार्थोंका माप किया गया तो कोई पदार्थ असख्यात प्रदेशी भी निकला और कोई अनन्त प्रदेशी

निकला, पर है सबकी अखण्ड सत्ता। जैसे एक जीव द्रव्य है, अपने आपमें अनुभव करके भी देखें तो भी जीव कितने विस्तारमे फैला हुआ है। तिसपर भी है जीव वही, एक जो कि इतने विस्तार वाला है उसमे जुदे-जुदे प्रदेशमे जुदे-जुदे तत्त्व नही है। यह बात तो स्कन्धोमे बताई जा सकती है क्योंकि स्कंध अखण्ड द्रव्य नही हैं, वह अनेक द्रव्योका पिण्ड है इसलिए जुदे-जुदे प्रदेशमे जुदा-जुदा सत्त्व है। ये सब अखण्ड द्रव्य होनेसे एक अखण्ड प्रदेशी ही द्रव्य हैं, पर वस्तु वास्तवमे कितनी है, यह बतानेके लिए प्रदेशभेदका प्रतिपादन किया गया है।

इत्यनवद्यमिदं स्याल्लक्षणमुद्देशितस्य तत्र यथा।
क्षेत्रेणाखण्डितत्वात् सदेकमित्यत्र नयविभागोऽयम् ॥ ४५४ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा अखण्डितपना होनेसे सत्के एकत्वकी सिद्धि—इस प्रकार निर्दोष विधिसे क्षेत्रकी अपेक्षासे वस्तुका विवरण किया गया। एक सत्के सब ही प्रदेश अखण्ड हैं अर्थात् वहाँ खण्ड कुछ भी नही पडा। वह उतने ही विस्तारवाला पदार्थ एक है अतएव सभी प्रदेश एक सत कहे जाते हैं। और एकत्व विवक्षामे पदार्थो का इस तरह ही निरखना होता है। प्रत्येक पदार्थ अखण्डक्षेत्री है। जैसे यह जीव है उसके अखण्ड क्षेत्र हैं। अन्तर बीचमे नही पडता कि कुछ हिस्सा बीचमे जीवका खाली हो गया हो उन प्रदेशोमे और बादमे जीव लग गया हो, वह अखण्डतासे अपने प्रदेशमे रहता है। तो इस तरह अखण्ड पदार्थमे उनका विस्तार बतानेके लिए क्षेत्रकी पद्धतिसे उनका वर्णन किया जाता है।

न पुनश्चैकापवरकसञ्चरितानेकदीपवत्सदिति।
हि यथा दीपसमृद्धौ प्रकाशवृद्धिस्तथा न सद्वृद्धिः ॥ ४४५ ॥

अनेकदीप प्रकाशकी भांति सत्की वृद्धिका अभाव—पदार्थके प्रदेशके सम्बन्धमे इस तरह समझना चाहिए कि जैसे एक मकानके भीतर अनेक दीप रखे हो तो ज्यो ज्यो दीपकी सख्या बढे त्यो त्यो वहा प्रकाश बढता है। जैसे एक दीप रखा, उसकी जितनी जगह है उस मकानमे दूसरा दीप रखनेपर प्रकाशमे वृद्धि हो जाती है। जितनी जितनी दीपो की सख्या बढती जायगी उतनी ही उतनी प्रकाशकी वृद्धि भी होती जायगी। यो उन सतमे नही है कि किसी पदार्थमे प्रदेश बढ गया तो उस पदार्थका सत बढ गया या अन्य स्वरूप बढ गया, इस प्रकारका विभाग नही है। सतकी वृद्धि अनेक दीपोके प्रकाशके समय नहीं होती।

अपि तत्र दीपशमनेकस्मिंश्चित्तत्प्रकाशहानिः स्यात्।
न तथा स्यादविवक्षितदेशे तद्धानिरेकरूपत्वात् ॥ ४५६ ॥

कतिपय दीपशमनमें प्रकाशन्यूनताकी भांति सत्‌में न्यूनताका अभाव: ऐसा भी नहीं है पदार्थके प्रदेशके सम्बन्धमें कि जैसे एक मकानमें रखे हुए अनेक दीपों मेंसे किसी दीपको बुझा दिया जाय तो उस मकानमें प्रकाशकी कुछ कमी हो जाती है इस तरहसे यहां किसी पदार्थमें सत्‌की कमी हो जाती हो ऐसा नहीं है। अथवा यों किसी भी द्रव्यको निरख रहे हैं कि जब किसी विस्तारपर दृष्टि है तो जहां दृष्टि नहीं है याने अविवक्षित देश है वहां सत्‌की हानि हो गई हो, ऐसा नहीं होता। जैसे एक द्रव्यके बारेमें कोई उपयोग किसी अङ्गकी ओर लग गये हो, मानो मस्तकके प्रदेशकी ओर उपयोग लगाये हो तो इसके मायने यह न होगा कि अन्य अविवक्षित देशमें सत् की कमी हो जाती हो। तो पदार्थमें जो क्षेत्र विस्तार है वह अखण्ड है और वह समूचा एक ही है। कहीं वहां अनेक सत् या सत्‌की कमी वृद्धि नहीं होती है। अथवा इस प्रकरणको समझनेके लिए दूसरा दृष्टान्त लो। एक मन साफ रुई कहीं रखी है, धुनने के बाद वह कितने बड़े क्षेत्रमें समाई हुई है, यदि उस रुईको किसी यन्त्रके नीचे रख कर दबा दी जाय, उसकी गाठ बना दी जाय तो वह थोड़ेमें प्रदेशमें रह जाती है। तो जब वह रुई बहुत विस्तारमें फैली हुई थी तो कहीं उसके प्रदेश नहीं बढ़ गये, और जब रुईकी गाठ बना दी गई तो कहीं प्रदेश कम नहीं हो गये। और वजनकी दृष्टिसे भी देखा जाय तो जो वजन पहिले थी वही अब भी है, वहां प्रदेशकी हानि नहीं है, ऐसे ही समझिये कि जीव संकोच विस्तार वाला है। संकोच हो जाने पर भी कहीं शरीर प्रदेशोंमें कमी नहीं हो जाती विस्तार हो जानेपर भी जीवके जितने प्रदेश माने गए हैं, उनकी कहीं वृद्धि नहीं हो जाती ऐसा अखण्ड सत् समझना चाहिये और उसके विस्तारको समझनेके लिए प्रदेश भेदकी कल्पना की है यह बात माननी चाहिये।

नात्र प्रयोजकं स्यान्नियतनिजाभोगदेशमात्रत्वम्।
तदन्यथात्वसिद्धौ सदनेक क्षेत्रतः कथं स्याद्वा ॥ ४५७ ॥

नियतनिजाभोगदेशमात्रत्व हेतुकी सत्‌का एकत्व सिद्ध करनेमें अप्रयोजकता – यहां नियतनिजाभोगदेशमें होना यह हेतु सत्‌की एकताको सिद्ध करने में समर्थ नहीं है, किन्तु सत् एक है, इसको अखण्ड देशित्व ही सिद्ध करनेमें समर्थ है। निजाभोग देशका अर्थ यह है कि पदार्थका अनुभवन जितने प्रदेशमें होता है उतने प्रदेश को कहते हैं निजाभोगदेश। अथवा जितने बाहर आकाश क्षेत्रमें उस पदार्थका विस्तार है उसे कहने लगे निजाभोगदेश। इस हेतुसे पदार्थकी एकता अखण्डता सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि इस हेतुसे एकता माननेपर अन्य प्रकारसे भी बात देखी जाती है कि उस ही आकाशके हिस्सेमें अन्य अनेक पदार्थ भी मौजूद हैं, इस कारण उनकी एकता सिद्ध नहीं होती।

सदनेक देशानामुपसंहारात्प्रसर्पणादिति चेत् ।
न यतो नित्यविभूनां व्योमादीनां न तद्विध तदयोगात् ।४५८।

अपि परमाणोरिह वा कालाणोरेकदेशमात्रत्वात् ।
कथमिव सदनेकं स्यादुपसहारप्रसर्पणाभावात् ।। ४५९ ।।

सत्के प्रदेशोका सकोच विस्तार होनेके कारण सत्को अनेक मानने की आशङ्का का निराकरण सत्के प्रदेशका सकोच विस्तार होता है और इस सकोच विस्तार के कारण सत् अनेक है ऐसी आशङ्का न करनी चाहिए, क्योकि सत्के प्रदेशका सकोच विस्तार होनेसे यदि वहाँ सत्को अनेक कह दिया जाय तो आकाश तो नित्य व्यापक है उसमे फिर किसी भी नयसे अनेकत्व न घटा सकेंगे, क्योकि वहाँ सकोच विस्तारका अभाव है, और परमाणु और कालाणु ये तो सदा एक प्रदेशी ही रहते है । इनमे तो सकोच विस्तारका अवकाश ही नही है, फिर नय विभागसे कालाणुमे भी अनेकत्व सिद्ध किया जाता है और परमाणुमे भी किया जाता है, वह किस प्रकार सिद्ध होगा ? तो सकोच विस्तार होनेके कारण सत्मे अनेकत्व करना ठीक नही है ।

ननु च सदेक देशैरिव सख्या खण्डयितुमशक्यत्वात् ।
अपि सदनेक देशैरिव सख्यानेकतो नयादिति चेत् ।। ६४० ।।

शङ्काकार द्वारा सत्को एक अनेक माननेके प्रकारका वर्णन-शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि सत्मे एकता और सत्की अनेकता इस तरह मानना चाहिए, सत् एक तो इस दृष्टिसे है कि उन एक सत्मे पदार्थकी संख्याका खण्डन नही किया जा सकता अर्थात् उसका प्रदेश खण्डित नही हो सकता, उतना ही रहेगा इस कारणसे तो एक है और सत् अनेक इस दृष्टिसे है कि चूंकि उसमे अनेक प्रदेश हैं तो प्रदेशकी अनेक संख्या होनेसे वह सत् अनेक कहलायेगा । इस तरह सत्को एक और अनेक मानना चाहिए । चू कि सत् सदा अखण्ड रहता है उसे खण्डित नहीं किया जा सकता अलग-अलग उसका विभाग नहीं बनाया जा सकता, इस कारण तो वह एक है परन्तु ऐसा अखण्ड रहनेपर भी उसके प्रदेशकी सख्या अनेक है, तो उन अनेक प्रदेशोकी दृष्टिसे वह सत् अनेक कहा जाना चाहिये ।

न यतोऽशक्य विवेचनमेकक्षेत्रावगाहिनां चास्ति ।
एकत्वमनेकत्वं न हि तेषां तथापि तदयोगात् ।। ४६१ ।

सत्के एकत्वके लिये अशक्यविवेचनत्व हेतुकी अप्रयोजकता बताते हुए उक्त शकाका समाधान—उक्त शङ्काका समाधान करते हैं कि सत्के एकत्वको सिद्ध करनेके लिए जो यह हेतु दिया है कि वह अशक्य विवेचन है, अर्थात् उसके प्रदेश को विभक्त नही किया जा सकता इस कारण वह सत् एक है। यह हेतु दे करके सत् का एकत्व सिद्ध नही किया जा सकता। खण्डित न किया जा सकनेसे यदि एकत्व मान लिया जाय तो देखिये ? जहाँ आकाश है वहाँ ही धर्म, अधर्म और काल द्रव्य है और पुद्गल तो किसी भी प्रकार एक जगहसे दूसरी जगह पहुच जाता है इस कारण उसे उदाहरणमे न लें किन्तु जो सत्ता ही शाश्वतसे ही जगत स्थित है ऐ । आकाश धर्म, अधर्म, और काल इनमे तो क्षेत्र भेद नही है और भेदाभेद करना अशक्य ही है। कभी भी उनका क्षेत्र भेद नही किया जा सकता। तो इस पदार्थमे क्षेत्र भेद न किया जानेसे एकत्व बन जाना चाहिए अर्थात् ये चारों द्रव्य एक हो जाने चाहिए किन्तु है नहीं एक, इस कारण मानना होगा कि सत्का एकत्व सिद्ध करनेका यह हेतु समीचीन नही है कि उनके क्षेत्रका विभाग नहीं किया जा सकता। वे कभी अलग नही हो सकते इस कारण एक है और क्षेत्रभेदकी अपेक्षासे इस पदार्थमें अनेकत्व नहीं है ऐसा यद्यपि है तो भी इस दृष्टिसे एकत्व अनेकत्व खण्डित न होगा। देखो अनादि कालसे ही धर्म अधर्म आकाश और काल इनके प्रदेश मिले हुए हैं और अनन्त काल तक मिले ही रहेंगे, इनका कभी पार्थक्य नही हो सका तिसपर भी ये चारों द्रव्य एक तो नहीं हैं, जुदे-जुदे हैं। यदि शङ्काकारके कथनके अनुसार इस हेतुको कि प्रदेशका खण्डन नही हो सकता, यदि एकत्व मान लिया जाय तो धर्मादिक चारों द्रव्योमे एकत्व सिद्ध हो बैठेगा। अत: अशक्य विवेचनपनेके नातेसे एकत्व सिद्ध न करना चाहिए।

ननु ते यथा प्रदेशाः सन्ति मिथो गुम्फितैकसूत्रत्वात् ।
न तथा सदनेकत्वादेकक्षेत्रावगाहिनः सन्ति ॥ ४६२ ॥

एकसूत्रमे गुम्फितपना बताकर दोषापत्तिका यत्न करते हुए शकाकार द्वारा अपनी शकाका रोपण—अब शङ्काकार कहता है कि धर्मादिक द्रव्योमे एकता का प्रसङ्ग आ जायगा इस कारणसे अशक्य विवेचन हेतुको असिद्ध कह डाला सो बात ठीक नही है। कारण यह है कि जिस प्रकार एक द्रव्यके प्रदेश एक सूत्रमें गूंथे हुए हैं, इस तरह एक क्षेत्रमें रहने वाले द्रव्योके प्रदेश एक सूत्रमे गुम्फित नही हैं अर्थात् परस्पर चारोका कोई एक अन्वय नही है इस कारण यह दोष नहीं आता कि अशक्य विवेचन बतानेसे उन चारो द्रव्योमे एकता हो बैठेगी। शङ्काकार यहा अपनी शङ्का को पुन पुष्ट कर रहा है कि जिस तरह एक द्रव्यके प्रदेश अखण्ड होते हैं और एक अन्वयमें एक सूत्रमे गुम्फित होता है, उस तरह अनेक द्रव्योके प्रदेश चाहे वे एक क्षेत्र में रह रहे हैं, अनादिसे अनन्त काल तक रहते हैं फिर भी वे सर्व द्रव्योंके प्रदेश एक

अन्वयमे गुम्फित नही है, इस कारण जो यह हेतु दिया है कि प्रदेशका खण्डन नही किया जा सकता इस कारण सत् एक है यह हेतु बिल्कुल युक्तिसङ्गत है।

सत्य तत्र निदान किमिति तदन्वेषणीयमेव स्यात् ।
येनाखण्डितमिव सत् स्यादेकमनेकदेशवत्त्वेऽपि ॥ ४६३ ॥

अनेक प्रदेशवत्ता होनेपर भी अखण्डितता होनेके कारणपर विचार करनेका शंकाकारका परामर्श उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि यद्यपि यह बात ठीक है एक पदार्थके प्रदेश जैसे अखण्ड हुआ करते वैसे एक क्षेत्रमें रहने वाले अनेक पदार्थोंके प्रदेश नही हैं लेकिन इसका भी तो कारण ढूढना चाहिए कि क्या कारण है कि एक द्रव्यके प्रदेश तो उसमे एक सूत्रमे गुम्फित है और वही रहने वाले अनेक द्रव्यके प्रदेश एक दूसरे द्रव्यमे गुम्फित नही हैं इसका कारण क्या है ? उसका कारण है तो यही कि वह सत् स्वय अपने आपमे अखण्ड हैं और इस कारणका विवरण भी आगे किया जायगा। मगर सीधा ही यो कह देना कि प्रदेश विभाग नही हो सकता इस लिए सत् एक है यह तो कोई युक्ति वाली बात नही है, हाँ जो उस शङ्कामे सुधार किया है कि एक द्रव्यके प्रदेश एक अन्वयमे रहने हैं एक क्षेत्रपर रहनेपर भी एक दूसरे द्रव्यके प्रदेश एक दूसरेमे गुम्फित नही हो पाते, यह बात ठीक है, पर इसका कारण भी तो समझना होगा।

ननु तत्र निदानमिदं परिणममाने यदेकदेशेऽस्य ।
वेणोरिवपर्वसु किल परिणमनं सर्वदेशेषु ॥ ४६४ ॥

एकदेशमे परिणमन होनेसे सर्वदेशमे परिणमन होनेको अखण्डितताका बनाकर शंकाकारका पुन अपनी शंकाके पोषणका यत्न शङ्काकार कहता है कि एक द्रव्यके प्रदेश एक सूत्रमे गुम्फित हैं उसका कारण यह है कि एक द्रव्यके एक देशमे परिणमन होनेपर सर्व देशोमे परिणमन होता है, यही चिन्ह इस बातको सिद्ध करता है कि उस द्रव्यके प्रदेश उसके सूत्रमे हैं अन्वयमे है, जैसे कि किसी बाँसको एक ओरसे हिला दिया जाय तो उस पूरे बाँसका हिलना बन जायगा। ऐसे ही जब एक द्रव्यके एक देशमे कोई परिणमन होता है तो सर्व देशमे परिणमन हो जाता है। इस कारणसे यह बात सिद्ध होती है कि पदार्थ एक ही इस कारण यह हो रहा कि उसके एक देशमे परिणमन है तो सर्व देशोमे परिणमन है।

तन्न यतस्तद्ग्राहकमिव प्रमाणं च नास्त्यदृष्टान्तात् ।
केवलमन्वयमात्रादपि वा व्यतिरेकिणश्च तदसिद्धेः ॥ ४६५ ॥

शङ्काकी पुष्टिकी अयुक्तता उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि देखिये ! शङ्काकारने अनेक सत् वाले पदार्थको एक समक्ष रखा है। जो बाँसका दृष्टान्त दिया है वह दृष्टान्त इसी बातको सिद्ध कर रहा है कि बाँस कहीं एक सत्ता वाला पदार्थ नही जितनी गाठें हैं उतने ही वहा सत् समझिये और इतना ही क्यो जितने परमाणु हैं प्रत्येक गाठमे अनन्त परमाणु हैं उनमे समूह वाला यह बाँस है उ मे यह दृष्टान्त घटा रहे हैं कि एक ओर हिलानेपर देखो सब हिल गया तो वहाँ एक देश और सब देशकी बात बन जायगी क्योकि द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं लेकिन किसी भी एक द्रव्यमें भिन्न-भिन्न सत् नहीं हैं। वहाँ एक देश सर्व देश क्या ? जितने भी प्रदेश हैं वे सभी एक सत् हैं एक देशमे परिणमन होनेसे सर्वदेशमें परिणमन हो जाते हैं यह हेतु वस्तु की अखण्डताका कारण नही हो सकता। इस बातको सिद्ध करने वाला न कोई प्रमाण है और न कोई दृष्टान्त है। और भी खोज कीजिए कि एक देशमें परिणमन होनेसे सब देशमे परिणमन होता है। इस वक्तव्यमें अन्वय व्यतिरेक घटित हो जाय, तब तो उसकी सिद्धि हो सकती है अथवा यदि केवल अन्वय मात्र सिद्ध होता है तो उससे भी कथनकी सिद्धि नही, या व्यतिरेक मात्र सिद्ध हुआ उससे भी कथनकी सिद्धि नही है। तो एक बाँसके हिलनेसे सब देशमें हिल जाता है, ऐसा अन्वय एक लौकिक दृष्टिसे मान लिया जाय तो भले ही कथचित मान लो परन्तु व्यतिरेक तो सिद्ध नहीं होता और वस्तुत अन्वय भी सिद्ध नहीं होता।

ननु चैकस्मिन् देशे कस्मिंश्चिदन्यतरेऽपि हेतुवशात्।
परिणमति परिणमन्ति हि देशाः सर्वे सदेकतस्त्विति चेत् ।४६६

एक देशमे परिणमन होनेपर सर्व देशमे परिणमन होनेका अन्वयपक्ष बताकर शङ्काकार द्वारा अपनी शङ्काका पोषण—शङ्काकार कहता है कि देखिये किसी कारणवश किसी एक देशमे परिणमन होनेपर सर्व देशोंमे परिणमन होता ही है क्योंकि द्रव्यके उन सब प्रदेशोकी एक ही सत्ता है, तब अन्वय बन गया ना कि कैसे यह कहा जा रहा कि इस कथनमे अन्वय सिद्ध नहीं होता। एकके सद्भाव होनेका नाम ही तो अन्वय है, सो बराबर यह देखा जा रहा जीवमे जैसे सुख परिणमन होता है तो जो जीवके किन्हीं प्रदेशोमे सुख परिणमनमे तो सभी प्रदेशोंमे सुख परिणमा। जो भी कषायादिक परिणमन होता है तो एक देशमे जो परिणमा वही सब देशमें परिणमा, तो अन्वय बन गया ना ! इसीको सिद्ध करनेके लिये बाँसका दृष्टान्त दिया है। बाँसके एक भागको हिलानेका परिणमन हो तो उसके सब देशमे हिलनेका परिणमन हो जाता है।

न यत सव्यभिचारः पक्षोऽनैकान्तिकत्वदोषत्वात्।
परिणमति समय देशे तद्देशाः परिणमन्ति नेति यथा ।।४६७।।

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत अन्वयपक्षकी दोषयुक्तता—उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि उक्त विधिसे घटाया गया पक्ष ठीक नही है क्योंकि इस अन्वयके मानने मे अनेकातिक दोष होता है। अनेक सत्ता वाले मिले हुए पदार्थोंमे तो यह बात कही जा सकती है कि किसी विवक्षित देशमे परिणमन होनेपर सभी देशोमे याने सभी पदार्थोंमे परिणमन होता है। और, यह कथन प्रकट बात को सिद्ध करनेमे अलग है। शङ्काकारने यह बताया कि एक देशके परिणमन होनेमे सर्वदेशमे परिणमन होता है, बस यही एक सत्त्व होनेका कारण है। लेकिन यहा यह दोष आता कि जहाँ अनेक सत्त्व भी हो वहापर भी यह बात घटित हो जाती है कि उसके एक देशमे परिणमन होनेपर सर्व देशमे परिणमन होगा, ऐसा बांसका दृष्टान्त तो प्रकृत बातसे विरुद्ध बैठता है बांस कहाँ एक सत् है ? सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रत्येक पदार्थ का परिणमन जुदा-जुदा हो रहा है। भले ही समान परिणमन है और उसको एक परिणमन कह लीजिए जो एक भागमे हिलना है वह वहाँके परमाणुओका परिणमन है और जहाँ जहाँ भी हिलता है वहाँ वहाँके परमाणुओका वह परिणमन है। तो दृष्टान्त ही स्वय विरुद्ध बातको सिद्ध कर रहा है उससे यह सिद्ध नही होता कि किसी विवक्षित देशमे परिणमन होनेसे अन्य देशमे भी परिणमन हो जाय तो उसे एक कह दिया जायगा। तब यह अशक्य विवेचन किसी भी प्रकारके समाधान देनेपर भी सत्की एकताका कारण नही बनता।

व्यतिरेके वाक्यमिदं यदपरिणमति सदेकदेशे हि।
क्वचिदपि न परिणमन्ति हि तद्देशाः सर्वतः सदेकत्वात् ॥४६८॥

शङ्काकार द्वारा अपने प्रस्तुत हेतुमे व्यतिरेक व्याप्तिका कथन—शङ्काकार अब अपने प्रस्तुत इस हेतुका कि एक देशमे परिणमन होनेपर सर्व देशमे परिणमन होता है इसका पोषण व्यतिरेक पद्धतिसे कर रहा है कि देखो वस्तुके एक देशका परिणमन न होनेपर उसके सर्व देशोमे भी परिणमन नही होता है क्योंकि उन सब देशोकी एक ही सत्ता है। इस व्यतिरेक द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि एक देशमे परिणमन होनेसे चूकि सर्व देशमे परिणमन होता है इस कारण सत् अखण्ड-प्रदेशी है। यदि अन्वयपक्ष सही न बन सका सो न बनो प्रबल तो व्यतिरेक पक्ष होता है। सो यहाँ व्यतिरेक तो बन ही गया। तब वस्तुकी अखण्डदेशिता सिद्ध करनेके लिये जो बांस सर्वका दृष्टान्त दिया वह युक्त ही है। इस प्रकार शङ्काकार अपनी पूर्व प्रस्तुत शङ्काका पोषण कर रहा है।

तन्न यतः सति सति वै व्यतिरेकाभाव एव भवति पक्षः।
तद्देशसमयभावैरखण्डितत्वात्स्वतः स्वतः सिद्धात् ॥४६६॥

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत हेतुकी व्यतिरेक व्याप्ति न बननेके कारण हेतुकी साध्य सिद्धिमें असमर्थता—उक्त शङ्काके समाधानमें कहा जा रहा है कि सत् अखण्ड देशी बांस पर्वकी तरह सिद्ध करनेकी बात युक्त नहीं है, क्योंकि उसकी सिद्धि करनेके लिये प्रस्तुत हेतुमें बताई हुई व्यतिरेक व्याप्ति युक्त नहीं बनती। इसका कारण यह है कि पदार्थ सत्स्वरूप है और सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण वाला है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करता रहता है। तो पदार्थके उस देशमें और सर्व देशमें प्रतिसमय परिणमन होता ही रहता है। व्यतिरेकका अवकाश ही कभी नहीं हो सकता। ऐसा कोई समय नहीं जिस समय वस्तुमें परिणमन न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। क्योंकि यदि किसी समय वस्तुमें परिणमन न माना जाय तो वह सत् ही नहीं ठहरेगा, पदार्थका अभाव सिद्ध हो जायेगा। जब परिणमन नहीं है तो सत्त्व भी नहीं है। तब शङ्काकारकी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं बनती, इसी वजहसे एक देशमें परिणमन होनेसे सर्व देशमें परिणमन होता है यह हेतु वस्तुकी अखण्डप्रदेशिताका प्रयोजक नहीं बनता। यद्यपि वस्तु अखण्डप्रदेशी है और उसे ही शङ्काकार सिद्ध कर रहा है सो यह प्रयास सराहनीय है, किन्तु बांसका दृष्टान्त देकर प्रस्तुत हेतु द्वारा वस्तुकी अखण्डप्रदेशिताकी सिद्धि निर्दोष उपायसे नहीं कही जा सकती। एक वस्तुकी अखण्डप्रदेशिकताकी सिद्धि तो एकसत्ताकत्व हेतुसे बनती है।

एवं यकेपि दूरादपनेतव्या हि लक्षणाभासाः।
यदकिञ्चित्कारित्वादत्रानधिकारिणोऽनुक्ताः ॥ ४७० ॥

लक्षणाभासोंका प्रयोग न करके सुलक्षणके प्रयोगसे वस्तु स्वरूपके निर्णयका कर्तव्य—जैसे सत्का स्वरूप सिद्ध करनेके लिए जो अन्य अनेक युक्तियाँ दी हैं जिनपर विचार करनेसे वे सदोष सिद्ध हुई हैं ऐसे ही अन्य लक्षणाभासोंको भी दूरसे ही हटा देना चाहिये क्योंकि सदोष युक्तियाँ, सदोष लक्षणाभास यथार्थ स्वरूप सिद्ध करनेमें असमर्थ हैं। ऐसे लक्षणोंसे ही वस्तुका स्वरूप बताना चाहिये जिनमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति व असंभव दोष न हो। इस क्षेत्र विचार वाले प्रसङ्गमें क्षेत्रकी अपेक्षासे निश्चयतः तो यह मानना चाहिये कि सत् एक सत्ताक है इस कारण अखण्ड प्रदेशी है एकक्षेत्री है। व्यवहारसे अर्थात् वस्तुका तिर्यक विस्तार समझानेके लिये उसमें प्रदेशोंकी अनेकता समझनी चाहिये, इस प्रसङ्गमें शङ्काकारका मूल प्रश्न था कि सत् एक है या अनेक है या उभय है या अनुभय? इस मूल प्रश्नका उत्तर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे दिया जा रहा है। द्रव्यकी अपेक्षासे निश्चयतः सत् एक है व व्यवहार प्रतिबोधनके अर्थ सत् अनेक बताया गया है गुण पर्याय आदिक अंशो द्वारा इसके पश्चात् क्षेत्रकी अपेक्षासे एक अनेक घटित किया जा रहा है जिसको यह सिद्ध किया गया है कि एक सत्ताक होनेसे सत् अखण्डप्रदेशी है और व्यवहारतः तिर्यग्विस्तार

के प्रतिपादनके लिये बताया गया कि उसमे अनेक प्रदेश है उनकी दृष्टिसे वहाँ अनेकता है।

कालः समयो यदि वा तद्देशे वर्तनाकृतिश्चार्थात्।
तेनाप्यखण्डितत्वाद्भवति सदेकं तदेकनययोगात् ॥ ४७१ ॥

कालापेक्षासे सत्‌के एकत्वका वर्णन—यह प्रकरण सत्‌के एकत्वके समर्थन का चल रहा है। सत् कथंचित् एक है, इसकी एकता द्रव्य और क्षेत्रकी अपेक्षा बता दी गई है। अब कालकी अपेक्षासे सत्‌का एकत्व बता रहे हैं। कालका अर्थ समय है अथवा द्रव्यका जो वर्तनाकार होता है अर्थात् काल द्रव्यके समयके निमित्तसे जो परिणमन होता है वस्तुत वही काल कहलाता है। यहा कालका अर्थ सत् पदार्थमे जो पदार्थका परिणमन हो रहा है चूकि वह परिणमन काल द्रव्यके समय पर्यायका निमित्त पाकर हो रहा है अतएव कार्यमे कारणका उपचार करके उस परिणमनको ही काल कह दिया गया है। यहाँ कालका अर्थ है परिणमना तो अब कालकी अपेक्षा सत्‌के एकत्वको निरखा जा रहा है। तो यहाँ द्रव्यत्वकी अपेक्षा वह सत् काल दृष्टिमे परिणमन दृष्टिमे अखण्डित है इस कारण एक है। परिणमनशून्य द्रव्य कही नहीं होता और उन सब परिणमनोका सामान्य रूपसे जब दिग्दर्शन होता है तो वे सब एक है, परिणमना ही तो है। तो यो कालकी अपेक्षा परिणमनका कहीं खण्डन नही है, अत परिणमन सामान्यकी दृष्टिमे सत् एक है।

अयमर्थः सन्मालामिह संस्थाप्य प्रवाहरूपेण।
क्रमतो व्यस्तसमस्तैरितरततो च विचारयन्तु बुधाः ॥ ४७२ ॥

कालापेक्षासे सत्‌के एकत्वका विवरण—उक्त कथनका आशय यह है कि यहाँ परिणमन सामान्यकी अपेक्षा सत्‌को एकत्व देखा जा रहा है। इस सम्बन्धमे प्रवाहरूपसे जो सत चल रहा है उस सतको एक मालासे स्थापित करके फिर क्रमसे अलग-अलग या मिलाकर इधर-उधर सब ओरसे विचार करे तो वहाँ यह ज्ञात होगा कि एक समयमे रहने वाला जो सत है वह सत जितना और जैसा है सभी समयोमे रहने वाला वह सत् उतना ही और वैसा ही है जब प्रतिसमयोमे उसी सतको निरखा है तो परिणमन शून्य तो सत कभी रहता नही, प्रतिसमय परिणमता है, किन्तु वहाँ सत वहीका वही है। वहा परिणमन ऐसा विभिन्न नही जचता कि जिससे यह कहा जा सके कि अब यह सत वह नहीं है अन्य है। दृष्टान्तमे ऐसा समझें कि जिस जीवके जितने भी परिणमन होगे होते रहे परिणमन पर उन सब परिणमनोमे भी जीव वही एक है। वहा जीव जैसा ही परिणमन देखा जा रहा है, क्योकि है भी वैसा ही परिणमन। परिणमन कर करके भी जीव पुद्गल नही बन गया, अन्य कोई नही बन

गय । तो जीव सत्‌से भिन्न अन्य प्रकारका सत जचे बिना वहा परिणमन होता ही नही है। अतएव उस परिणमन सामान्यकी दृष्टिसे अपनी ही जातिमें सीमामें जो पर्यायें होती रहती हैं, उनमे प्रतिसमयमे रहने वाले सतको जब देखते हैं तब वही है। यो कालकी अपेक्षासे वह सत अखण्ड दीख रहा है यो सत एक है।

न पुनः कालसमृद्धौ यथा शरीरादिवृंद्धिरिति वृद्धिः।
अपि तद्धानौ हानिर्न तथा वृद्धिर्न हानिरेव सतः॥ ४७४॥

सत्‌मे हानि वृद्धिका अभाव -- उक्त कथनमे जो कालकी अपेक्षासे सत एक बताया है वहाँ केवल अपनी जातिके परिणमनको ही निरखा गया है कि प्रत्येक पर्यायमे वही एक सत प्रतीत होवे। स्वरूप भी इसी प्रकारका है वहाँ ऐसा नही है कि जैसे कालकी वृद्धि होनेपर शरीरादिककी वृद्धि होती है। जैसे समय गुजरता है बढता है तो वहा शरीरमे वृद्धि होती है और फिर उसी शरीर व अनेक पदार्थोंमे जैसे जैसे कालकी हानि होती है यो सत पदार्थमे वृद्धि हानि होती हो सो नही है। क्योंकि सत की वास्तवमे न तो वृद्धि है और न हानि है। जीवमे सत एक चैतन्य स्वरूप है जो भी अखण्ड चेतना है, अमूर्त पदार्थ है वह कितना ही परिणमे पर सर्वत्र वह वही है, उसमे वृद्धि क्या है? जितनी शक्तियाँ हैं जैसा स्वरूप है वही अनादि अनन्त है उसमे हानि वृद्धि नही है। पुद्गलमे पदार्थ है, एक एक परमाणु तो जितने भी अपने आपमे एक स्वरूप रख रहे है, अखण्ड हैं वे अपने आपमे एक हैं। उस एक परमाणुमे हानि क्या? और वृद्धि क्या? जो मिलकर स्कध बनता है और उन स्कधोंमे वृद्धि हानि देखी जाती है, वह वृद्धि हानि एक सतमे नही है किन्तु वहाँ अनेक सतोका पिण्ड है, उसमे वृद्धि हानि है। कम सत रह गए, कुछ अनेक सत हो गए आदिक रूपसे ही वृद्धि हानि है, पर एक सतमें न तो वृद्धि होती और न हानि होती है। वह तो सदा ही कालकी अपेक्षा एक सा ही रहता है, यो सत कालकी अपेक्षासे द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायसे एक है।

ननु भवति पूर्वपूर्वभावध्वंसात्तु हानिरेव सतः।
स्यादपि तदुत्तरोत्तरभावोत्पादेन वृद्धिरेव सतः॥ ४७५॥

सत्‌मे हानि वृद्धि बतानेके लिये शङ्काकारकी शङ्का—यहाँ शङ्काकार कहता है कि पूर्व-पूर्व भावोका विनाश होनेसे सतकी हानि होती है और नवीन नवीन भावोंका उत्पाद होनेसे सतकी वृद्धि होती है, ऐसा माननेपर क्या हानि है? पदार्थमे यह स्वरूप पाया ही जाता है कि उसमें नवीन पर्यायें उत्पन्न हो और पूर्व पर्यायका विनाश हो। तो जो पर्याय थी उस पर्याय-थी उस पर्यायका विनाश हो तो

लो हानि ही तो हो गयी। अब उस द्रव्यमें परिणमन न रहा और नवीन पर्यायका उत्पाद न हुआ तो सतमें एक नई बात आई तो कोई वृद्धि ही तो हुई। इस तरह पूर्व पर्यायके विनाशसे और उत्तरोत्तर पर्यायके उत्पादसे हानि और वृद्धि माननेमें क्या हानि है ?

नैवं सतो विनाशादसतः सर्गादसिद्धसिद्धान्तात्।
सदनन्यथाथ वा चेत् सदनित्यं कालतः कथं तस्य ॥ ४७६ ॥

सत्की हानि वृद्धि माननेमें दोषापत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान— उक्त शङ्काका समाधान कर रहे हैं कि पूर्व-पूर्व भावका विनाश होनेपर सतकी हानि और उत्तर-उत्तर पर्यायके उत्पाद होनेसे सतकी वृद्धि माननेपर सतका विनाश हो जायगा और असतका उत्पाद हो जायगा, यह दोष आता है। इस कारण ऐसा मानना युक्तिसङ्गत नहीं है। पूर्व पर्यायका नाश हुआ, उस नाशके साथ सतकी हानि मान ली तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत् तो रहा ही नहीं, क्योंकि पूर्वपर्याय मात्र इस तरह ही सतको देखा जा रहा था। तो पूर्व पर्यायके नाश होनेपर सत्का भी नाश हो गया, पर क्या ऐसा कहीं होता है ? कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं मान सकता कि जो है उसका समूल नाश हो जाय। भले ही कोई परिणमन हो, होता रहे, पर उस सत्का मूलमें नाश नहीं होता, इसी प्रकार कभी भी असत्का उत्पाद नहीं होता, जो कुछ है ही नहीं और कुछ बन जाय ऐसा कहीं नहीं होता। जो है उसकी पर्यायें कितनी ही बदलती रहें बदल जायें और पूर्व पर्याय विनष्ट होती जाय, पर सत् सत् ही है पूर्व पर्यायका नाश होनेपर कभी सत्का नाश नहीं होता। सत् जिस परिणमनमें था अब उस परिणमनमें न रहकर उत्तर परिणमनमें आया। दूसरी बात यह है कि यदि विनाश और उत्पाद क्रमसे हुआ करते होते तो यह बात कुछ मानी जा सकती थी किन्तु विनाश और उत्पाद एक ही साथ होते हैं। जैसे सीधी अगुली है और उसे थोडी टेढी की तो कहीं ऐसा नहीं है कि पहिली सीधी मिटी हो और पीछे अगुली टेढी हुई हो, किन्तु अगुलीके टेढी होनेका ही नाम सीधाका मिटना है। सीधीके मिटने का ही नाम टेढी होना है। तो यहाँ उत्पाद और विनाश अपेक्षासे है ये क्रमशः नहीं होते। इस कारण सतका विनाश नहीं और असत्का उत्पाद नहीं। तब सत्में न वृद्धि होती है और न हानि होती, जो है वह है ही सदाकाल। यहीं है वस्तु स्वरूप। जब इस एकत्वकी चर्चाको अपने आत्मामें घटित किया जाता है तो यह विदित होता है कि मैं जो सहज ज्ञानानन्द स्वरूप मात्र हू सो मैं अनादिसे अनन्त काल तक ऐसा ही हू। मुझमें न कभी कमी आती है न बेशी। मैं सदा वही रहता हू। आज मनुष्य हूं, पहिले मानो और कुछ था। पशु था तो पशु पर्यायसे मरण करनेपर मनुष्य पर्याय में आया। वहां कभी यह नहीं होता कि पशु पर्याय मिटी तो मैं मिट गया या मनुष्य

पर्याय मिटी तो मैं उदास हो गया। मैं वही सत् हूं, मुझमें हानि व वृद्धि नहीं होती। अतएव यह शङ्का व्यर्थ है कि पूर्व पर्यायका विनाश होनेपर सत्‌की हानि हो जाय और उत्तर पर्यायका उत्पाद होनेपर सत्‌की वृद्धि हो जाय।

निरन्तर परिणत होनेपर भी सत्‌के एकत्वका अप्रतिघात—अब यदि इन दोषोंसे बचनेके लिए यह मान लिया जाय कि वस्तु सर्वथा एकरूप ही है, तब उसमें कालकी अपेक्षासे अनित्यता न आयगी, तब परिणमन रुक जायगा। वस्तुका स्वरूप है यह कि वह परिणमन करता हुआ सदाकाल बना रहे। कोई भी पदार्थ कुछ बदले नहीं सो उसका सत्त्व नहीं रह सकता। बदलेंगे पर अपनी जातिमें बदलेंगे। प्रतिसमय परिणमन होता है। जब आत्मा कोई शुद्ध भी हो गया सिद्ध बन गया तो सिद्ध भगवान हो जानेपर भी वहां प्रतिसमय केवल ज्ञान अनन्त आनन्द वर्तता ही रहता है। वहाँ कभी भी कमी वेशी नहीं आती कि किसी समय ज्ञान कम हो, किसी समय अधिक। जैसाका तैसा ही परिपूर्ण ज्ञान प्रतिसमय रहता है। किन्तु प्रतिसमय ज्ञान बनता ही तो रहता है। इसी प्रकार प्रतिसमय वहां आनन्द बनता ही तो रहता है। बल्कि जिस आनन्दमें विसदृशता नजर आये, अभी कम आनन्द था, अब अधिक आनन्द हो गया, अभी आनन्द न था अब आनन्द आ गया ऐसी अगर विसदृशता आती है तो समझना चाहिए कि वह शुद्ध आनन्द नहीं है। इसी प्रकार जहां ज्ञानमें कमी बेशी नजर आती है, जैसे आजकल इन जीवोंके ऐसा ही ज्ञान है, अभी थोड़ा ज्ञान है, अब कुछ बढ़ गया, कुछ घट गया। इन्द्रियाँ यदि काम करती हैं तो ज्ञान बढ़ गया और यदि इन्द्रियाँ काम नहीं करती हैं तो ज्ञान घट गया अथवा मस्तिष्क यदि शक्तिमान है तब ज्ञान और किस्मसे चलता है और यदि मस्तिष्क निर्बल हो गया तो ज्ञानमें भी न्यूनता आती है। तो यह ज्ञान शुद्ध ज्ञान नहीं है, शुद्ध ज्ञान तो समानतासे प्रतिसमय चलता रहता है। तो प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करता है फिर भी वह वहीका वही रहता है। तो जब यहां सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे निरखते हैं तो कालकी अपेक्षा से सत् एक है इसमें कोई भी बाधा नहीं है।

नासिद्धमनित्यत्वं सतस्ततः कालतोऽपि नित्यस्य।
परिणामित्वान्नियतं सिद्धं तज्जलधरादिदृष्टान्तात् ॥ ४७७ ॥

द्रव्य दृष्टिसे नित्य पदार्थका पर्याय दृष्टिसे अनित्यत्व—कोई शङ्काकार यह कहे कि अगर कालकी अपेक्षा सत् एक रूपसे मान लिया जाय तो अनित्यता नहीं रहती तो न रहे। सो यह बात नहीं कह सकते क्योंकि पदार्थमें अनित्यता असिद्ध नहीं है। प्रत्येक पदार्थ कालकी अपेक्षाके कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है। जैसे जीव कभी किसी पर्यायमें है, कभी किसी पर्यायमें है। पर्याय दृष्टिसे तो

अनित्य है, पर जीव तो वहीका वही है। अब भी इसका बदलना रहता है—कभी क्रोध मान, माया, लोभ आदि रूप योमे, कभी शान्तिमें कभी विवेकमे, कभी मूर्खता मे यह परिणमन करता रहता है। तो भले ही नाना परिणमन करे, किन्तु द्रव्यदृष्टि से वह सत् एक ही है। पर्याय रूपसे उस जीवने यहाँ परिणमन किया। पदार्थ कथंचित् नित्य है और कथंचित अनित्य, यह बात असिद्ध नही, किन्तु प्रमाणसिद्ध है। क्योंकि पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करता ही रहता है। जैसे मेघ कितनी तरहके आकार बदलते है, बदलते रहें पर मेघोमे रहने वाले जो परमाणु पुञ्ज हैं वे तो वही के वही हैं। चाहे ये दृष्ट पदार्थ जला दिये जायें उनका कुछ से कुछ परिणमन कर दिया जाय, पर द्रव्यदृष्टिमे देखो तो परमाणु वहीके वही है। वस्तु परिणमन करते हुए भी सदाकाल वहीका वही रहता है।

अपनेमे नित्यत्व अनित्यत्वके यथार्थ चिन्तनका परिणाम—अपने आप मे भी नित्यत्व अनित्यत्वकी यह बात समझने पर एक सद्विवेक जगता है कि मैं सदा-काल एक हू, भले ही आज मनुष्य पर्यायमे हू पर यह कितने दिनोंका जीवन है? यहा जो भी समागम मिले हैं वे स्पष्ट पर पदार्थ हैं। उनसे आत्मा में कोई परिणति नही होती। यह आत्मा ही अपने ज्ञानके अनुसार विकल्प बनाकर सुख और दुःख मानता है। वस्तु तो जहाँ जिस प्रकार है उस प्रकार ही पड़ा हुआ है। उनका परिणमन उनके कालसे जब जैसा होना है होता है। यह जीव मोहवश कुछसे कुछ विचार करता हुआ सुख, दुःख मानता है, पर पदार्थोंसे तो यह स्पष्ट भिन्न है और अपने आपके परि-णमनमे देखा जाय तो जो कर्मजन्य परिणमन है उन परिणमनोसे इसका स्वभाव भिन्न है। तो जो वास्तविक सत् है उस दृष्टिमे ही इसको शान्तिका मार्ग मिलेगा, बाह्य पदार्थोंके मोहमे शान्ति नही मिल सकती। मोह अज्ञानमे ही होता है, अतः मोह को अज्ञान ही कहते हैं। वस्तु स्वयं उत्पाद व्ययध्रौव्य स्वरूप है, इसका यथावत् श्रद्धान हो तो वहाँ मोह नही रहता। प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपमे उत्पाद-व्यय करते हुए रहा करते हैं, किसी अन्य पदार्थकी परिणतिसे किसीमे उत्पाद व्यय नही होता और न किसी अन्य पदार्थका स्वरूप लेकर कोई ध्रुव रहता है, सद्रूप होता है। फिर एक का दूसरेसे सम्बन्ध क्या है। मुझमे किसी अन्य जीवका या पुद्गलादिका सम्बन्ध क्या है? कुछ भी नही, इस प्रकार वस्तुके स्वातन्त्र्यका परिज्ञान जहाँ होगया वहाँ मोह नही रह सकता। जहाँ मोह नही वहाँ आकुलता नही है क्योंकि निर्मोहीके यह परि-णाम ही नही हो सकता कि किसी भी परकी परिणतिसे मुझमे कुछ परिणमन, सुधार, बिगाड हो सकता है।

तस्मादनवद्यमिदं परिणममानं पुनः पुनः सदपि।
स्यादेकं कालादपि निजप्रमाणादखण्डितत्वाद्वा ॥४७८॥

पुन: पुन: परिणममान सत्के भी द्रव्यार्थिकनयसे कालापेक्षया एकत्व का निर्णय—उक्त विवरणसे यह बात निर्दोष रीतिसे सिद्ध होती है कि सत् बार बार परिणमते हुएको काल दृष्टिसे भी द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमें वह एक ही है क्योंकि सदैव वह अपने ही परिमाण रहता है तथा वह अखण्ड ही है। सत्का जितना परिमाण अनादिसे अब तक भी वही है और भविष्यमें अनन्तकाल तक भी उतना ही परिमाण है। भले ही सत् परिणमन कर रहा है और करता रहेगा। जैसे यह जीव पदार्थ अनादिसे परिणमन करता चला आया, पर वह जीव ही रहा जीव अपने परिणमनको त्यागकर अन्यके परिणमन रूप न हो सका अत: उसका जितना परिणाम है उतना ही वह बना रहता है और अखण्डित है इस कारण कालकी अपेक्षा वह एक है। प्रतिसमयके परिवर्तनसे इस सत्मे किसी प्रकारकी न्यूनता या अधिकता नहीं होती अत द्रव्यार्थिकनयसे यह कालकी अपेक्षा भी सत् एक है।

भाव: परिणाममय: शक्तिविशेषोऽथवा स्वभाव: स्यात्।
प्रकृति: स्वरूपमात्रं लक्षणमिह गुणश्च धर्मश्च ॥ ४७६ ॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके प्रतिपादनके प्रसङ्गमें भावके नामान्तर भूत परिणाम, शक्ति व विशेषका निर्देश—अब भावकी अपेक्षासे सत्के एकत्वका विधान कर रहे हैं। वस्तु चतुष्टयमे गुम्फित है द्रव्य क्षेत्र, काल, भावमय है और द्रव्यकी अपेक्षा भी वस्तुमें एकत्व अनेकत्व सिद्ध होता है, क्षेत्रकी अपेक्षा भी एकत्व और अनेकत्व प्रतीत होता है। कालकी अपेक्षासे भी एकत्व और अनेकत्वकी प्रतीति है। इस प्रसगमें एकत्वका कथन किया जा रहा है, सो द्रव्य, क्षेत्र कालकी अपेक्षासे एकत्वका वर्णन किया गया। अब भावकी अपेक्षा सत किस विधिसे एक है इसका वर्णन किया जायगा। इस गाथामे भावके नामान्तरका वर्णन है। इस नामके शब्दार्थ के परिज्ञानसे भावकी अपेक्षा वस्तु एक है इसके जाननेमें बहुत सहयोग मिलता है। भावके नामान्तर हैं ये। परिणाममय भाव अर्थात् परिणाम। यहां परिणामसे मतलब परिणमनका नही है किन्तु एकस्वभावरूप परिणमन होकर पर्यायमे जो बात आई है वहांके परिणाम मात्रको लक्ष्यमे रखकर यह शब्द इस वाच्यमे प्रयुक्त होता है। भावका दूसरा नाम है शक्ति। पदार्थमे जिस जिस रूप पर्यायसे परिणमनेकी योग्यता है उस योग्यताको शक्ति कहते हैं। शक्ति शाश्वत होती है भाव भी शाश्वत है। यदि शक्ति न हो तो उस प्रकारसे परिणमन नही हो सकता। भावका एक नाम स्वविशेष भी है। पदार्थ तो जो हैं सो ही है अखण्ड है। उस पदार्थको समझनेके लिये उसमें जो तिर्यक रूपसे भेद करके उसकी विशेषता बताई जाती है वे सब विशेष भाव कहलाते हैं। जैसे आत्मा जो है सो ही है। उस आत्माको समझनेके लिए जो उसके शाश्वत धर्मके भेद किए जाते हैं। जैसे—ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक। तो ये सब विशेष भाव कहलाते हैं।

भावके नामान्तरभूत स्वभाव, प्रकृति, स्वरूप, गुण व धर्मका निर्देश—भावका एक नाम है स्वभाव। इस नामने पदार्थ उसका जो सहज शाश्वत होता है, वह कहलाता है स्वभाव। स्वभाव स्वभाववानसे भिन्न है। बात एक ही है किन्तु समझनेके लिये उस पदार्थका स्वभाव बताकर गुण गुणी जैसे भेद करके समझाया जाता है। भावका एक नाम है प्रकृति। प्रकृति भी वस्तुका स्वभाव है। जिस कुछ परिणतिसे सम्बन्ध देखा जा रहा हो परिणमनोको कर सकनेके जो भाव हैं वे प्रकृति कहलाते है। भावका एक नाम है स्वरूप। पदार्थका स्वयंका जो सहज रूप है वह स्वरूप कहलाता है। भावका एक नाम है लक्षण। लक्षण चिन्हको कहते है। जिस चिन्हके द्वारा उस सहज वस्तु तत्त्वको जान लिया जाता है उसका नाम लक्षण है। लक्षण भेद-कथनमे कहा जाता हैं, वस्तु तो अभेदरूप है, उसका जो कोई चिन्ह प्रकट हुआ हो अर्थात् जिस भावपर उपयोग किया गया हो, उस चिन्हसे पदार्थका बोध होता है। तो भावका नाम वह लक्षण कहना युक्त ही है। भावका एक नाम है गुण। गुणकी व्युत्पत्ति है गुण्यते भिद्यते अनया वस्तु इति गुण., जिसके द्वारा वस्तु भेदी जाय, अखण्ड वस्तुको समझानेका प्रयत्न किया जाय, ऐसे भावको गुण कहते है। भावका एक नाम है धर्म। पदार्थ अपने आत्मामे अपने स्वरूपमें जिस स्वभावको धारण करता है, उसका नाम है धर्म। ये सब भावके नामान्तर हैं। यह नाम द्रव्यका इस कारण बताया गया है कि भावकी अपेक्षासे यहाँ एकत्व दिखाना है। तो उस एकत्वको दिखानेका पुरुषार्थ सुगमतया सफल हो जाय, इसलिये पहिले भावके नामान्तर बताये हैं।

तेनाखण्डतया स्यादेक सच्चैकदेशनययोगात् ।
तल्लक्षणमिदमधुना विधीयते सावधानतया ॥ ४८० ॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके प्रतिपादनकी सूचना—भावकी दृष्टिसे द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षामे चूंकि वह सत्ता अखण्डित है, इस कारण वह एक है। प्रत्येक पदार्थ अपने भावसे अखण्डित है। और अखण्डितको ही एक कहते है। कितने ही भावोका परिज्ञान किया जाय वस्तुमे भाव सामान्यकी दृष्टिसे वह सब भावोरूप है और वहा भाव कोई अपनी प्रथक-प्रथक सत्ता लिए हुए नही है। सत् तो वहाँ एक ही है। उसका दिग्दर्शन भावके रूपमे कराया जाता है। ऐसी स्थितिमे एक भावमे सभी भाव अन्तर्लीन है। अतएव भावोकी अपेक्षा वह वस्तु अखण्डित है, अतएव एक है, इस ही एकत्वको सावधानीसे इस प्रसङ्गमे बताया जा रहा है, उसको सावधानीसे सुनना चाहिये।

सर्वं सदिति यथा स्यादिह संस्थाप्य गुणपङ्क्तिरूपेण ।
पश्यन्तु भावसादिह निःशेषं सन्नशेषमिह किञ्चित् ॥४८१॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वका दर्शनके लिये भावमालाको भावसामान्य रूपमे दर्शनका विधान—भावकी अपेक्षासे सत् एक किस प्रकार है ? उसको समझानेका इस गाथामे यत्न किया गया है और वह सत् है सम्पूर्ण सत् उसकी गुणो की पंक्तिरूपसे अपने विचारमे प्रधान करें फिर देखें कि वे सबके सब भावरूप ही दिखाई देते हैं। जैसे एक जीव तत्त्वको ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक अनेक भावोको उपयोगमें पंक्तिबद्ध कर लिया जाय। अब एक ओरसे अन्त तक उन सब भावोंको निरखते जाइये तो पदार्थ भावमय नजर आयगा। भावके सिवाय और कुछ भी वहाँ नहीं बचता है। तब भावदृष्टिसे सर्वत्र वहाँ अखण्डितपना ही प्रतीत होता है। कही वह वस्तु खण्डित हो गई हो, ऐसा भाव वहा नहीं है। क्योंकि एक वस्तुमें जितने भाव होते हैं उन्हीं भावोंको ही पंक्तिमे रखा गया है। यदि आत्माके भावोको पंक्तिमे तो रखा और उसमे अन्य भाव भी दो एक रख दिए जायें जैसे रूप, रस आदिक तो वहाँ भावोकी धारा न बनेगी। वहाँ वस्तु खण्डित हो जायगी। वस्तुत्व सिद्ध न होगा तो एक समग्र वस्तुके गुणोको पंक्तिरूपसे रखकर फिर उनको देखा जाय तो सब भावोमय ही प्रतीत होता है, इस कारण भावोकी अपेक्षा सत् एक है।

एक तत्रान्यतमः भाव समपेक्ष्य यावदिह सदिति।
सर्वानपि भावानिह व्यस्तसमस्तानपेक्ष्य मुक्तावत् ॥ ४८२ ॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वका दर्शन—किसी भी सत्में जिन भावोपर उपयोग दिया गया है उन भावोमेसे किसी एक भावकी अपेक्षा विचार करें तो वहाँ सत् जितना दृष्टिगत हुआ सभी भावोकी अपेक्षा रखकर विचार करें तो भी वह सत् उतना ही है, अथवा कभी उन भावोंकी अपेक्षा प्रथक-पृथक भी विचार करें तब भी वह सत् उतना ही है या सब भावोसे समुदित कर विचार करें तब भी वह सत् उतना ही है, इस कारण भावोकी अपेक्षा किसी भी ढङ्गसे विचार किया जाय तो वहाँ सत् मे भेद अथवा खण्ड नहीं हो पाता। वह वस्तु समग्र उतने ही सत् रूप है। जैसे जब जीव द्रव्यको ज्ञानरूपसे विचार किया तो वह समग्र जीव द्रव्य ज्ञानमय है। वहीका वही जीव द्रव्य वस्तु जब आनन्द गुणकी प्रधानतासे निरूपित होता है तब वही जीव वस्तु आनन्दमय है। तो ज्ञानमय दीखा तब भी वही वस्तु प्रतीत हुआ, आनन्दमय दीखा तब भी वही वस्तु प्रतीत हुआ। वस्तु एक स्वभावरूप है, उसको समझनेके लिए वहा गुणभेद करके प्रतिपादन किया जाता है, पर तत्त्वत एक भावरूप है। तब अनेक भावोके माध्यमसे भी वर्णन किया जाय तब भी वह सर्वत्र एक रूप ही विदित होगा।

न पुनर्द्व्याणुकादिरिति स्कन्धः पुद्गलमयोऽस्त्यणूनां हि।
लघुरपि भवति लघुत्वे सति च महत्त्वे महानिहास्ति यथा ।४८३

सत्मे न्यूनता व अधिकताका अभाव– कोई यदि यहाँ ऐसी आशङ्का करे कि द्वयणुक आदिक स्कन्धोमे तो यह बात एकदम साफ नजर आती है कि परमाणुओंके कम होनेपर ही पदार्थ छोटा हो जाता है और परमाणुओंके अधिक होनेपर भी पदार्थ बडा हो जाता है तो कैसे नही कोई पदार्थ न्यून और अधिक होगा ? सामने विदित ही हो रहा है। इसी प्रकार यह सत् प्रत्येक सत् भी किन्ही कारणोमें परिस्थितियोमे छोटा हो जाता होगा और किन्ही परिस्थितियोमे बडा हो जाता होगा इसमे कौन सी शङ्काकी बात है ? तब उसका उदाहरण सामने ही दृष्टगत होता है, कोई पत्थरका टुकडा तोड दिया, छोटा हो गया, कोई मिट्टीका लौधा जोड दिया, बडा हो गया। तो यहा छोटे–बडेकी स्थिति बन जाया करती है। तो सभी स्थितियो मे यह बात सम्भव है फिर न्यूनता और अधिकता कैसे न आयगी ? और जब सतमे न्यूनता और अधिकता आ सकती है तो वह एक नही कहला सकता। फिर ऐसी कोई शङ्का कर सकता है, किन्तु उसकी यह आशङ्का ठीक नही है। ठीक यो नही है कि जो उदाहरण दिया गया है वह स्कध एक सत् नही है, वह अनेक सतोका पिण्ड है। अतएव वहा यह बात सम्भव है कि अनेक सत् और आ जानेपर अधिक हो जायेगे। किन्तु एक सत्मे किन्हीं भावोकी शक्तियोके बिखरनेका प्रश्न ही नही है और न किसी वस्तुकी शक्तियोके नाश होनेका प्रश्न है। इस कारण सत्मे न्यूनता और अधिकता नही आ सकती है।

अयमर्थो वस्तु यदा लक्ष्येत विवक्षितैकभावेन।
तन्मात्रं सदिति स्यात् सन्मात्रः स च विवक्षितो भावः ।४८४

सत्की विवक्षित भावमात्रताका दर्शन– उक्त कथनका साराश यह है कि जब वस्तुको किसी विवक्षित एक भाव रूपसे निरखा जाता है उस समय वह वस्तु उस ही विवक्षित भावरूप होता है। विवक्षित भाव भी उस सत्ता मात्र ही होता है। जैसे जब जीव वस्तुको ज्ञानभावरूप देखा तो वह वस्तु ज्ञानमय ही प्रतीत होता है। ज्ञानमय प्रतीत होनेपर बात क्या जानी गई ? जो उस आत्मपदार्थकी सत्ता है जिस प्रकार है, उस सत्ता मात्र ही तो वह समझा गया। इसी कारण जब संत जन योगमे जुटते हैं तो वहा ज्ञानमे ज्ञानका अनुभव है। जब ज्ञानमे ज्ञानका अनुभव होता है तो अपने सत्त्व मात्र प्रतीत है, इसी कारण वहा विकल्पका अवकाश नही है। तो जब जो पदार्थ जिस किसी भी विवक्षित भावरूप निरखा जाता है तब वह तन्मय है और उस तन्मयताकी प्रतीतिसे विदित होता रहता है वही वस्तु अपनी सत्तामात्र है तब वह भावकी अपेक्षा पदार्थ अखण्डित है। इसमे किसी प्रकारकी बाधा नही आती।

यदि पुनरन्यतरेण हि भावेन विवक्षितं सदेव स्यात्।
तन्मात्रं सदिति स्यात् सन्मात्रः स च विवक्षितो भावः ।४८५।

विवक्षावश सत्का किसी भी विवक्षित भावमात्र रूपमे दर्शन—वस्तुको जिस भावरूपसे विवक्षित करके निरखा जारहा था, उस समय वस्तुमें विवक्षित भाव मात्र प्रतीत होरहा था। वही पदार्थ जब अन्य किसी भावमे विवक्षित होता है तो वही सत् इस विवक्षित भावरूप होता है। जैसे—जिस जीव द्रव्यको पहिले ज्ञानभाव रूपसे निरखा जा रहा है तो यह जीव आनन्दमय प्रतीत हो रहा है। वस्तु वही एक है पर जिस भावसे विवक्षित किया गया उस भावरूप भी विदित हुआ और वे सब विवक्षित भाव भी उस वस्तुके सत्ता मात्र ही होते हैं। अतएव भावकी अपेक्षामे वस्तु अखण्डित ही है, एक ही है।

अत्रापि च संदृष्टिः कनकः पीतादिमानिहास्ति यथा।
पीतेन पीतमात्रो भवति गुरुत्वादिना च तन्मात्रः ॥४८६॥

भावापेक्षया एकत्वकी जानकारीके लिये एक स्थूल दृष्टान्त—इस सम्बन्धमें यह दृष्टान्त है कि जैसे सोना पीत आदिक गुण वाला है, पीतपना, गुरुपना आदिक अनेक धर्म वहा है किन्तु जब उस सोनेको पीतरूपमे निरखा जाता है तब वह स्वर्ण केवल पीतस्वरूप ही विदित होता है। वही सोना जब गुरुत्वादिक धर्मसे विवक्षित होता है तब वह गुरुत्वमात्र विदित होता है, विवक्षित होता है तब वह गुरुत्वमात्र विदित होता है पर किसी भी विवक्षित भावमे देखा जाय वह भावमात्र वस्तु दीख रही है। तो वहा दीख क्या रहा है? वस्तु अपनी सत्ता मात्र ही विदित होती है। यों सोना उन समस्त भावोंसे भी खण्डित नही होता। अतएव भावदृष्टिसे वह स्वर्ण अखण्डित है।

न च किञ्चित् पीतत्वं किञ्चित् स्निग्धत्वमस्ति गुरुता च।
तेषामिह समवायादस्ति सुवर्णस्त्रिसत्वसत्ताकः॥ ४८७ ॥

दृष्टान्तमे भावोके पार्थक्यके अभावका कथन—उक्त गाथामे जो दृष्टान्त कहा गया है उसमे ऐसा नही है कि स्वर्णमे पीतपना स्निग्धपना और गुरुत्वपना है। तो कुछ सोना पीला हो और कुछ सोना स्निग्ध हो और कुछ सोना गुरु हो फिर इन तीन गुणोका उस स्वर्णमे समवाय होनेपर उन तीनोकी सत्ताको लेकर फिर एक अखण्ड सत्ता वाला स्वर्ण बना हो, ऐसा नही है। यहा प्रसङ्गमें भावकी अपेक्षासे द्रव्यमे एकत्व बताया जा रहा है और दृष्टान्त दिया जारहा है स्वर्णका कि जैसे सोना ही पीतरूपसे विवक्षित होता है तो वह केवल पीत ही प्रतीत होता है और जब वही सोना गुरुत्व धर्मसे विवक्षित होता है तब ही गुरु प्रतीत होता है, ऐसा बताया गया है तो उस सम्बन्धमे यह आशङ्का न करनी चाहिए कि सोना जब पीला है, स्निग्ध है,

गुरु है तो कोई अश पीला है और कोई अश स्निग्ध है, कोई अश गुरु है और इन तीनोको मिलाकर एक अखण्ड सत्ता स्वर्णके दर्शन हैं, ऐसा नही है, किन्तु कैसा है ? इस विषयको अगली गाथामे स्पष्ट करते है।

इदमत्र तु तात्पर्यं यत्पीतत्व गुणः सुवर्णस्य।
अन्तर्लीनगुरुत्वाद्विवक्ष्यते तद्गुरुत्वेन ॥ ४८८ ॥

दृष्टान्तमे एक भावमे अन्य भावोकी अन्तर्लीनताका कथन—इस प्रसङ्गमे दिए गए स्वर्ण दृष्टान्तमे जो भावकी अपेक्षा कथन किया जा रहा है उसका तात्पर्य यह है कि सोनेका जो पीतगुण है उसमे गुरुत्व गुण अन्तर्लीन है इस कारण जब सोना गुरुत्व रूपसे विवक्षित होता है तो वह केवल गुरु ही प्रतीत होता है। पीतपना, गुरुपना ये स्वर्णमे भिन्न भिन्न अशोमे नही है, किन्तु वही सारा स्वर्ण पीला है और वही सारा स्वर्ण स्निग्ध है। ये तीन गुण प्रथक-प्रथक हुए। इनकी सत्ता न्यारी-न्यारी हुई और फिर इन तीनोको मिलाकर कोई एक अखण्डता सिद्ध की गई हो सो ऐसा नही है किन्तु स्वर्ण स्वय अखण्ड है और उसका सब कुछ धर्म अखण्ड है। इस तरह भावकी अपेक्षा उस स्वर्णमे अखण्डना होती है। तो जिस तरह स्वर्णमे भावकी अपेक्षा एकत्व है इसी प्रकार प्रत्येक सतमे जानना चाहिए कि द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायमे भावकी अपेक्षा एकत्व है।

ज्ञानत्व जीवगुणस्तदिह विवक्षावशात् सुखत्वं स्यात्।
अन्तर्लीनत्वादिह तदेकसत्त्व तदात्मकत्वाच्च ॥ ४८९ ॥

लोकदृष्टान्तकी तरह जीवमे भावापेक्षया एकत्वका कथन—इसी प्रकार जीवका जो ज्ञानगुण है वही यहा विवक्षावश सुख हो जाता है, क्योकि ज्ञानमे सुख अन्तर्लीन है। आत्म वस्तु तो एक ही अखण्ड पदार्थ है, वह जैसा है सो ही है, उसका स्वभाव एक है और प्रतिसमय परिणमन भी एक है। अब उस एक अखण्ड द्रव्यको समझनेके लिए भेददृष्टिसे भावभेद करके समझाया जाता है। जब भावभेद करके बताया जाता तो वहाँ यह समझाना होता है कि जो जानता है सो जीव है, जो दीखता है सो जीव है, जो किसी ओर उपयोग लगाता है सो जीव है, जो आनन्द स्वरूप होता है सो जीव है ऐसा भेद भाव करके बतानेपर भी जीव वही पूरा जाननहार है, जीव वही पूरा देखने वाला है वही जीव पूरा आनन्दमय है। वहा ऐसी कल्पना न करना चाहिए कि जीवमे ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक ये भिन्न-भिन्न पदार्थ तत्त्व हैं और उनका समवाय करके फिर अखण्ड बनाकर एकको एक बताया गया हो। तो वही जीव पूरा ज्ञानमय है, वही जीव उन्ही सम्पूर्ण प्रदेशोमे

आनन्दमय है। इस तरह आत्माके सब प्रदेशोंमे ज्ञानगुण है और उन्ही सब प्रदेशोंमे आनन्द आदिक गुण भी हैं। तो उन प्रदेशोंकी दृष्टिमे यह विदित होता है कि एक गुणमे सभी गुण समाये हुए हैं और इसी अवस्थाको बतानेके लिए पदार्थमे विमुक्त गुण भी माना गया है। विमुक्त गुणका तात्पर्य यह है कि एक गुणमे अनेक गुण व्यापक हो जाते हैं। इसी प्रकार सभी जीवोंमे तादात्मकता होनेसे पदार्थ एक सत्ता वाला कहलाता है।

ननु निर्गुणा गुणा इति सूत्रे सूक्तं प्रमाणतो वृद्धैः ।
तत् किं ज्ञानं गुण इति विवक्षितं स्यात् सुखत्वेन ॥ ४६० ॥

एक गुणमे अन्य गुणोकी अन्तर्लीनताके सम्बन्धमे शङ्काकारकी शङ्का शङ्काकार शङ्का करता है कि पुरातन आचार्योंने सब युक्तिसे विचार करके गुणोको निर्गुण बताया है और सूत्रजीने भी ऐसा ही कहा है कि गुण गुणरहित होते हैं द्रव्य गुणवान है, गुण गुणवान नहीं हुआ करते। तो जब गुणोको निर्गुण कहा है तो इस प्रसङ्गमे यह कहा जा रहा है कि ज्ञानगुण सुखरूपसे विवक्षित हो जाता है। जब स्वरूप जुदा-जुदा है तो उनमे अन्तर्लीनताकी बात कही कैसे जाय ? सूत्रजीमें जो गुणोका स्वरूप कहा गया है वह यथार्थ विदित होता है। जो द्रव्यके आश्रय हो और गुणरहित हों उन्हें गुण कहते हैं। गुण सभी द्रव्योके आश्रय रहा करते हैं और गुणोंमे अन्य गुण नही हैं। गुणोमें कोई गुण हो उसका अर्थ यह बन जायगा कि वह गुणवान है और जो गुणवान है वह द्रव्य कहलायगा। तो गुणोको निर्गुण कहना युक्तिसङ्गत है किन्तु यहाँ तो गुणोमे गुण बताये जा रहे हैं ये किस प्रकार सम्भव हैं? अब इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं।

सत्यं लक्षणभेदाद्गुणभेदो निर्विलक्षणः स स्यात् ।
तेषां तदेक सत्त्वादखण्डित्वं प्रमाणतोऽध्यक्षात् ॥ ४६१ ॥

उक्त शङ्काके समाधानमे गुणभेदोंकी निर्विलक्षणताका प्रतिपादन—शङ्काकारका उक्त कथन किसी प्रकार ठीक हो सकता है लेकिन सर्वथा ऐसा न कहना चाहिए क्योकि लक्षणभेदसे गुणोंमें जो भेद है वह भेद निर्विलक्षण है। जैसे एक आत्मामे ज्ञानगुण है आनन्दगुण है और ज्ञानका लक्षण है प्रतिभास जानन और आनन्दका अर्थ है निराकुलता, आल्हाद। तो लक्षणका भेद भले ही उन गुणोंमे है, लेकिन वह गुण है, वह विशेष है उस ही एक आत्माके। अतएव उस एक आत्मद्रव्यकी दृष्टिसे, आधारकी दृष्टिसे वे सभी गुण एकतान होकर उन ही प्रदेशोमे रह रहे है। और रहते क्या हैं ? वे गुण स्वय स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है किन्तु उस एक आत्मद्रव्य

की ये सब विशेषतायें हैं। अतएव यह जो गुणोंका भेद है वह विलक्षण नहीं है। निर्विलक्षण है। अपने आपके द्रव्यमे अविरुद्ध और तादात्म्यरूपसे है। उन सब गुणो की सत्ता एक है। इस कारणसे वे सब गुण अखण्डित हैं और खण्डित गुणोंके लक्ष्य से द्रव्यकी अखुण्डता भी प्रतीत हो जाती है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणसे विदित होती है। जैसे उदाहरणमे किसी स्कन्धको ही ले। एक आम्र फलमे रूप है तो, क्या वहाँ यह विभाग है कि रूप अन्य जगह है, रस अन्य जगह है और क्या रूपकी सत्ता कुछ अन्य रूपसे विदित होती है? और रसकी सत्ता कहीं अलग रहती हो? वही आम्र फल अभी रूपसे जाना जा रहा है जब कि चक्षु इन्द्रियके द्वारा उसे विषय किया जा रहा है लेकिन वही आम्रफल रसना इन्द्रियके द्वारा विषय किया जानेपर रसरूप विदित हो जाता है। तो जैसे वहाँ रूप रस आदिककी सत्ता जुदी नहीं है, एक ही सत्व है, इसी प्रकारसे प्रत्येक सतमे जितने भी भाव हैं, गुण हैं वे सब कही जुदे-जुदे नहीं है। वह एक ही द्रव्य उन अनेक विशेषोके रूपमे प्रतीत होता है।

तस्मादनवद्यमिद् भावेनाखण्डित सदेक स्यात् ।
तदपि विवक्षावशतः स्यादितिसर्वं न सर्वथेति नयात् ॥४६२॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके कथनकी निर्दोषता इस समस्त उक्त कथन से यह बात निर्दोषरूपसे सिद्ध हो जाती है कि सत् भावकी अपेक्षासे एक है, अखण्डित है चूंकि वस्तु द्रव्य पर्यायमय है और उस वस्तुके वर्णन करनेका प्रकार भी द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिकनय इन दो विधियोमें होता है। तो जब हम उस सत्को सामान्य भाव दृष्टिसे देखते हैं सर्व जीवोको भाव है, इस रूपसे ही जब हम देखते है तो भले ही जीवोकी अनेक पंक्ति बना ली जाय तब भी वह भाव सामान्यात्मक विदित होता, और यो द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमे भावकी अपेक्षासे वस्तु एक है यह बात एक द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमे भावकी अपेक्षासे वस्तु एक है, यह बात एक द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे जान ली, किन्तु सर्वथा ही ऐसा हो यह बात न समझना चाहिए। स्याद्वाद की मुद्रा जिन वाक्योमे होती है वह वाक्य समीचीन अर्थको प्रकट करता है, इस कारण यह फलित अर्थ लेना कि द्रव्यार्थिकनयके भेदकी अपेक्षासे भी सत्में एकत्व सिद्ध होगा यह प्रसंग सत्मे एकत्व और अनेकत्वको बतानेका चल रहा है, जिसमें सत्की एकताका यह कथन समाप्त होता है। अब द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सत्मे अनेकत्व है इस बातका वर्णन करते हैं।

एवं भवति सदेकं भवति न तदपि च निरकुशं किन्तु ।
सदनेकं स्यादिति किल सप्रतिपक्षं यथाप्रमाणाद्वा ॥४६३॥

सत्के कथंचित् एकत्वके वर्णनके अनन्तर सत्के कथंचित् अनेकत्वकी

सिद्धिकी सूचना—इस प्रसङ्गमे सत्को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमे एक सिद्धि की गई है इस प्रकार सत् एक है, फिर भी यह निर्णय रखना कि सत् सर्वथा एक नही है किन्तु कथञ्चित अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायसे वही सत् अनेक है। इसका कारण यह है कि वस्तु परिमाणके अनुसार सप्रतिपक्ष हुआ करता है गुरुत्व धर्मसे युक्त पदार्थ होता है जैसे कोई भी वस्तु ले लो, एक पुस्तकको ही ले लो, पुस्तक पुस्तककी अपेक्षासे है, वैंच आदिकके स्वरूपसे नहीं है, तो उस पुस्तकमे यह बात स्वभावसे पडी हुई है कि वह अपने स्वरूपसे हो, पर स्वरूपसे न हो। तो पुस्तककी सत्ता तव ही सम्भव है जब कि सप्रतिपक्ष धर्म माना गया हो। तो जब वस्तुमें यहा एकत्व सिद्ध किया जा रहा है तो अन्य दृष्टिसे उसमे अनेकत्व भी सिद्ध होता है। इसी बातको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी दृष्टिसे वस्तुमे अनेकत्वकी बात कह रहे हैं।

अपि च स्यात् सदनेक तद्द्रव्याद्यैरखण्डितत्त्वेऽपि ।
व्यतिरेकेण विना यन्नान्वयपक्षः स्वपक्षरक्षार्थम् ॥ ४६४ ॥

द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे व्यतिरेकनयके आशयमे सत्के अनेकत्वकी सिद्धिका उपक्रम सत् अनेक है इस बातकी सिद्धिमे एक युक्ति यह भी है कि द्रव्यादिककी अपेक्षासे वह सत् अभी अखण्डित सिद्ध होता है सो ठीक है, वहा अन्वय दृष्टि है। लेकिन जब व्यतिरेक दृष्टिसे निरखते हैं तो यही सत् अनेक सिद्ध होता है। और अन्वय व्यतिरेक दोनो दृष्टियोंसे निरखनेकी बात सङ्गत भी है, क्योकि व्यतिरेकके बिना अन्वयपक्ष अपने पक्षकी रक्षा नहीं कर सकता। यदि व्यतिरेक न माना जाय तो वहां अन्वय भी नही ठहरता। कोई भी पदार्थ है,वह है, अपनेमे है, सदाकाल है तिसपर भी यह मानना ही होगा कि वह अन्य पदार्थसे भिन्न है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव चार दृष्टियोसे वहां व्यतिरेक भी सिद्ध है और चार दृष्टियोसे अन्वय भी सिद्ध है। तो जब अन्वय व्यतिरेक रूप हमारे जाननेकी विधि है और वस्तु स्वरूप भी है तो दोनो दृष्टियोसे हमे दोनो विषय जानने ही होगे। तो इस तरह अन्वय दृष्टिमें द्रव्य एक है तो व्यतिरेक दृष्टिसे द्रव्य अनेक भी है। अब द्रव्य एक है इस बातका वर्णन तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे किया हो गया है। अब वक्तव्य विषय यही है कि सत् द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षासे अनेक है, तो इसी विषयको क्रमसे कहा जा रहा है कि द्रव्य दृष्टिसे वह सत् अनेक किस प्रकार है ? द्रव्यको प्रधानतासे निरखा और वहां परस्पर व्यतिरेक भी दीखे यह किस प्रकार सम्भव है? इस बातका अब वर्णन करेंगे।

अस्ति गुणास्तल्लक्षणयोगादिह पर्ययस्तथा च स्यात् ।
तदनेकत्वे नियमात सदनेक द्रव्यतः कथं न स्यात् ॥ ४६५ ॥

द्रव्यापेक्षया सत्का कथंचित् अनेकत्व— इस गाथामे द्रव्यकी अपेक्षासे सत् का अनेकत्व दिखाया जा रहा है । यद्यपि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिककी अपेक्षा वस्तु अखण्डित है जिसमे कि द्रव्य अपेक्षा भी अखण्डितपना आयगा तो भी द्रव्य क्या वस्तु है ? अब व्यतिरेक दृष्टिसे अथवा विशेषरूपसे उसका विवरण करते हैं तो यह कहना पडेगा कि गुण और पर्यायका पिण्ड द्रव्य कहलाता है । अब यहाँ द्रव्यको जब विशेष दृष्टिसे देखा तो वहाँ गुण और पर्याय नजर आया । तो गुण रूपसे द्रव्य दीखा पर्याय रूपसे द्रव्य दीखा और इसका लक्षण है प्रथक-प्रथक । जो गुणका लक्षण है वह पर्यायका नही जो पर्यायका लक्षण है वह गुणका नही । गुण कहलाता है सहभावी, पर्याय होता है क्रमभावी । गुण होता है शाश्वत् पर्याय होता है विनश्वर । तो गुण और पर्यायका जब लक्षण प्रथक प्रथक है तो सिद्ध हो गया कि वह द्रव्य अनेकरूप है गुणरूप है, पर्यायरूप है । और उन गुणोमे भी गुण अनेक हैं पर्याय भी अनेक हैं । तो जब यो विशेष दृष्टिसे पदार्थको निहारा तो वह अनेक रूप दीखा । तब द्रव्य दृष्टिसे सत् अनेक कैसे न हो जायेगे ? जैसे कि पहिले अभेद सामान्य अन्वय दृष्टिमे द्रव्यको देखा था तो सर्वत्र वही सत् एक प्रतीत होता था लेकिन जब व्यतिरेक विशेष दृष्टिसे सत्को निहारा जा रहा है तो जो गुण है वह पर्याय नही और द्रव्य गुणरूप है, पर्याय रूप है । इस तरह द्रव्य अनेकरूप सिद्ध होता है । यो द्रव्य दृष्टिसे सत् अनेक है ।

यत्सत्तदेकदेशे तद्देशे न तद् द्वितीयेषु ।
अपि तद् द्वितीयदेशे सदनेक क्षेत्रतश्च को नेच्छेत् ॥४६६॥

क्षेत्रापेक्षया सत्का कथंचित् अनेकान्त—अब क्षेत्र दृष्टिसे सत्को अनेक देखा जा रहा है । क्षेत्रदृष्टिसे सत् एक विस्ताररूपमे ही तो दीखेगा और वह विस्तार प्रदेशकी अपेक्षासे दृष्टगत होगा अर्थात् यह सत् इतने विस्तारमे है, अब एक परमाणु जितनी जगहको रोकेगा उतनेका नाम है एक प्रदेश । इस भावसे यह पदार्थ कोई असंख्यात प्रदेशी है कोई अनन्तप्रदेशी है, कोई एक प्रदेशी है । तो अब जो असंख्यात् प्रदेशी है अथवा अनन्त प्रदेशी है क्षेत्र दृष्टिमे निहारनेपर वहाँ प्रदेश अनेक दीखेगे । और उन प्रदेशोमे यह विभाग समझमे आयगा । विवेक दृष्टिगत होगा कि जो एक प्रदेशी है वह दूसरा प्रदेशी नही है । तो जो सत् एक प्रदेशमें है वह उस ही देशमे है, दूसरे देशमे नही है । इसी प्रकार दूसरे प्रदेशमे जो सत् है वह दूसरे प्रदेशमे ही है अन्य प्रदेशमे नही है । यद्यपि सामान्य क्षेत्र दृष्टिमे यह सत् अखण्ड प्रतीत हो रहा था किन्तु यहाँ विशेष दृष्टिसे देखा जा रहा है तो सत्मे प्रदेश असंख्यात् हैं यह मानना होगा कि जो एक प्रदेशी है सो ही दूसरा नही है । अगर एक प्रदेश अन्य प्रदेशरूप हो जाय तो यहाँ एक प्रदेशपना ही रह गया, असंख्यात प्रदेश या अनन्त प्रदेश न रह सकेंगे और हैं ये सब । तो क्षेत्रमें जब हम विशेष दृष्टि करके देखते हैं तो वहाँ प्रदेश

भावापेक्षया सत्का कथचित् अनेकत्व—अब भावकी अपेक्षासे पदार्थमे अनेकत्व दिखाया जा रहा है। पदार्थ अनेक भाव स्वरूप है, यद्यपि द्रव्य दृष्टिसे एक स्वभावमात्र है, किन्तु जब उसका विश्लेषण करते है, उसका प्रतिपादन करते है तो अनेक गुणोके रूपमे उस तत्त्वको कहा जाता है। जैसे आत्मा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक गुणोसे सम्पन्न है-तो ये सब भाव ही हुए। तो इन भावोमें जब जिस भावरूपसे विवक्षित होता है यह जीव उस समय वह उस भावमय है। यो तन्मात्र होनेसे जो एक भाव है वह अन्य भावरूप नही हो सकता। लक्षणकी विशेषता भी इसी प्रकार है। जो जानना है सो ही तो ज्ञान है और जो आह्लाद है सो आनन्द है तो प्रत्येक गुणोका लक्षण भी भिन्न-भिन्न है। तो जब जिस भावरूपसे विवक्षित हो तब उस भावमय है, अन्य भावमय नही है। इसी प्रकार जब अन्य किसी भावसे विवक्षित है तब वह अन्य भावरूप ही है, उससे भिन्न अन्य भावरूप नही है।

शेषो विधिरुक्तत्वादत्र न निर्दिष्ट एव दृष्टान्तः।
अपि गौरवप्रसङ्गाद्यदि वा पुनरुक्तदोषभयात् ॥ ४९९ ॥

सतके कथचित एकत्व अनेकत्वसे सम्बन्धित शेष परिचयका स्मरण—इस प्रसङ्गमें सतमे एकत्व और अनेकत्व सिद्ध किया गया है। इससे सम्बन्धित अन्य बातें भी समझनी चाहिए, जिनका कथन पहिले भी कर दिया गया है। जैसे कि उस सतको सर्वथा एक नहीं कह सकते। यदि सर्वथा एक कह दिया जाय तब उसमे कोई परिणमन ही न हो सकेगा। परिणमन तब होता है जब वहा अनेकता समझमे आती है। तो अनेकत्व माने बिना पदार्थ परिणमन शून्य ही हो जायगा। इसी प्रकार यदि पदार्थको सर्वथा अनेकरूप मान लिया जाय तो भी उसमे परिणतियाँ न हो सकेंगी। वे अनेक रूप भिन्न-भिन्न स्वतत्र पदार्थ हो गए अब क्योकि उन्हें सर्वथा ही सत मान लिया गया। तो जब वे ही पर्यायें सर्वथा परिपूर्ण स्वतन्त्र सत हो गए तो परिणतियाँ किसकी बतायी जाये। वे परिणतियाँ ही न रहें, तो सर्वथा एक माननेपर भी दोष है, सर्वथा अनेक माननेमे भी दोष है। तो यहाँ जो दो भङ्ग बताये गये हैं कि वस्तु स्यात् एक है, स्यात् अनेक है तो अन्य भङ्ग भी इस प्रसङ्गमे लगा लेना चाहिए।

तस्माद्यदिह सदेक सदनेक स्यात्तदेव युक्तिवशात्।
अन्यतरस्य विलोपे शेषविलोपस्य दुर्निवारत्वात् ॥ ५०० ॥

सतके कथचित एकत्व व अनेकत्वका समर्थन—इस कारण यह सिद्ध होता है यहाँ कि जो सत एक है वही सत अनेक है। एक अनेकमेसे यदि किसीका भी लोप कर दिया जाय न माना जाय तो शेषका लोप अपने आप होजाता है। जैसे सत को अगर अनेक न मानें तो इसका अर्थ है कि उसमे विशेष नही है, परिणमन नही है। तो परिणमनरहित, विशेषरहित कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता। तो इस तरह उसका लोप हो जायगा अथवा अनेक है यह नही माना गया, वस्तु सर्वथा एक ही है,

तो एक ही है यह वक्तव्य कैसे होगा ? उसमे परिणमन कैसे समझमे आयगा ? तो परिणमन शून्य हो जानेसे उस एकपनेका भी अभाव हो जायगा, एकत्व भी सिद्ध न हो सकेगा। इस कारण मानना ही पडेगा कि वस्तु कथंचित एक है और वही वस्तु युक्तिपथसे कथंचित् अनेक है। इस तरह पदार्थ एक अनेकात्मक है।

अपि सर्वथा सदेकं स्यादिति पक्षो न साधनायालम् ।
इह तदवयवाभावे नियमात् सदवयविनोऽप्यभावत्वात् ॥५०१॥

सर्वथा एकत्वके पक्षमें वस्तुत्वसाधनकी अक्षमता—सत् सर्वथा एक है यह पक्ष भी वस्तुकी सिद्धि करनेमे समर्थ नहीं है। जब सत्को सर्वथा एक मान लिया तो किसी भी प्रकार उसमे भेद दृष्टि न बनायी जा सकेगी। और तब उसका कोई अवयव न जाना जा सकेगा। गुण पर्याय आदिकका भेद भी न बन सकेगा। तो जब अवयवका अभाव हो गया तो समझिये कि अवयवी सत्का भी अभाव बन जायगा, फिर सत्को किसी प्रकार सिद्ध न कर सकेंगे। अनुभवसे भी सोचिये कि वह सत् क्या है जिसमे न शक्ति है, न परिणमन है। वस्तुमें नाना परिणमन होते हैं उनकी अपेक्षासे तथा उसमे नाना शक्तियां होती हैं, उनकी अपक्षा से जब वहां अनेकत्व किसी प्रकार भी न परखा जा सका तो वस्तु ही क्या समझमे आ सकेगा ? अत: सर्वथा एक मानने पर भी वस्तु स्वरूपकी सिद्धि नही होती।

अपि सदनेकं स्यादिति पक्षः कुशलो न सर्वथेति यतः ।
एकमनेकं स्यादिति नानेकं स्यादनेकमेकैकात् ॥५०२॥

सर्वथा अनेकत्वपक्षमे वस्तुत्वसाधनकी अक्षमता—सत्को सर्वथा अनेक माननेका पक्ष भी कुशल पक्ष नही है, क्योकि जहां सर्वथा अनेक मान लिया गया, एक की कल्पना भी न हो सकी तो वहां वस्तु क्या सिद्ध होगा ? अनेक भी तो एक ही हुआ करते हैं, अर्थात् वस्तु एक है फिर उसमे परिणतियां अनेक हैं गुण अनेक है। कितने ही अनेक मान लिए जायें पदार्थ, पर प्रतिव्यक्ति एकत्व तो मानना ही पडेगा। कोई भी वस्तु अनेक अनेक मिलकर नही बना करती। वस्तुत स्वय सत्स्वरूप है, एक है, स्वत सिद्ध है, उस स्वत.सिद्ध वस्तुको नाना दृष्टियोसे अनेक परखा जाता है। यो वस्तुको सर्वथा अनेक भी नही कह सकते। तब वस्तुका जो लक्षण बताया गया था कि वस्तु सत्तामात्र है, स्वत.सिद्ध है, अनादि अनन्त है ऐसी वह सन्मात्र वस्तु वही भेद दृष्टिमे अनेकरूपसे निरखी जाती है। मूल कुछ एक है तब उसमें शक्ति गुण आदिक बताये जा सकते हैं। तो यों वस्तु सर्वथा अनेक भी नही कही जा सकती अत. मानना चाहिए कि वस्तु जैसे द्रव्यादिककी अपेक्षा एक रूप है उसी प्रकार द्रव्यादिककी अपेक्षा पर्याय दृष्टिमे सत् अनेकरूप है। यों वस्तु कथचित् एक और कथचित् अनेक सिद्ध होती है।